# मे घ च र्या

हीरा मुनि 'हिमकर'

श्री श्रमण भगवान् महावीर की पच्चीस-सौवी
निर्वाण तिथि समारोह के उपलक्ष्य मे

# मे घ च र्या

लेखक
श्री हीरा मुनि 'हिमकर'

आशीवचन
उपाध्याय अमरमुनि

●

प्रेरक
श्री पुनीत मुनि
जैन सिद्धात विशारद

सम्पादक
प० शोभाचद्रजी भारिल्ल

भूमिका
श्री देवेन्द्रमुनि, शास्त्री 'साहित्यरत्न'


स न्म ति ज्ञा न पी ठ
लोहामण्डी आगरा-२

सन्मति साहित्यरत्न माला का ११५वां रत्न


- पुस्तक
  मेघचर्या
- सम्पादक
  पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल
- प्रेरक
  श्री पुनीत मुनिजी
- मूल्य
  ५) रुपया
- लेखक
  श्री हीरामुनि 'हिमकर'
- भूमिका
  श्री देवेन्द्रमुनि 'साहित्यरत्न'
- प्रकाशक
  सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी,
  आगरा-२
- मुद्रक
  रामनारायण मेड़तवाल
  श्री विष्णु प्रिन्टिंग प्रेस,
  राजा की मण्डी, आगरा-२

प्रथम संस्करण
विक्रम सम्वत् २०२३ पौष पूर्णिमा

महास्थविर पूज्य गुरु महाराज श्री ताराचद्र जी म०

अमर पूज्य गुरु ताराचद,
घर-घर म करदे आनद।

| जन्म वि० स० १९४० | दीक्षा वि० स० १९५० | स्वर्गवास स० २०१३ |
|---|---|---|
| आश्विन शुक्ला चतुदशी | ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी, | कार्तिक चतुदशी, |
| वम्बोरा (मेवाड) | समदडी (मारवाड) | लाल भवन, जयपुर |

समर्पण !

मेरे वर्तमान तेतीस वर्ष की
सयम-यात्रा मे
स्नेहपूर्वक सहयोग देनेवाले
आगमानुभवप्रदाता
ज्येष्ठ गुरु-भ्राता, राजस्थान केशरी,
प्रवत्तक श्री पुष्कर मुनिजी महाराज के
करकमलो मे
सादर समपण !

—हीरामुनि

## समर्पण !

मेरे वर्तमान तेतीस वर्ष की
सयम-यात्रा मे
स्नेहपूर्वक सहयोग देनेवाले
आगमानुभवप्रदाता
ज्येष्ठ गुरु-भ्राता, राजस्थान केशरी,
प्रवत्तक श्री पुष्कर मुनिजी महाराज के
करकमलो मे
सादर समपण !

—हीरामुनि

## सम्पादकीय वक्तव्य

'नायधम्मकहाओ' जैन परम्परा के द्वादशागीश्रुत मे छठा अग गिना जाता है। इस अग मे कुछ नाय ज्ञात-उदाहरण हैं और कुछ भ० महावीर द्वारा उपदिष्ट धमकथाएँ। अतएव इस अग का सायक नाम 'नायधम्मकहाओ' प्रचलित है।

मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है? और किस उपाय के द्वारा उस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है? लक्ष्य प्राप्ति के लिए की जाने वाली साधना के साधक को किस प्रकार का जीवन यापन करना होता है? उसे प्राप्त भौतिक ऐश्वय की चमक-दमक मे अपने आपको विस्मृत अयवा अनदेखा नही कर देना चाहिए। जिन वीर साधकों ने साधना के कटकाकीण लम्बे पथ पर चल कर लक्ष्य प्राप्ति की है, उनके अनुभवों पर अखण्ड आस्था रखकर, सशयाकुल मनोभाव का परित्याग करके साधना के माग पर अग्रसर होते जाना चाहिए। इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखना, उन्ह विषयो मे रति-अरति करने से रोकना, आहार विहार आदि करते हुए भी अलिप्त रहना और निरन्तर जागृत रह कर स्वीकृत माग पर आगे ही आगे बढते जाना, यह सब इस आगम का प्रतिपाद्य विषय है।

कथा शैली मे होने के कारण यह आगम सव-साधारण के लिए सुबोध है और रोचक होने के कारण पाठक का मन उसमे तन्मय हो जाता है।

'नायधम्मकहाओ' पर सस्कृत भाषा मे कई टीका टिप्पणियाँ हैं। गुजराती मे भी इसके कई सस्करण प्रकाशित हुए है, मगर हिन्दी मे इसका कोई सर्वागसुन्दर सस्करण उपलब्ध नही है। कुछ वष पूव मैंने इसका अनुवाद किया था और धार्मिक परीक्षाबोर्ड पाथर्डी (अहमद नगर) ने उसे मुद्रित भी करवाया। किन्तु वह अब तक प्रकाश मे नही आ रहा है शायद इस कारण कि उसका मुद्रण अच्छा

नहीं हुआ। तथ्य यह है कि इस समय हिन्दी में इस उपयोगी और महत्त्वपूर्ण आगम का एक भी संस्करण उपलब्ध नहीं है। जैन समाज का साहित्य के प्रति कितना उपेक्षाभाव है इसका यह एक ज्वलंत उदाहरण है।

प्रसन्नता है कि भावुकहृदय सन्त श्री हीरा मुनि जी 'हिमकर' का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने इसके प्रथम अध्ययन 'उक्खित्ते णाए' का या मेघाध्ययन का विवेचन बोध के साथ अनुवाद तैयार किया। मुनिश्री के आदेश को शिरोधार्य कर मैंने सहर्ष उसके सम्पादन का भार अपने ऊपर ले लिया।

जैनागमों की कथाएँ मनोविनोद मात्र के लिए नहीं हैं, वरन् उनके माध्यम से तत्त्व की शिक्षा दी गई है। कथाओं में आये हुए प्रासंगिक कथन और वर्णन भी बहुत अर्थपूर्ण हैं। उनसे तात्कालिक संस्कृति, इतिहास, समाजव्यवस्था, राजनैतिक स्थिति, धार्मिक परम्परा, लोक-मानस और विचारधारा आदि का भी पता लगता है। मगर साधारण स्तर के पाठक की वहाँ तक पहुँच नहीं हो पाती। वह तो तभी समझ पाता है जब इन गूढ़ वास्तविकताओं को उसके सामने उघाड़ कर रख दिया जाय। श्री हीरा मुनि जी ने ऐसे तथ्यों को उघाड़ कर रख देने का प्रयास किया है। इस प्रकार आगमों के अनुवाद की एक नूतन शैली का आपने सूत्रपात किया है, जो स्वागत के योग्य है अनुकरणीय है। निश्चय ही मुनि जी बधाई के पात्र हैं।

आशा है प्रस्तुत आगम के अन्य अध्ययनों का भी वे इसी शैली से अनुवाद प्रस्तुत करेंगे, जिससे सभी श्रेणियों के पाठक लाभान्वित हो सकें।

श्रमणी विद्यापीठ
घाटकोपर, बम्बई ८६

—शोभाचन्द्र भारिल्ल

# मेघचर्या · एक अनुशीलन

वैदिक परम्परा मे जो स्थान वेद का है बौद्ध परम्परा में जो स्थान त्रिपिटक का है ईसाई धम म जो स्थान बाईबिल का है इस्लाम धम म जो स्थान कुरान का है वही स्थान जन परम्परा म आगम का है।

वेद तथा बौद्ध और जन आगम-साहित्य में महत्त्वपूण भेद यह रहा ह कि वदिक परम्परा क ऋषियो ने शब्दा की सुरक्षा पर अधिक बल दिया है जब कि जैन और बौद्ध परम्परा म अथ पर अधिक बल दिया है। यही कारण है कि वेदा के शब्द पूण रूप से सुरक्षित रहे हैं पर अथ की दृष्टि से विद्वानो मे एक मत नही है। आज तक वैदिक विद्वानो ने अनेक प्रयत्न किये हैं पर अथ की दृष्टि स वे एक मत स्थिर नही कर सके हैं। जन और बौद्ध परम्परा म इससे बिल्कुल ही विपरीत रहा है। वहाँ अथ की सुरक्षा पर अधिक बल दिया गया है शब्दो की अपेक्षा अर्थ अधिक महत्त्वपूण माना गया है। यही कारण है कि आगमा के पाठभेद मिलते हैं पर उनमे अर्थ भेद नही।

वेदो के शब्दो म मत्रा का आरोपण किया गया है, जिसस शब्द तो सुरक्षित रहे पर उसक अथ नष्ट हो गए। जन आगम साहित्य म मत्र शक्ति का आरोपण न होने से अथ पूण रूप स सुरक्षित रहा है।

वद किसी एक ऋषिविशेष के विचारा का प्रतिनिधित्व नही करते, जब कि जन गणिपिटक एव बौद्ध त्रिपिटक क्रमश भगवान् महावीर और तथागत बुद्ध की वाणी का प्रतिनिधित्व करते हैं। जन आगमो के अर्थ के प्ररूपक तीथकर रह हैं और सूत्र के रचयिता गणधर हैं।[2]

---

१ देखिए नन्दिसुत्त अणुओगद्दाराइ की प्रस्तावना आगम प्रभाकर पुण्य विजय जी महाराज

२ अत्य भासइ अरहा सुत्त गथति गणहरा निउण।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १९२

और केवल ज्ञान हैं और परोक्ष म चतुदश पूव और उससे न्यून श्रुतज्ञान का समावेश है। इससे भी स्पष्ट है कि जो ज्ञान है वह आगम है। सवज्ञ सर्वदर्शी तीथकरो के द्वारा दिया गया उपदेश भी ज्ञान होने स आगम है।

भगवती[8] अनुयोग द्वार[9] और स्थानाङ्ग[10] सूत्र म आगम शब्द शास्त्र के अथ मे प्रयुक्त हुआ है। वहा पर प्रमाण के चार भेद किये गए हैं—प्रत्यक्ष अनुमान उपमान और आगम।

आगम के भी लौकिक और लोकोत्तर ये दो भेद किए गए हैं —लौकिक आगम भारत रामायण आदि और लोकोत्तर आगम सवज्ञ, सवदर्शी द्वारा प्ररूपित आचाराग, सूत्रकृताङ्ग, समवायाङ्ग, भगवती ज्ञाता आदि हैं।[11]

लोकोत्तर आगम के सुत्तागम, अत्थागम और तदुभयागम य तीन भेद भी किये गय हैं।[12]

एक अन्य दृष्टि से आगम के तीन प्रकार और मिलते हैं—आत्मागम अनतरागम और परम्परागम।[13] आगम के अथरूप और सूत्ररूप य दो प्रकार है। तीथकर प्रभु अथरूप आगम का उपदेश करते हैं अत अथरूप आगम तीथकरो का आत्मागम कहलाता है क्योकि वह अर्थागम उनका स्वय का है दूसरो स उन्होने नही लिया है। किन्तु वही अर्थागम गणधरा ने तीथकरो से प्राप्त किया है। गणधर और तीथकर के बीच किसी तीसर व्यक्ति का व्यवधान नही है एतदथ गणधरो के लिए वह अर्थागम अनन्तरागम कहलाता है। किन्तु उस अर्थागम के आधार से स्वय गणधर सूत्ररूप रचना

---

८ भगवती ५।३।१९२

९ अनुयोगद्वार

१० स्थानाङ्ग ३३८ २२८

११ अनुयोगद्वार ४९, ५०, पृ० ६८ पुण्यविजय जी सम्पादित

१२ अहवा आगमे तिविहे पण्णत्ते। त जहा-सुत्तागम य अत्थागमे य तदुभयागमे य।

—अनुयोगद्वार सूत्र ४७०, पृ० १७९

१३ अहवा आगमे तिविहे पण्णत्ते। त० अत्तागम अणतरागमे परपरागमे य। —अनुयोगद्वार सूत्र ४७० पृ० १७९

आचाय अभयदेव न समवायाङ्ग की टीका मे और मलयगिरि ने नन्दीसूत्र की टीका मे दो अथ लिखे हैं—नात-अर्थात् उदाहरणप्रधान धमकथाए, अथवा नात और धमकथाए ।

आचाय हेमचन्द्र न अपने कोष मे ज्ञातप्रधान धमकथाए, ऐसा अथ किया है ।

गोम्मटसार म नाथधमकथा तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक मे नातधम कथा—यह शब्द व्यवहृत हुआ है ।

प० वेचरदास जी दोशी[18] डा० जगदीशचन्द्र जैन[19] डा० नेमिचन्द्र शास्त्री[20] का मानना है कि नातपुत्र महावीर की धमकथाओ का प्ररूपण होने से भी इस अग को उक्त नाम से कहा गया है ।

नातधम कथा का परिचय समवायाङ्ग[21] और नन्दीसूत्र[22] म इस प्रकार दिया गया है—जो व्यक्ति विषय सुख म मूर्च्छित हैं और सयम म कायर हैं तथा सभी प्रकार से मुनिगुणो स शून्य हैं उनको सयम में स्थिर करने तथा सयम म रहन वालो को सयम म अधिक स्थिर करन के लिए ये कथाए कही गई हैं । बडे प्रभावशाली और रोचक ढग से इन कथाओ म सयम और तप का प्रतिपादन किया गया है ।

इस आगम की वणनशैली विशिष्ट प्रकार की है । विषय को स्पष्ट करन के लिए पुनरावृत्ति पर्याप्त मात्रा म हुई है । किसी वस्तु विशेष अथवा प्रसगविशेष का वणन करते हुए समासान्त पदावली का जो उपयोग हुआ है वह सस्कृत गद्य लेखको की साहित्यिक छटा का स्मरण दिलाता है ।

इस आगम के दो श्रुतस्कध हैं । पहले श्रुतस्कध म १९ अध्ययन हैं और दूसरे म १० वग हैं । आचाय अभयदेव न इस पर टीका लिखी है, जिसका सशोधन द्रोणाचाय न किया है । इस अग की विविध वाचनाओ का उल्लेख भी अभयदेव ने किया है ।[23]

---

१८ भगवान् महावीर नी धमकथाओ—टिप्पण पृ० १८०
१९ प्राकृत साहित्य का इतिहास—पृ० ७४
२० प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १७१
२१ समवायाङ्ग सूत्र १४१, पृ० १२५ कमलमुनि सम्पादित
२२ नन्दीसूत्र—मलयगिरिटीका
२३ टीका का उपसहार

प्रथम अध्ययन का नाम 'उक्खित्तणाय' है। मेघकुमार के जीव ने हाथी के भव में शशक की रक्षा के लिए 'पाए उक्खित्ते' पैर ऊँचा किया इसका वर्णन होने के कारण प्रस्तुत अध्ययन का नामकरण हुआ है।

### राजगृह

प्रस्तुत अध्ययन का सम्बन्ध राजगृह से रहा है। राजगृह मगध की राजधानी थी।[२८] जिसे मगधपुर, क्षितिप्रतिष्ठित, चणकपुर, ऋषभपुर और कुशाग्रपुर आदि अनेक नामों से पुकारा जाता था।

आवश्यक नियुक्ति की अवचूर्णि के अनुसार पहले यहाँ क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर था। उसके क्षीण होने पर जितशत्रु राजा ने उसके स्थान पर चणकपुर स्थापित किया। जब वह भी क्षीण होने लगा तब यहाँ ऋषभपुर स्थापित हुआ। उसके पश्चात् कुशाग्रपुर। जब कुशाग्रपुर में आग लगी और वह सम्पूर्ण जल गया तब श्रेणिक के पिता प्रसेनजित ने यहाँ पर राजगृह नगर बसाया। आवश्यक चूर्णि के अभिमतानुसार राजगृह का निर्माण श्रेणिक ने किया था।[२९]

महाभारत युग में राजगृह में जरासंध प्रतिवासुदेव राज्य करता था।[३०] पाँच पहाड़ियों से घिरे होने के कारण राजगृह गिरिव्रज के नाम से भी विश्रुत था। उन पहाड़ियों के नाम जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों ही परम्पराओं में पृथक् पृथक् रहे हैं।[३१] ये पहाड़ियाँ आज भी राजगृह में हैं। जैन ग्रन्थों में वैभार और विपुल पहाड़ियों का वर्णन विशेष रूप से आया है। ये पहाड़ियाँ वृक्षादि से खूब हरी भरी थीं। यहाँ पर अनेक श्रमणों ने निर्वाण प्राप्त

---

२८ पन्नवणासूत्र

२९ आवश्यक चूर्णि २ पृ० १५८

३० त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

(ख) चउप्पन्न महापुरिस चरियं

(ग) भवभावना

३१ जैन—विपुल गिरि रत्न उदय सुवर्ण और वैभार

वैदिक—वैहार (वैभार) वाराह वृषभ ऋषिगिरि चैत्यक

—महाभारत

वैभार विपुल रत्नकूट गिरिव्रज रत्नाचल —वायुपुराण

बौद्ध—चन्दन गिज्झकूट, वैभार इसिगिलि और वेपुल

—सुत्तनिपात की अट्ठकथा ४०२ पृ० ३८२

किया था। वैभार पहाडी के नीचे ही तपोदा और महातपोपनीरप्रभ नामक उष्ण पानी का एक विशाल कुण्ड था।[२८] वह वतमान म भी तपावन के नाम से प्रसिद्ध है। चीनी यात्री फाह्यान और हुएनसाग न अपने यात्रा के वणना म इन कुण्डा क देखन का वणन किया है।

श्रमण भगवान महावीर ने अनक वर्षावास यहा पर व्यतीत किय थे।[२९] दो सौ से भी अधिक वार उनके समवसरण होने के उल्लेख आगम साहित्य में मिलते हैं। वहा पर गुणसिल[३०] मद्दिकुच्छ[३१], और मोग्गरपाणि[३२] आदि उद्यान थ। भगवान् महावीर गुणसिल उद्यान म ठहरा करते थे जिसे वतमान मे गुणावा कहते हैं।

तथागत बुद्ध ने भी अनेका वर्षावास यहा पर किये हैं। यद्यपि मूल त्रिपिटक साहित्य म बुद्ध के विहार और वर्षावासो का क्रमिक वणन नही मिलता है। *अगुत्तर निकाय अट्ठकथा*[33] म बोधिलाभ के उत्तरवर्ती वर्षावासो का क्रमिक सधान किया गया है। राइस डेविड्स[३४] राहुलसाकृत्यायन[३५]

---

२८ (क) व्याख्या प्रज्ञप्ति २।५। पृ० १४१
(ख) बृहत्कल्पभाष्य वृत्ति २।३४२६
(ग) वायुपुराण १।४।५

२९ (क) कल्पसूत्र ५।१२३
(ख) व्याख्याप्रज्ञप्ति ७।४, ५।६, २।५
(ग) *आवश्यक नियुक्ति* ४७३।४६२।५१८

३० ज्ञातधमकथा पृ० ४७
(ख) दशाश्रुतस्कध १० पृ० ३६४
(ग) उपासक दशा ८ पृ० ६१

३१ व्याख्याप्रज्ञप्ति १५
(ख) दीघनिकाय, महावग्गो, महापरिनिव्वान सुत्त पृ० ६१ म 'मद्दकुच्छि' नाम मिलता है।

३२ अन्तकृतदशा ६, पृ० ३१

३३ २।४।५

३४ Buddhism

३५ बुद्धचर्या

## मगध

मगध को जैनागमो म एक प्राचीन देश माना गया है और इसकी गणना सोलह जन पदा म की गई है ।[४६] मगध भगवान् महावीर की प्रवृत्तियो का प्रधान केन्द्र था । उन्होंने वहा की अधमागधी बोली म ही प्रवचन किये थे ।[४७] मगध के निवासी अन्य देशवासियो की अपेक्षा बुद्धिमान माने गय हैं । वे किसी भी बात को सकेतमात्र से समझ लेते थे, जब कि कौशल वासी उस दखकर पाचाल वासी उस आधा सुनकर और दक्षिण वासी उसे पूरा सुनकर ही समझ पाते थे ।[४८]

मगध जनपद वतमान गया और पटना जिला के अन्तगत फला हुआ था । उसके उत्तर म गगा नदी, पश्चिम म सोन नदी दक्षिण मे विन्ध्याचल पवत का भाग और पूव म चम्पा नदी थी ।[४९] इसका विस्तार तीन सौ योजन (२३०० मील) था और इसम अस्सी हजार गाव थे ।[५०]

*ऋग्वेद म मगध का नाम कीकट' दिया है । अथव वेद म मगध का* नाम आया है । हेमचन्द्राचाय न कोष म दोनो नामो का उल्लेख किया है । कलिग नरेश और मगध नरेशो के बीच वमनस्य चलता था ।[५१]

## श्रेणिक

*राजा श्रेणिक मगध साम्राज्य का अधिपति था ।* जन बौद्ध और वदिक तीनो परम्पराओ म श्रेणिक की चर्चा मिलती है । भागवत महापुराण मे

---

४६ व्याख्या प्रज्ञप्ति १५

४७ भगव च ण अद्धमागहीए भामाए धम्ममाइक्खइ

—समवायाङ्ग सूत्र प० ६०

(ख) औपपातिक सूत्र

४८ (क) व्यवहार भाष्य १०।१६२ तुलना कीजिए

(ख) बुद्धिर्वसति पूर्वेण दाक्षिण्यं दक्षिणापथे ।

पैशून्य पश्चिमे देशे पौरुष्य चोत्तरापथे ॥

—गिलगित मनुस्क्रिप्ट ऑव द विनयपिटक

(ग) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटर्ली १९३८, पृ० ४१६

४९ बुद्धिस्ट इण्डिया पृ० २४

५० बुद्धिस्ट इण्डिया पृ० २४

५१ वसुदेव हिण्डी पृ० ६१ ६४

नाम पड़ा।[६०] बौद्ध परम्परा मानती है कि पिता के द्वारा अठारह श्रेणियो के स्वामी बनाये जाने के कारण वह श्रेणिक बिम्बसार कहलाया।[६१] जैन और बौद्ध दोनो ही परम्पराओ म श्रेणियो की सख्या अठारह मानी है।[६२] कुछ लोगो की यह भी धारणा है कि महती सेना होने से या सेनिय गोत्र होने से श्रेणिक नाम पड़ा।[६३] जब श्रेणिक बालक था तब महलो म आग लगी। सभी राजकुमार विविध वस्तुए लेकर भागे। श्रेणिक भभा को ही राजचिह्न के रूप म सारभूत समझ कर भागा, एतदर्थ उनका नाम भभासार पड़ा।[६४] अभिधान चिन्तामणि[६५] उपदेश माला,[६६] ऋषि मण्डल प्रकरण,[६७] श्री भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति[६८], आवश्यक चूर्णि[६९] आदि सस्कृत प्राकृत ग्रन्थो म

---

६० श्रेणी कायति श्रेणिको मगधेश्वर

—अभिधान चिन्तामणि स्वोपज्ञ वृत्ति मर्त्य काण्ड श्लो० ३७६

६१ स पित्राष्टादशसु श्रेणिष्ववतारित ।
अतोऽस्य श्रेण्यो बिम्बिसार इति ख्यात ॥

— विनय पिटक गिलगित मास्क्रिप्ट

६२ जम्बूद्वीप पण्णत्ति वक्षस्कार ३,
(ख) जातक, मूगपक्खजातक भाग ६

६३ धम्मपाल- उदान टीका पृ० १०४

६४ *सेणिय कुमारेण पुणो जयढक्का कड्ढिया पविसिऊण*
पिउणा तुट्ठेण तओ भणिओ सो भभासारो

—उपदेश माला सटीक पत्र ३३४ १

(ख) तेन कुमारत्वे प्रदीपनके जयढक्का गहान्निष्काशिता तत पित्रा भिभिसार उक्त ।

—स्थानाङ्ग वृत्ति पत्र ४६१ १

(ग) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र १०।६।१०६—११२

६५ काण्ड ३ श्लोक ३७६

६६ सटीक पत्र ३३४

६७ पत्र १४३

६८ प्रथम विभाग पत्र २२

६९ उत्तरार्ध पत्र १५८

भभासार शब्द ही मुख्य रूप से प्रयुक्त हुआ है। भभा भिभा और भिभि ये सभी शब्द भेरी के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।[70]

बौद्ध-परम्परा में श्रेणिक का अपर नाम बिम्बिसार माना है।[71] बिम्बि का अर्थ स्वर्ण है। स्वर्ण के समान वर्ण होने के कारण बिम्बिसार नाम पड़ा।[72] तिब्बती-परम्परा मानती है कि श्रेणिक की माता का नाम बिम्बि था, अतः उसे बिम्बिसार कहा जाता था।[73]

श्रीमद्भागवत पुराण में श्रेणिक के अजातशत्रु[74] विधिसार[75] नाम आये हैं। दूसरे स्थलों में विध्यसेन और सुविन्दु नाम भी उल्लेख हुआ है।[76]

आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति[77] और त्रिषष्टि शलाका पुरुषचरित्र[78] के अनुसार श्रेणिक के पिता प्रसेनजित् थे। दिगम्बर आचार्य हरिषेण ने श्रेणिक के पिता का नाम उपश्रेणिक लिखा है।[79] उत्तरपुराण में पिता का नाम कूणिक लिखा है जो अयथार्थ है।[80] अन्यत्र पिता का नाम महापद्म, हेमजित क्षेत्राजा, क्षत्रौजा भी मिलते हैं।[81]

---

७० पाइय-सद्द-महण्णवो पृ० ७६४ ८०७
७१ इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली भाग १४ अंक २ जून १६३८, पृ० ४१५
७२ उदान अट्ठकथा १०४
(ख) पाली इंगलिश डिक्शनरी पृ० ११०
७३ इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली भाग १४ अंक २ जून १६३८ पृ० ४१३
७४ भागवत द्वितीय खण्ड पृ० ६०३
७५ वही १२।१
७६ भारतवर्ष का इतिहास पृ० २५२, भगवतदत्त
७७ पत्र ६७१
७८ त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र १०।६।१
७९ बृहत्कथाकोष कथाङ्क ५५, श्लो० १ २
८० उत्तरपुराण ७४।४१८, पृ० ४७१
८१ पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शिएण्ट इण्डिया पृ० २०५

जैन साहित्य मे श्रेणिक की छब्बीस रानियो के नाम उपलब्ध होते हैं, उनमे एक रानी का नाम धारिणी था, जिसका पुत्र मेघकुमार है। जिसका प्रस्तुत ग्रन्थ मे विस्तार से विवेचन है। अन्य पच्चीस रानियो का और उनके ३५ पुत्रो का वर्णन अन्तकृतदशा, आवश्यक चूर्णि, निशीथ चूर्णि अनुत्तरोपपातिका, निरियावलिका व त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र आदि मे आया है जिनमें से अधिकांश ने भगवान् महावीर के पास प्रव्रज्या ग्रहण की, उत्कृष्ट तप-जप व सयम की साधना कर स्वर्गवासी हुए। विस्तार भय से हम यहाँ उन सभी का उल्लेख नही कर रहे हैं।[८२]

बौद्ध ग्रन्थो के अनुसार श्रेणिक की पाँचसो रानियाँ थी।[८३]

आगम व आगमेतर जैन साहित्य में श्रेणिक के सम्बन्ध मे विस्तार से वर्णन किया गया है। उनके पुत्र और रानियो का जैन धर्म मे दीक्षित होना, यह बात सिद्ध करता है कि वह जैन धर्मावलम्बी था। बौद्ध ग्रन्थो मे उसे तथागत बुद्ध का भक्त माना गया है। कितने ही विद्वानो की यह धारणा है कि जीवन के पूर्वार्ध मे वह जैन था और उत्तरार्ध मे वह बौद्ध बन गया था, एतदर्थ ही जैन ग्रन्थो मे उसके नरक जाने का वर्णन है, पर हमारी दृष्टि से विद्वानो की यह धारणा भ्रान्त है क्योंकि जैन साहित्य मे नरक-गमन के साथ भावी तीर्थंकर बनने का भी उल्लेख मिलता है।[८४] यदि उसका जैन धर्म के साथ सम्बन्ध नही होता तो जैन साहित्य में इतने विस्तार से उसका परिचय प्राप्त नही हो सकता था।

## अभयकुमार

अभयकुमार की चर्चा भी जैन और बौद्ध ग्रन्थो मे विस्तार से आयी है। बुद्धिबल के लिए अभयकुमार जैन परम्परा मे अत्यधिक प्रसिद्ध रहा है। वह श्रेणिक भभसार का पुत्र ही नहीं, मनोनीत मन्त्री भी था।[८५] मेघकुमार की माता धारिणी का दोहद[८६] तथा कूणिक की माता चेलणा का दोहद[८७] यह

---

८२ विस्तार के लिए देखें—महावीर जीवन दर्शन—देवेन्द्रमुनि
८३ विनय पिटक महावग्ग ८।१।१५
८४ स्थानाङ्ग ६।३।६९३ वृत्ति, पत्र ४५८ ४६८
८५ भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति, पत्र ३८
८६ मेघचर्या
८७ निरियावलिका

अपन बुद्धि-बल स पूण करता है। अपनी चुल्लमाता चेल्लणा और श्रेणिक का विवाह भी उसके बुद्धि का चमत्कार था।[८८] अनेक बार राजा श्रेणिक के राजनैतिक सकट भी उसन टाल थे।[८९] इसक लिए प्रस्तुत आगम मे जो विशेषण दिये गये हैं वे यथाथ हैं।

## मेघकुमार

प्रस्तुत ग्रन्थ म ज्ञाताधम कथा का प्रथम अध्ययन है। श्रेणिक, अभयकुमार आदि की तरह मेघकुमार का वणन बौद्ध साहित्य म नहीं मिलता है। परवर्ती जैन साहित्यकारो ने भी मेघकुमार का वणन किया है, उसका मूल आधार भी ज्ञाताधम कथा का आधार ही रहा है। मेघकुमार राजा श्रेणिक का पुत्र था और अभयकुमार का लघुभ्राता था। जब वह गभ म था उस समय रानी धारणी को मेघ का दोहद आया था, इसलिए उसका नाम मेघकुमार रखा गया।

मेघकुमार कलाचाय के पास अध्ययन ही नही करता, अपितु उसम पूर्ण निपुणता प्राप्त करता है। बहत्तर कलाओं[९०] की तुलना कामसूत्र क विद्या समुद्देश प्रकरण में आय हुए चौसठ कलाओ स की जा सकती है। वह अठारह प्रकार की देशी भाषाओ म भी निष्णात बनता है। अठारह प्रकार की देशी भाषाए कौनसी थीं, इसका वणन टीका म भी नहीं मिलता है।[९१] अठारह प्रकार की लिपियों का उल्लख प्रज्ञापना,[९२] समवायाङ्ग[९३] और विशेषावश्यक भाष्य की टीका म है, पर भाषा का नहीं।

---

८८ त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र १०।६।२२६ २२७ पत्र ७८

८९ आवश्यक चूर्णि उत्तराध पत्र १५९ १६३
(ख) त्रिषष्टि १०।११।१२४ स २६३

९० बहत्तर कलाओ का वणन समवायांग ७२ में तथा राजप्रश्नीय में भी कुछ परिवर्तन के साथ आया है।

९१ अष्टादशविधिप्रकारा प्रवृत्तिप्रकारा अष्टादशभिर्वा विविधैः भेदै प्रकार प्रवृत्तिर्यस्या सा तथा तस्यां देशीभाषायां देशभेदेन वर्णावल्यात्मिकायां विशारद। —ज्ञाता धमकथा टीका

९२ प्रज्ञापना पद १

९३ समवायाङ्ग ७२

युवावस्था आने पर आठ राजकुमारियो के साथ मेघकुमार का पाणिग्रहण सस्कार सम्पन्न होता है। चारो ओर वैभव और विलास का वातावरण था। उसी समय भगवान् महावीर अपने शिष्य समुदाय सहित वहा पधारे। भगवान् महावीर के त्याग-वैराग्य से छलछलाते हुए प्रवचन को सुनकर मेघकुमार राजा श्रेणिक और माता धारिणी की आज्ञा लेकर भगवान् के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण करता है।

दीक्षा की प्रथम रात्रि थी मेघकुमार का आसन सबसे अन्त मे था मुनियो के आवागमन से अनजान मे उसे ठोकर लग जाती थी, जिससे उसकी निद्रा भग हो गई, उसके विचार बदल गये। प्रातःकाल होने पर सर्वज्ञ सर्वदर्शी महावीर ने उसको पूर्वभव सुनाकर सयम मे दृढ किया। मेघकुमार सयम-साधना एव तप आराधना कर अपने जीवन को परम पवित्र बनाता है। मेघकुमार का आदि से अन्त तक वर्णन होने से पुस्तक का नाम मेघचर्या रखा गया है। मेरे ज्येष्ठ गुरुभ्राता पण्डित श्री हीरामुनि जी ने मूल, अर्थ के साथ विशेष बोध लिखकर जिज्ञासुओं के लिए विषय को सरल सरस बनाने का प्रयास किया है। मैं अधिकार की भाषा मे कह सकता हूँ कि उनका प्रस्तुत प्रयास जिज्ञासु पाठको के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

प० श्री हीरामुनि जी स्वभाव से सरल प्रकृति से मधुर और विचारो की दृष्टि से उदार हैं। सेवा भावना उनका प्रधान गुण है। जीवन के कण कण मे मन के अणु-अणु मे सेवा की उदात्त भावना सदा अठखेलिया करती रहती है। सेवा के साथ लेखन के प्रति भी उनकी स्वाभाविक अभिरुचि है, जिसके फलस्वरूप वे जीवनपराग जन जीवन और विचारज्योति पुस्तकें समर्पित कर चुके हैं। अब मेघचर्या के विशेष बोध के लेखक के रूप मे हमारे सामने आ रहे हैं। मैं मुनि श्री का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और उनका साहित्यिक भविष्य उज्ज्वल समुज्ज्वल बने यही मगल कामना करता हूँ।

व० स्था० जैन धर्म स्थानक
तेलग क्रोस लेन माटुगा बम्बई १६
१६ नवम्बर १६७०

—देवेन्द्र मुनि शास्त्री
साहित्यरत्न

## अपनी वात

●

प्रस्तुत पुस्तक—मेघचर्य्या, मेरी दो वष की लेखन साधना का फल है। दैनिक कायक्रम करते हुए जितना समय शेष रहता था, उसे इधर-उधर की वातो मे न लगाकर श्रुत सेवा मे, वीतराग-वाणी की आराधना मे लगाने का विचार मन मे तरगित हुआ। अपनी बुद्धि एव अपने चिन्तन का सदुपयोग करने एव जीवन को मधुर तथा विनम्र बनाने की भावना उद्‌बुद्ध हुई। इसके लिए साधना आवश्यक थी और श्रुत सेवा भी साधना का एक महत्वपूण साधन है।

मानव जीवन को मिले मुझे ५१ वष हुए हैं। मेरा जन्म क्षत्रिय राजपूत कुल मे हुआ था। सतरह वष का समय देहात मे खेलने कूदने मे वीत गया। उस समय वालब्रह्मचारी परम विदुषी महासती श्री शीलकुँवर जी के सम्पक मे आया, और उनके उपदेश से मुझे जैन-धम का बोध मिला और मैंने सम्यक्त्व ग्रहण की। महासती जी की वाणी में मधुरता, कोमलता एव तेजस्विता थी। उनकी समझाने की कला वहुत सुन्दर थी। इसलिए उन्होंने मेरे व्यसनी जीवन को वदल कर उस पर धर्म का रग चढा दिया और मेरा जीवन उसी समय से धम की ओर मुड गया। मेरा जन्म मेवाड मे उदयपुर के निकट वाकल भीमट के समीजा गाव मे हुआ था, और वि० स० १९९५ मे पौष कृष्णा ५ को मादडा (भीमट) मे पूज्य गुरदेव महास्थविर श्रद्धेय ताराचन्द जी महाराज के पास मेरी दीक्षा हुई। लगभग २१ वर्ष पयन्त मुझे पूज्य गुरुदेव की सेवा का लाभ मिला। उपादान अच्छा होने से निमित्त भी अच्छे मिलते

प्रिय गुरु भ्रातृत्व श्री देवेन्द्रमुनि जी, शास्त्री साहित्यरत्न से मुझे समय-समय पर योग्य परामर्श मिलता रहा है। उनके मार्ग-दर्शन से पुस्तक सुन्दर बन सकी है। और शोधपूर्ण भूमिका लिखकर उन्होंने पुस्तक के महत्व को बढा दिया है। इसी प्रकार श्री गणेश मुनि जी, शास्त्री साहित्य रत्न, जिनेन्द्र मुनि, काव्यतीर्थ, रमेश मुनि काव्यतीर्थ, राजेन्द्र मुनि काव्यतीर्थ, एव पुनीत मुनि जैन सिद्धान्त विशारद का सहयोग भी महत्वपूर्ण रहा है। और महासती श्री कुसुम जी, विमलवती जी एव मदनकुवर जी का सहयोग भी मिला। महासती विमलावती जी ने मूल एव मूलार्थ की प्रतिलिपि करके श्रुत-सेवा का लाभ लिया।

कर्मठ-कार्यकर्त्ता, विश्रुत सम्पादक, पण्डित श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल ने प्रस्तुत पुस्तक का सुन्दर सम्पादन किया। आपकी भाषा सरल, सरस और प्राञ्जल है तथा शैली मधुर है। इसके साथ श्री श्रीचन्द्र जी सुराणा 'सरस' तथा पुस्तक के लिए अर्थ का सहयोग देने वाले व्यक्तियो का सहयोग भी सदा स्मृति मे रहेगा।

मेघचर्य्या को पाठको के कर-कमलो मे प्रस्तुत करते हुए मुझे परम प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। पूज्य गुरुदेव श्री ताराचन्द जी महाराज की कृपा से मैं अपने काम मे सफल होता रहा हूँ। पुस्तक कितनी उपयोगी है, इसका निर्णय मैं पाठको पर ही छोडता हूँ।

मैंने जो कुछ किया वह मेरा नही, पूज्य गुरुदेव की कृपा का ही मधुर फल है। अत राजस्थानी भाषा में इतना ही कहूँगा—

अमर रहिजो अमर रहिजो<br>
गुरुजी का नाम।<br>
म्हारें तो गुरां कर दीना जी।

कार्तिक शुक्ला १४ स० २०२७<br>
महास्थविर-स्वर्गारोहण तिथि<br>
स० स्थानकवासी जैन धर्म स्थानक,<br>
दादर (वेस्ट) बम्बई २८

—हीरा मुनि, 'हिमकर'

# दान दाताओं की सूची

८००) जन श्री श्राविका सघ, सादडी मारवाड

४००) स्व० मणिबेन केशवलाल भसाली

गीताजलि ५ न० माला वालकेश्वर, बम्बई ६

४००) मणिबेन राजमल मेहता, वालकेश्वर मुबई न० ६

४००) तारावेन चदुलाल मेहता ६६ वालकेश्वर, कमल मुबई न० ६

२५१) चदनवाला महिला मण्डल कोट मुबई न० १, वाजार गेट

२०१) राजीवाई घासीराम जी कोठारी सेमा वाला सायन बम्बई

२००) शा० शिवलाल साकरचद पालीयादवाला

आगरा रोड घाटकोपर बम्बई न० ८६

२००) पारु बाई हरीलाल मेहता, वालकेश्वर बम्बई ६

१५०) हस्तीमल जी बलदोटा रविवार पेठ पूना २

२५०) रामकु वर निहालचद डुमडिया घाटकोपर बम्बई

२००) शिवलाल गुलाबचद शेठ माटुगा, मुम्बई २६

१००) चद्रकान्त मणिलाल भसाली साताक्रूज, वेस्ट बम्बई ५४

१०१) माणिकलाल बलदोटा आणि क० रविवार पेठ, पूना २

१०१) धर्माणुरागिणी पानी बाई नगराज गजराज, रविवार पठ पूना २

१०१) गिरधारीलाल देसरडा, पापाण वाला, पूना

१०१) धीसुलाल मोहनलाल मेहता, पूना २

१०१) दुलीचद दीपचद पूनमिया, पूना

१५१) वरदीचद जी मेघराज जी जालोरवाला

१००) प्यारीबाई धमपत्नी मोहनलाल जी माथर्वा, भवानीपेठ पूना २

१००) धुनीलाल जी कावडिया की धमपत्नी
गजराबाई, रविवार पठ पूना

१०१) रमेशचद्र शोभाचद्र टाटिया, भवानी पेठ, पूना !

१००) जावतराज जी सोलकी, लस्कर पूना

१००) फुलीबाई सोहनलाल कावडिया, पूना

१००) मोतीलाल जी जयारलाल जी बाफना बुधवार पेठ-पूना

५१) विनयचद रेवाशकर शाह, काया थाला बीलडींग
घाटकोपर बम्बई-७७

१००) तालाराम जी रुपचद जी मीमावाला बम्बई

१५०) कपूरचद जवरचद गांधी, आगरा रोड नाका घाटकापर, बम्बई

१००) शामलाल जी राघव जी माटुगा बम्बई १६

५१) राजमल जी पुखराज जी सुराणा रविवार पेठ-पूना

५१) उत्तमचद जी गिरधारीलाल जी चोरडिया, गणेश पठ-पूना

५०) ईश्वरलाल धुनीलाल पारेख सांताक्रुज, मुबई न० ५४

५१) धनराज प्रवीणचद आणि कपनी, भवानी पठ-पूना

५०) घोगुलाम जी गेमराज जी चंगेडीया बुसीवाला मोईवाडा मुम्बई

५१) मांगीलाल धुीमाल जी सोलकी रविवार पठ-पूना

५१) देवराज जी धुनीलाल जी सबसानी मोयामाग्नी चौक पूना

५१) श्री पुखराज जी हस्तीमल जी महता पूना २

५१) मोतीलाल माणकचन्द मूथा नाना पेठ, पूना २

# मे घ च र्या

## उपोद्घात

●

चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर की वाणी को, उनके अन्तेवासी इन्द्रभूति गौतम आदि गणधरो ने, शास्त्रनिबद्ध किया। वह वाणी भव्य प्राणियो को ससार सागर से पार उतारने के लिए अर्थात् जन्म मृत्यु की व्यथा से उबारने के लिए नौका के समान है। महापुरुषो ने उस वाणी को सर्वसाधारण के लिए सुगम बनाने के लिए चार अनुयोगो मे विभक्त कर दिया। वे अनुयोग हैं—(१) चरण-करणानुयोग (२) धर्मकथानुयोग (३) गणितानुयोग और (४) द्रव्यानुयोग।

उक्त चार अनुयोगो मे से यहाँ धर्मकथानुयोग प्रस्तुत है। हिंसा, असत्य, चौर्य अब्रह्मचर्य आदि अठारह प्रकार के पापकृत्यो के फलस्वरूप नरकादि मे उत्पन्न होकर विविध प्रकार की पीडा का अनुभव करने वाले पापी जीवों के तथा अहिंसा, सत्य आदि व्रतो का अनुष्ठान करके स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त करने वाले धर्मनिष्ठ पुरुषो के जीवन वृत्तान्त धर्मकथानुयोग मे समाहित हैं। इस प्रकार धर्मकथानु

योग मे धम अधम एव पुण्य-पाप के प्रतीक प्राणियो की जीवन झांकियां प्रस्तुत की जाती हैं और उनके द्वारा जनसाधारण को पापमय प्रवृत्तियो से विमुख और पुण्य प्रवृत्तियो के सम्मुख होने की प्रेरणा प्रदान की जाती है। सक्षेप मे, अशुभ प्रवृत्तियो की ओर जाते हुए जीवो को कल्याणपथ पर, आरूढ करना धमकथानुयोग का मूल उद्देश्य है।

नायाधम्मकहा, उवासगदसा, अतगडदसा, अनुत्तरोववाइयदशा और विपाक, ये पाच अग पूर्णरूपेण धमकथाओ के प्रतिपादक हैं। इनके अतिरिक्त अन्य आगमो मे भी प्रासगिक रूप मे अनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं, जैसे सूत्रकृतांग, भगवती और उत्तराध्ययन म। इनमे से यहाँ हम 'नायाधम्मकहा' के प्रथम मेघकुमार अध्ययन पर ही किंचित विवेचन करेंगे।

'नायाधम्मकहा' को 'ज्ञातधमकथा' और 'णातृधमकथा' कहा जाता है। ज्ञातधमकथा का अर्थ है—उदाहरण प्रधान धम कथा, तात्पय यह है कि जिस ग्रन्थ मे ज्ञातो वाली अर्थात् उदाहरणो वाली धमकथाएँ हो वह ज्ञातधर्मकथा है। णातृधर्मकथा का अर्थ है—जिसमे ज्ञाता अथवा ज्ञातृवशोद्भव भगवान् महावीर द्वारा कथित कथाएँ हों, वह शास्त्र।

नायाधम्मकहा अल्पप्रज्ञजनो के लिए भी सुगम है और उसके मनन अध्ययन से जीवन म दिव्य आलोक का प्रादुर्भाव होता है। इसी हेतु उस पर यहाँ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता है। ●

# मे घ च र्या

मूल—तेण कालेण तेण समएण चपा नाम नयरी होत्था। वण्णओ। तीसेण चपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए पुण्णभद्दे नाम चेइए होत्था। वण्णओ।

तत्थण चपाए नयरीए कोणिए नाम राया होत्था। वण्णओ। —सूत्र १

मूलार्थ—उस काल मे और उस समय मे चम्पा नामक नगरी थी। उसका वर्णन यहाँ समझ लेना चाहिए। उस चम्पा नगरी से बाहर, उत्तर पूर्व दिग्भाग (ईशानकोण) मे पूर्णभद्र नामक चैत्य अर्थात् व्यन्तरायतन था। उसका वर्णन समझ लेना चाहिए।

चम्पा नगरी मे कोणिक नामक राजा (राज्य करता) था। यहाँ राजा का वर्णन समझ लेना चाहिए। —१

विशेष बोध—इस सूत्र मे प्रारम्भ मे काल और समय का उल्लेख किया गया है। सामान्य रूप से ये दोनो शब्द समानार्थक माने जाते हैं, किन्तु यहाँ दोनो के अर्थ मे विशेषता है। काल सामान्य काल का और समय विशेष काल का वाचक है। यहाँ काल शब्द से प्रकृत अवसर्पिणी का चौथा आरा ग्रहण किया गया है और समय शब्द से प्ररूपणा का समय अर्थात् भगवान् महावीर का समय।

नगरी, चैत्य और राजा का विस्तृत वर्णन औपपातिकसूत्र मे किया गया है। उसी को यहाँ ग्रहण लेने या समझ लेने का उल्लेख है। —१

मूल—तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स अन्तेवासी अज्जसुहम्मे नाम थेरे जाइसपन्ने कुल-सपन्ने, वल-रूव-विणय-णाण-दसण-चरित्त लाघव सपन्ने, ओयसी, तेयसी, वच्चसी, जससी,

जियकोहे, जियमाणे, जियमाए, जियलोहे, जिइंदिए, जियनिद्दे, जियपरीसहे,

जीवियास-मरणभयविप्पमुक्के, तवप्पहाणे, गुणप्पहाणे एव करण-चरण-निग्गह-णिच्छय-अज्जव-मद्दव लाघव-खति-मुत्ति-विज्जा-मत-बभ-वेय-नय नियम-सच्च-सोय-णाण-दसण-चरित्तओराले,

घोरे, घोरव्वए, घोरतवस्सी, घोरवभचेरवासी, उच्छूढ-सरीरे, सखित्तविउलतेउलेस्से, चोद्दसपुव्वी, चउणाणोवगए पचहिं अणगारसएहिं सद्धि सपरिवुडे,

पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे सुह सुहेण विहरमाणे जेणेव चपानयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, अहापडिरूव ओग्गह ओगिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ।

—सूत्र २

मूलार्थ—उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य आर्यसुधर्मा नामक स्थविर थे। वे जाति अर्थात् मातृपक्ष और कुल अर्थात् पितृपक्ष से सम्पन्न थे, बलवान् और रूपवान् थे। विनय, ज्ञान, दर्शन और चारित्र से सम्पन्न थे। वस्त्रादि उपधि कम होने के कारण द्रव्य लाघव से तथा तीन प्रकार के गौरव की कमी होने से भावलाघव से सम्पन्न थे। तपस्तेज देह पर दिखाई देने के कारण ओजस्वी थे। भीतर से आत्मा देदीप्यमान होने से

तेजस्वी थे अथवा तेजोलेश्या सम्पन्न होने के कारण तेजस्वी थे। निरवद्यभाषी एव वचन मे लब्धिवल होने से वचस्वी थे। तप सयम की उत्कृष्ट साधना होने से दूर-दूर तक उनका यश फला था।

उन्होंने क्रोध, मान, माया और लोभ के उदय को विफल करके उन पर विजय प्राप्त की थी।

इन्द्रियों का स्वभाव अपने-अपने विषय मे प्रवृत्ति करना है। विषय के साथ इद्रियो का जब सम्पक होता है तो वे अपने विषय को ग्रहण करती हैं। उनके इस विषय ग्रहण को रोका नही जा सकता। किन्तु इद्रियो के साथ प्रवृत्त होने वाला मन उस विषय को इष्टता अथवा अनिष्टता के रग से रजित करके उसके प्रति राग या द्वेष की वृत्ति को जगाता है। इससे आत्मा कलुषित होती है। किन्तु जो साधक इद्रिय के द्वारा उसके विषय को ग्रहण करता हुआ भी उसमे इष्ट या अनिष्ट की कल्पना नही करता अर्थात् अपने समभाव को जागृत रखता है उसकी आत्मा विषय को ग्रहण करती हुई भी राग-द्वेष की परिणति से मलीन नही होती। वही इद्रियो का विजेता कहलाता है। इस प्रकार इद्रियो को जीतने का अथ यह नही कि इद्रियो को नष्ट कर दिया जाय, अथवा उनके विषय ग्रहण के सामथ्य को नष्ट कर दिया जाय, बल्कि यह है कि इद्रियो द्वारा गृहीत विषय मे राग द्वेष की परिणति न उत्पन्न होने दी जाय। इसी अथ मे गौतम स्वामी जितेद्रिय थे।

वे निद्रा बहुत कम लेते थे और भाव निद्रा से ऊपर उठ चुके थे, अत जित-निद्र थे। क्षुधा-तृषा आदि परीषहो को सहन करने मे समथ होने के कारण जित-परीषह थे।

वे जीवन की अभिलाषा और मरण के भय से विमुक्त हो चुके थे। जीवन मरण के प्रति उनका भाव एकदम सम था। मूल गुणो और उत्तर गुणो को निरतिचार पालन करते थे। तपस्वी ऐसे थे

कि साधारण जन उनके तपश्चरण को देखकर चकित रह जाते थे। उग्र वह अत्यन्त भीषण प्रतीत होता था। अन्य विशेषण सुगम हैं, पाठक उन्हें सहज ही समझ सकते हैं। —२

विशेष बोध—श्री सुधर्मास्वामी का जन्म कोल्लाक नामक सन्निवेश में हुआ था। वह वाणिजक ग्राम के समीप था। पिता धम्मिल्ल ब्राह्मण और माता का नाम भद्दिला था। सौ वर्ष की आयु थी। भ० महावीर के निर्वाण के १२ वर्ष पश्चात् उन्हें कैवल्य का लाभ हुआ। आठ वर्ष तक केवली पर्याय में रहे।

सुधर्मास्वामी श्री महावीर स्वामी के अन्तेवासी शिष्य थे। चरणसत्तरी अर्थात् मूल गुणों का तथा करणसत्तरी अर्थात् उत्तर गुणों का पालन करने में सदा सावधान रहते थे।

> वय-समणधम्म-संजम-वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ।
> नाणाइ-तवो-कोहनिग्गहाइ चरणमेयं ॥१॥
> पिण्डविसोही समिई भावणा पडिमा इंदियनिग्गहो।
> पडिलेहण गुत्तीओ, अभिग्गहं चेव करणं तु ॥२॥

पाँच महाव्रत, दश श्रमणधर्म, संयम, वैयावृत्य, ब्रह्मचर्य की नौ वाड़ें, ज्ञानादि आचार तप, क्रोधादि निग्रह, यह सब चरण कहलाता है ॥१॥

पिण्डविशुद्धि (भिक्षा की निर्दोषता), समितियाँ, बारह भावनाएँ प्रतिमाएं, इन्द्रियनिग्रह प्रतिलेखन, गुप्तियाँ और नाना प्रकार के अभिग्रह, यह सब करण कहलाते हैं ॥२॥

इन्द्रियों का दमन करके अपने मुख्य लक्ष्य पर दृढ़ रहना महापुरुषों का लक्षण है। सुधर्मा स्वामी ऐसे ही महापुरुष थे। उनका हृदय स्फटिक रत्न के समान निर्मल था। जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, तपोमद, श्रुतमद, लाभमद और ऐश्वर्यमद से रहित होने से

मादवसम्पन्न थे। उपधि की अल्पता के कारण लाघवयुक्त क्षमावान् तथा निर्लोभ थे।

विद्याओ और मन्त्रो के ज्ञाता थे। इसके अतिरिक्त वे ब्रह्म, वेद, यम, नियम, सत्य, शौच, ज्ञान, दशन और चारित्र के महान् आराधक थे।

श्री सुधर्मास्वामी दुष्कर तप की आराधना करने के कारण घोर तपस्वो थे। जैसे भगवान् महावीर ने १३ वोलो का कठिनतर अभिग्रह धारण किया था, वे भी अभिग्रह धारण किया करते थे। साराश यह है कि श्री सुधर्मास्वामी उच्चकोटि के साधक महात्मा थे, जिनमे चारित्र सम्बन्धी भ० महावीर की सभी विशेषताएँ प्रतिबिम्बित होती थी।

श्री सुधर्मा स्वामी देह मे रहते हुए भी देहातीत दशा का अनुभव किया करते थे। शरीर के प्रति उन्हे तनिक भी ममता नही थी। इस कारण वे उसका सस्कार भी नही करते थे। अतएव उन्हे 'उच्छूढसरोरे' अर्थात् शरीर का त्यागी कहा गया है।

घोरतपश्चरण के प्रभाव से उन्हे विपुल तेजोलेश्या प्राप्त थी। उससे योजनो पयन्त के पदार्थों को भी भस्म किया जा सकता था। किन्तु वे उसका प्रयोग नही करते थे। उसे अपने अन्दर ही सक्षिप्त करके रखते थे।

वे चौदह पूर्वों के ज्ञाता थे। चौदह पूर्वो के नाम इस प्रकार हैं—

१—उत्पाद पूव
२—अग्रायणीय
३—वीर्यप्रवाद
४—अस्तिनास्ति प्रवाद
५—ज्ञान प्रवाद
६—सत्य प्रवाद
७—आत्म प्रवाद
८—कर्मप्रवाद
९—प्रत्याख्यानप्रवाद
१०—विद्यानुवाद
११—अवध्य
१२—प्राणायु
१३—क्रिया विशाल
१४—लोक विन्दुसार

सुधर्मास्वामी चार ज्ञान के धारक भी थे। इस प्रकार ज्ञान और चारित्र की सम्पदा से सम्पन्न थे। अपने ५०० शिष्यों के साथ एक ग्राम से दूसरे ग्राम पैदल विहार करते हुए पधारे। चम्पा नगरी के पूर्ण भद्र उद्यान में आज्ञा लेकर ठहरे और संयम तथा तप से आत्मा को भावित करने लगे। —२

मूलपाठ—तए णं चंपाए नयरीए परिसा निग्गया, कोणिओ निग्गओ, धम्मो कहिओ। परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स जेट्ठे अंतेवासी अज्जजंबूणामं अणगारे कासवगोत्तेणं सत्तुस्सेहे जाव अज्जसुहम्मस्स थेरस्स अदूर-सामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से अज्जजंबूणामे अणगारे जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले, संजायसड्ढे संजायसंसए संजायकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे उप्पन्नसंसए उप्पन्नकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठित्ता जेणामेव अज्जसुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जसुहम्मं थेरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता अज्जसुहम्मस्स थेरस्स णच्चासन्ने णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहं पंजलिउडे विणएणं पज्जुवासमाणे एवं वयासी—

जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयंसंबुद्धेणं पुरिसुत्तमेणं पुरिससीहेणं पुरिसवरपुंडरीएणं पुरिसवरगंधहत्थिणा लोगुत्तमेणं लोगनाहेणं

लोगहिएण लोगपईवेण लोगपज्जोयगरेण अभयदएण चक्खु-दएण मग्गदएण सरणदएण बोहिदएण धम्मदएण धम्मदेसएण धम्मनायगेण धम्मसारहिणा धम्मवर चाउरतचक्कवट्टिणा दीवोत्ताण सरणगइपइट्ठा अप्पडिहयवरनाणदसणधरेण वियट्टछउमेण जिणेण जावएण तिण्णेण तारएण बुद्धेण बोहएण मुत्तेण मोयगेण सव्वण्णुणा सव्वदरिसिणा सिवमय-लमरुअमणतमक्खयमव्वाबाहमपुणराविति्तय सासय ठाणमुव-गएण पचमस्स अगस्स विवाहपण्णत्तीए अयमट्ठे पण्णत्ते, छट्ठस्स ण भते ! अगस्स णायाधम्मकहाण के अट्ठे पण्णत्ते ?

'जम्बु त्ति' तए ण अज्जसुहम्मे थेरे अज्जजबूणाम अणगार एव वयासी–एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण छट्ठस्स अगस्स दो सुयक्खधा पण्णत्ता, तजहा-णायाणि य धम्मकहाओ य ।

जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण छट्ठस्स अगस्स दो सुयक्खधा पण्णत्ता, तजहा णायाणि य धम्मकहाओ य, पढमस्स ण भते ! सुयक्खधस्स समणेण जाव सपत्तेण णायाण कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

एव खलु जबू ! समणेण जाव सपत्तेण णायाण एगूण-वीस अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—

१ उक्खित्तणाए २ सघाडे ३ अडे ४ कुम्मे य ५ सेलगे ।
६ तुबे य ७ रोहिणी ८ मल्ली ९ मायदी १० चदणा इय ।१।
११ दावद्दवे १२ उदगणाए १३ मडुक्के १४ तेयली वि य । १५ नदीफले १६ अवरकका १७ आइन्ने
१८ सुसुमाइय ॥२॥
अवरे य १९ पुडरीयणायए एगूणवीसइमे ॥३॥

मूनाथ—सुधर्मा स्वामी जब चम्पा नगरी में पधारे तब नगरी के निवासियों का समूह उनकी देशना श्रवण करने के लिए निकल पड़ा। महाराजा कोणिक भी निकले। स्वामी जी ने उन सबको धर्म प्रवचन सुनाया। उसके पश्चात् जनसमूह जिस ओर से आया था उसी ओर लौट गया। राजा कोणिक भी लौट गया।

उस काल और उस समय आर्य सुधर्मास्वामी के बड़े शिष्य जम्बू नामक अनगार, जो काश्यप गोत्रीय थे और सात हाथ ऊँचे थे, यावत् आर्य सुधर्मा स्थविर से न बहुत दूर और न बहुत निकट, ऊर्ध्वजानु और अधःशिरस्क होकर ध्यान रूपी कोठे मे प्रविष्ट एव सयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए बैठे थे। उनके मन में तत्त्व की चर्चा करने की भावना उत्पन्न हुई।

श्रद्धा, सशय और कुतूहल का उद्भव हुआ। श्रद्धा, संशय और कुतूहल उत्पन्न एवं समुत्पन्न हुआ। वे उत्थान करके उठ खड़े हुए और स्वामी जी के समीप आए। तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, वन्दन और नमस्कार किया। वन्दा नमस्कार करने के पश्चात् आर्य सुधर्मा स्थविर से न अधिक निकट, न अधिक दूर स्थित होकर शुश्रूषा एव नमस्कार करते हुए, सम्मुख अंजलिबद्ध होकर एव पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—

भंते! श्रमण भगवान् महावीर ने पांचवें अग व्याख्याप्रज्ञप्ति का यह अर्थ कहा है तो छठे अग ज्ञात धर्मकथा का क्या अर्थ कहा है?

जम्बू स्वामी द्वारा भगवान् महावीर के लिए प्रयुक्त विशेषणों का, जो 'नमोत्थुणं' सूत्र में भी आते हैं अर्थ इस प्रकार है—

भगवान् आदिकर अर्थात् श्रुतचारित्र धर्म की आदि करने वाले हैं। प्रत्येक तीर्थंकर स्वतन्त्र नूतन तीर्थ की स्थापना करते हैं। भ० महावीर ने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ

की स्थापना की, इस कारण वे तीर्थंकर कहलाए। तीथकर किसी मुनि या ज्ञानी से उपदेश नही सुनते। वे स्वय ही वोध प्राप्त करते हैं। भ० महावीर भी इसी कारण स्वयबुद्ध हैं।

पुरुषवग मे सवसे उत्तम होने से पुरुषोत्तम, अदभुत पराक्रमी होने से सिंह के समान तथा जीवन अत्यन्त निमल होने के कारण पुरुष पुण्डरीक कहे गए।

गन्धहस्ती अत्यन्त वलिष्ठ होता है। उसकी गन्ध मात्र से अन्य हस्ती दूर भाग जाते हैं। भगवान् के निकट एकान्तवादी अन्यतीर्थिक टिक नही सकते थे, अतएव उन्हे पुरुषो मे गधहस्ती के समान कहा।

तीनो लोको मे भगवान् से वढ कर कोई श्रेष्ठ नही, इस कारण भगवान् लोकोत्तम हैं। इसी प्रकार लोक के नाथ—योग क्षेमकर्त्ता हैं, हितकर्त्ता हैं लोक के पथ प्रदशक होने के कारण लोक प्रदीप हैं और लोक मे अज्ञानान्धकार का विनाश करने वाले सद्ज्ञान रूपी उद्योत का प्रसार करने से लोकप्रद्योतकर हैं। किसी को भय उत्पन्न न करने, दूसरो को अभय का उपदेश करने तथा जरा मरण का भय मिटाने के कारण अभयदाता हैं। श्रुतज्ञान रूप चक्षु देने वाले, मुक्ति का माग प्रदर्शित करने वाले, सासारिक दु खो से पीडित जनो को शरण देने वाले, वोधिप्रदान करने वाले, धमदाता, धर्मोपदेशक, धर्मनायक, धम रथ के सारथि एव धम चक्रवर्ती हैं। दुगति से रक्षा करने के कारण द्वीप, त्राण, शरण और आश्रय रूप हैं।

भगवान् अप्रतिहत अर्थात् जिनमे कभी और कहीं रुकावट उत्पन्न न हो, ऐसे ज्ञान दशन के धारक हैं। घातिकम से रहित हो जाने से व्यावृत्तछद्म हैं। स्वय राग-द्वेष के विजेता और दूसरो को विजयी वनाने वाले, स्वय ससार-सागर से तीर्ण और अन्यो को तिराने वाले, स्वय वोधप्राप्त तथा दूसरो को वोध देने वाले, समस्त द्रव्यो, गुणो और पर्यायो के ज्ञाता तथा द्रष्टा हैं।

भगवान् महावीर ऐसे सिद्धिधाम को प्राप्त हैं जो शिव है अचल है, अरुज (रोगरहित) है, अक्षय है, सब प्रकार की बाधा से रहित है और जिससे लौट कर पुन जन्म-मरण का भागी नहीं होना पड़ता, जो शाश्वत है।

जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—'प्रभो! उन सिद्धिधाम को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक पाँचवें अग का यह (जो मैंने समझ लिया) अर्थ कहा है किन्तु छठे नायाधम्म कहा अग का क्या अर्थ कहा है?

जम्बू स्वामी के प्रश्न करने पर सुधर्मा स्वामी ने कहा—'जम्बू! यावत् मुक्तिप्राप्त श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी ने छठे अग के दो श्रुतस्कध कहे हैं जो इस प्रकार हैं—ज्ञात और धर्मकथाएँ।

जम्बूस्वामी ने पुन प्रश्न किया—श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त भगवान् ने प्रथम श्रुतस्कध ज्ञात के कितने अध्ययन कहे हैं?

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—जम्बू! श्रमण भगवान् ने प्रथम श्रुतस्कध के निम्नलिखित १६ अध्ययन कहे हैं—

(१) उत्क्षिप्तज्ञात (२) सघाटक (३) अण्ड (४) कूर्म (५) शैलक (६) तुम्ब (७) रोहिणी (८) मल्ली (६) माकन्दी (पुत्र) (१०) चन्द्रिका (११) दावद्रव (१२) उदक ज्ञात (१३) मण्डूक (१४) तेतली (पुत्र) (१५) नन्दीफल (१६) अपरकका (१७) आकीर्ण (१८) सुसुमा और (१६) पुण्डरीक ज्ञात।

यहाँ 'ज्ञात' शब्द प्रत्येक अध्ययन के साथ समझ लेना चाहिए।—३

विशेषबोध जम्बूस्वामी के श्रद्धाशील निर्मल हृदय में जिज्ञासा का सहज भाव उत्पन्न हुआ। तब वे गुरुजी की सेवा में उपस्थित हुए। उस समय में उनके हृदय में उठने वाली विचार-लहरियों का सार तत्त्व यहाँ अत्यन्त कुशलतापूर्वक चित्रित किया गया है। 'जायसड्ढे, जायससए, जायकोउहल्ले' इन शब्दों को सजात, उत्पन्न और समुत्पन्न शब्दों के रूप में बार बार दोहराया गया है। ये शब्द उनके

मनोमन्थन के उतार चढाव को अभिव्यक्त करते हैं। इन शब्दो से जम्बू स्वामी के मतिज्ञान की विशेषता ध्वनित होती है।

मतिज्ञान के चार प्रकार हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। इनमे से अवग्रह भी दो प्रकार का है—व्यजनावग्रह और अर्थावग्रह। व्यजनावग्रह श्रोत्र, घ्राण, रसना और स्पर्शनेन्द्रिय से उत्पन्न होने के कारण चार तरह का है। यह नेत्र और मन से नही होता। नेत्र और मन से सीधा अर्थावग्रह ही होता है।

व्यजनावग्रह ज्ञान की क्रमिक उत्पत्ति मे प्रथम है। वस्तुत व्यजनावग्रह मे ज्ञान की मात्रा न होकर ज्ञानोत्पत्ति की अभिमुखता होती है अथवा ज्ञान की सूक्ष्मतम मात्रा होती है। इसे समझाने के लिए आगम मे दो दृष्टान्त दिए गए हैं—प्रतिबोधिक दृष्टान्त और मल्लक दृष्टात। नीद मे सोये किसी व्यक्ति को जब आवाज दी जाती है तो शनै शनै उसे जागृति आती है। कोरे सिकोरे मे पानी की एक एक बू द डालने पर धीरे धीरे उसमे आर्द्रता आती है। इसी प्रकार इन्द्रिय और उसके विषय का धीरे धीरे सम्पर्क होता है। इस अवस्था का मन्दतम उपयोग व्यजनावग्रह है।

व्यजनावग्रह के पश्चात क्रमश पुष्ट, पुष्टतर होता हुआ वही उपयोग अर्थावग्रह, ईहा, अवाय धारणा आदि के रूप मे परिणत होता है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि जम्बूस्वामी को 'जायसड्ढे' 'जायससए' किस अभिप्राय से कहा गया है? श्रद्धा और सशय परस्पर विरोधी हैं। अगर जम्बू स्वामी के मन मे श्रद्धा उत्पन्न हुई तो सशय कसे और सशय उत्पन्न हुआ तो श्रद्धा कसे? इसका उत्तर यह है कि सशय श्रद्धा पूवक भी हो सकता है। सुधर्मा स्वामी के प्रति एव तत्त्व के प्रति उनके मन मे पूर्ण श्रद्धा थी, सशय तो किसी विशेष बात का निश्चय न हो पाने के कारण था—छठे अग के अर्थ के विषय मे जिज्ञासा रूप शका थी।

जम्बू स्वामी ने अतीव विनयपूर्वक प्रश्न किए। उन्होंने पांचवें अंग भगवती के भाव सुने थे। भगवती के प्रारम्भ में 'नमुत्थु ण' के पाठ द्वारा श्रमण भगवन्त महावीर की स्तुति की गई है। जम्बू स्वामी ने उसी पाठ का उच्चारण किया। तत्पश्चात् अपना प्रश्न उपस्थित किया। इस प्रकार उन्होंने विनयधर्म का पालन किया। विनय से मतिज्ञान निर्मल होता है और श्रुत ज्ञान की प्राप्ति होती है।

विनययुक्त होकर सूत्र, अर्थ और उभय (सूत्रार्थ) पूछने वाले शिष्य को गुरु सुधर्मा स्वामी ने शास्त्रविधि के अनुसार जम्बू स्वामी को वह पाठ सुनाया[1] जो उन्होंने श्री महावीर से सुना था।

सर्वज्ञभाषित वचन ही आगम कहलाते हैं सुधर्मास्वामी उस समय छद्मस्थ थे, इस कारण उन्होंने अपनी ओर से कुछ नहीं कहा। कोई अपनी बात सर्वज्ञ के सिर न मढे और न सर्वज्ञ के कथन में अपनी ओर से कुछ जोड़े यह जैन परम्परा की मान्यता है। इन प्रश्नोत्तरों का इस दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

मूल—जइ ण भते ! समणेण जाव सपत्तेण एगूण-वीसा अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा-उक्खित्तणाए जाव पुण्डरीए त्ति य, पढमस्स ण भते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहेवासे दाहिणड्ढे भरहे रायगिहे णाम नयरे होत्था। वण्णओ। गुणसिलए चेइए। वण्णओ।

---

१ एव विणयजुत्तस्स, सुत्त अत्थ च तदुभय।
पुच्छमाणस्स सीसस्स वागरिज्ज जहासुय॥
—उत्तराध्ययन, अ० १ गा, २३

तत्थ ण रायगिहे नयरे सेणिए णाम राया होत्था-महयाहिमवत वण्णओ ।

तस्स ण सेणियस्स रण्णो नन्दा णाम देवी होत्था-सुकुमालपाणिपाया । वण्णओ ।

तस्स ण सेणियस्स रण्णो पुत्ते नन्दाए देवीए अत्तए अभयणाम कुमारे होत्था । अहीण जाव सुरूवे, सामदड-भेय-उवप्पयाणणीति सुप्पउत्तणयविहिन्नू ईहावूह-मग्गण-गवेसण-अत्थ-सत्थ-मइविसारए उप्पत्तियाए वेणइयाए कम्मियाए परिणामियाए चउविहाए बुद्धीए उववेए । सेणियस्स रण्णो बहुसु कज्जेसु य कुडुवेसु य मतेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य णिच्छएसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे मेढी पमाण आहारे आलबण चक्खू मेढीभूए पमाणभूए आहारभूए आल-बणभूए चक्खुभूए सव्वकज्जेसु सव्वभूमियासु लद्धपच्चए विइण्ण वियारे रज्जधुरचितए यावि होत्था । सेणियस्स रण्णो रज्ज च रट्ठ च कोस च कोट्ठागार च वल च वाहण च पुर च अतेउर च सयमेव समुवेक्खमाणे २ विहरइ । —सूत्र ४

मूलार्थ—जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से पूछा—श्रमण भगवान् महावीर ने यदि उत्क्षिप्त ज्ञात से लेकर पुण्डरीक ज्ञात तक उन्नीस अध्ययन कहे तो उनमे से प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ है ?

सुधर्मा बोले—उस काल उस समय मे जम्बूद्वीप के अन्दर दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र मे राजगृह नामक नगर था । उसका वर्णन औपपातिक सूत्र के नगर वर्णन के अनुसार समझना । नगर से बाहर गुणशिलक नामक बाग था । उसका भी वर्णन यहाँ समझ लेना चाहिए ।

राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था। यह महा हिमवान शैल आदि के समान राजाओं में प्रधान था,

श्रेणिक राजा की नन्दा नामक रानी थी। रानी के हाथ-पैर आदि बहुत सुकुमार थे शरीर की सुकुमारता के साथ वह स्वभाव से भी मृदु थी। उसका पुत्र अभयकुमार था। अभयकुमार बड़ा सुन्दर, सुलक्षण और बुद्धिशाली था। वह साम, दंड, भेद एवं उपप्रदान नीति में निपुण था। ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा तथा अर्थशास्त्र में पटु था। औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी एवं पारिणामिकी, इन चारों प्रकार की बुद्धियों का धनी था। इतना बुद्धिमान् होने से वह अपने पिता राजा श्रेणिक का जीवनाधार बन गया था। राजा के बहुत कार्यों में वह सहयोग देता था। कौटुम्बिक कार्यों में, मंत्रों, गुह्यों और रहस्यपूर्ण कार्यों में भी उससे परामर्श लिया जाता था—बार-बार उससे पूछा जाता था। वह मेढी (खलिहान के बीच गाड़ी जाने वाली लकड़ी) के समान था अर्थात् सभी कार्यकलापों का केन्द्र था, आधार, प्रमाण, आलम्बन और चक्षु के समान था। औषधियों से लगा कर राजमहलों तक सवत्र उसकी देखरेख थी। राज्य का समस्त कार्य भार अभयकुमार के समर्थ कंधों पर था।—४

विशेष बोध—इस पाठ में प्रधान रूप से अभयकुमार की गरिमा प्रदर्शित की गई है। बौद्धिक सम्पत्ति उसमें असामान्य थी। व्यापारी वर्ग में पुरातन काल से एक परम्परा चली आ रही है। वर्ष के प्रारंभ में वे जब नये बही-खाते चालू करते हैं तो उनके प्रारंभ में मांगलिक रूप में चार बातें लिखते हैं, यथा—

१—श्री गौतम स्वामी की लब्धि

२—शालिभद्र की ऋद्धि

३—अभयकुमार की बुद्धि

४—मेघ ताजी का गुण।

एक करोड बहत्तर लाख ग्रामो का अधिपति राजा श्रेणिक मगध देश की प्रजा का पालन करता था। उस विशाल राज्य का कार्यभार अभयकुमार के हाथो मे था। इस कारण उसे 'मेढीभूत' कहा गया है। खलिहान के बीच एक खभा गाडा जाता है। गेहूँ आदि के सूखे पौधे खेत मे से काट कर जब खलिहान मे लाये जाते हैं तब उनमे से गेहूँ आदि को अलग करने के लिए बलो से उन्हे कुचलवाया जाता है। बल उस खभे के इदगिद ही घूमते हैं। मेढो उनका केन्द्र होती है। अभयकुमार भी सारी राज्यव्यवस्था का केन्द्र था।

अभयकुमार को जो असाधारण बुद्धि वैभव प्राप्त हुआ था वह पूर्वोपार्जित प्रबल पुण्य का परिपाक था। उस वैभव का अभयकुमार ने राज्य, राष्ट्र और प्रजा के हित मे उपयोग करके सदुपयोग किया। दुरुपयोग कही नही होने दिया। यही कारण है कि आज भी उसकी कीर्ति भूमण्डल मे व्याप्त है और उसे आदर के साथ स्मरण किया जाता है।

मूल—तस्स ण सेणियस्स रण्णो धारिणी नाम देवो होत्था। जाव सेणियस्स रण्णो इट्ठा जाव विहरइ। (५)

मूलार्थ—उस श्रेणिक राजा की धारिणी नामक रानी थी। वह सुकुमार शरीर वाली यावत श्रेणिक राजा की इष्ट थी यावत् श्रेणिक राजा के साथ मानवीय सुखो का उपभोग करती हुई रहती थी। (५)

विशेप बोध—धारिणी के जीवन मे ये लक्षण पाये जाते थे जो कवि ने अपनी भाषा मे व्यक्त किए हैं—

कार्येपु मन्त्री करणेपु दासी, भोज्येपु माता सदनेपु रम्भा।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री, भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुर्लभा॥

अर्थात्-कार्यों मे मन्त्री के समान, भोजन मे दासी के समान, घर मे रभा के समान, धर्मानुकल और क्षमागुण मे पृथ्वी के

समान—इन छह गुणों को धारण करने वाली पत्नी संसार में दुर्लभ होती है।

अथवा—

रम्या सुरूपा सुभगा विनीता,
प्रेमाभिमुख्या सरलस्वभावा।
सदा सदाचार - विचारदक्षा,
सम्प्राप्यते पुण्यवशेन पत्नी।

पुण्य के उदय से ही ऐसी पत्नी की प्राप्ति होती है, जो रमणीय हो, सुन्दर रूप वाली, सौन्दर्यशालिनी, विनीता, प्रेम-परायणा, सरल स्वभाववाली एवं सदैव सदाचार एवं सद्‌विचार में कुशल हो।

हिन्दी-कवि कहता है—

अंग आय मुख आकृति, चेष्टा चाल ज बोल॥
जोता समझी चतुर नर, तुरत करो ले मोल॥

धारिणी उल्लिखित सब गुणों की धारिणी थी। (१)

मूल—तए णं सा धारिणीदेवी अन्नयाकयाइं तंसि तारिसगंमि सुसिलिट्ठ छक्कट्ठगलट्ठमट्ठसंठिय खम्भुग्गय-पवरवरसालभंजिया उज्जलमणिकणगरयणथूभिय विड-यकजालद्धचंदणिज्जूहकंतरकणियालि

विभत्तिकलिए सरसच्छधाउवलवण्णरइए बाहिरओ दूमियघट्ठमट्ठे अब्भिंतरओ पसत्थसुविलिहियचित्तकम्मे णाणाविहपंचवण्णमणिरयणकुट्टिमतले पउमलया फुल्ल-वल्लिवरपुप्फजाइ उल्लोय चित्तियतले वंदणवरकणगकलस सुविणिम्मियपडिपुंजियसरसपउमसोहंतदारभाए पयरगलं-बंतमणिमुत्तदाम सुविरइयदारसोहे सुगंधवरकुसुममउय पम्हलसयणोवयारे मणहिययणिव्वुइयरे कप्पूर-लवंग

मलय चदण-कालागुरु-पवरकु दुरुक्क-तुरुक्क-धूवडज्झत सुरभिमघमघतगधुद्धुयाभिरामे सुगधवरगधिए गधवट्टि-भूए मणिकिरणपणासियधयारे किं वहुणा, जुईगुणेहिं वेल-विय सुरवरविमाणे वरघरए—

तसि तारिसगसि सयिणज्जसि सालिगणवट्टिए, उभओ विव्वोयणे, दुहओ उन्नए, मज्झेण य गभीरए गगापुलिणवा-लुया उद्दालसालिसए उवचिय खोमदुगुल्ल परपडिच्छण्णे अच्छरयमलयनयतय कुसत्तलिवसिहकेसर पच्चथुए

सुविरइयरयत्ताणे रत्तसुयसवुए सुरम्मे आइणग-रूय-वूर-णव णीयतुल्लफासे—

पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी-ओहीरमाणी एग मह सत्तुस्सेह रययकूडसन्निह सोमागार लीलायत-जभायमाण गगणयलाओ ओयरत मुहमतिगय गय पासित्ताण पडिवुद्धा । (६)

मूलाथ—उसके पश्चात धारिणी देवी ने किसी समय अपने उत्तम महल मे उत्तम शय्या पर सोते समय अर्धनिद्रावस्था मे, स्वप्न मे एक हाथी देखा। यहाँ महल और शय्या का जो वणन किया गया है वह इस प्रकार है।

महल को दृढ वनाने के हेतु उनमे श्लेपद्रव्य से लकडी के छह छह खण्ड बने हुए थे। वे घिसे हुए सोने के समान सुन्दर एव पुतलियो से शोभा दे रहे थे।

छोटी-छोटी छतरियाँ उज्ज्वल मणियो से वनी थी। वे मरकत, मख, इन्द्रनील, वैडूय आदि रत्नो से जटित थी। इन छतरियो क कबूतर-पक्षियो के चित्रयुक्त गवाक्ष वने हुए थे। सोपानो तथा द्वार के दोनो ओर सुन्दर घोडले बने थे। रत्नजटित घोडलो मे से पानो

निकलने की नालिया थीं। भीतर शयनागार मे सिंह, मीन, मकर आदि के चित्र थे।

मकान की पुताई गेरू आदि धातुओ से हुई थी। खडी से श्वेत बनाया गया था। भीतर बहुत से चित्र बने थे। सुगन्धमय पुष्पो की सजावट थी। वह सुख देने वाला था।

कपूर, लवङ्ग, मलयचन्दन, कालागुरु प्रवरमु तुरुष्कगन्ध तुरुष्क (लोबान) धूप से वह महक रहा था, मानो नानाविधपुष्पों से सम्पादित द्रव्यो से वह सुवासित हो रहा है। एतदर्थ वह गन्ध द्रव्य की गोली जैसा बना हुआ जान पड़ता है। वह नानाविध मणियों से प्रकाशित है। अधिक क्या, वह शयनागार अपने सब दिशाओ को गुणों द्वारा तिरस्कार कर रहा था। ऐसे शयनागार मे प्रशंसा करने जैसी शय्या पर शरीर की लम्बाई के बराबर लम्बे तकिया से युक्त तथा दोनों तरफ सिर और परों की ओर छोटे छोटे तकिये रख हैं इसलिए वह दोनो ओर से कुछ ऊंची बनी हुयी है। बीच म गहराई लिये हुए है गंगा नदी की बालू की तरह पर रखते ही नीचे जाती है। अनेक प्रकार के चित्र शोभा दे रहे हैं, ऐसे सुन्दर कपड़े से ढकी हुयी है। मलय नामक वस्त्र से ढांकी जाती है। सौहृवेसर यन्त्र का नाम है जिस पर पूर्णी ? टिये अर्थात् गलीचा, गलीचा पर और एक वस्त्र लगाया जाता है। मच्छरों की रक्षा करने के लिए लाल रंग की मच्छरदानी टगी हुयी थी।

मृगादि के चर्म से बना वस्त्र का नाम आजिनर, कपास का नाम तूल, चोरनी विशेष वनस्पति का नाम धुर नवनीत मक्खन आकड़ाकी रुई तुल्य है। शय्या का स्पर्श इन सब के समान कोमल का उस शय्या पर धारिणी देवी सोई हुयी थीं।

रात्रि के प्रथम प्रहर के बाद के समय म कुछ नींद और कुछ जागती थी। ऐसी अवस्था में निद्रा के झोरों का अनुभव कर रही

थी, उसी समय राणी ने एक हाथी का स्वप्न देखा। वह हाथी सात हाथ का ऊंचा था, चादी के पर्वत जैसा था, श्वेत, शुभ सब अङ्गो मे सुदर था, क्रीडा करते हुये तथा जभाते हुये आकाश माग से उतरते हुये हाथी को मुँह मे प्रवेश करते हुए देखा। ऐसा स्वप्न देखकर राणी जागृत हो गई।

विशेप वोध—प्राचीन सस्कृति की एक झलक यहाँ दिखाई देती है। भगवान् महावीर के समय राजा महाराजाओ के भी भवनो मे लकडी का उपयोग किया जाता था। खडी चूना से उनकी पुताई होती थी। स्वास्थ्य और सादगी के लिहाज से वे भवन अतीव लाभ दायक होंगे।

शयनागार की सजावट खूब की जाती थी। शय्या अधिक से अधिक सुखद होती थी। फिर भी प्रतीत होता है कि उन पर खर्च कम किया जाता था और सुख-सुविधा अधिक हो, इस वान का पूरा लक्ष्य रखा जाता था। उस युग के मनुष्य कम खच मे भी पूण सन्तोप अनुभव करते थे। सादगी और सन्तुष्टि उस समय की विशेपता थी। यही कारण था कि आज के समान आकुलता और असन्तोप उस समय नहीं था। उस समय की जनता अपरिमित आकाक्षाओ का शिकार नही थी।

क्षोम और दुकूल वारीक वस्त्र कहे हैं। इससे स्पष्ट है कि उस समय भी आज के जैसे वारीक वस्त्र वनते थे और वे भी विविध प्रकार के होते थे।

स्वप्न के विपय मे कहा जाता था—

रात्रे प्रथमे यामे दृष्ट स्वप्नश्च फलति वर्षेण,
स्वप्नो द्वितीययामे फलति च मासाष्टकेन नियमेन।
जातस्तृतीययामे षण्मासात्सुप्तयामस दृष्ट,
पक्षेण फलति प्रात दृष्ट स्वप्नश्च तत्कालम ॥

—श्री घासीलालजी महाराज

रात्रि के प्रथम प्रहर मे देखा स्वप्न एक वर्ष मे फल देता है। दूसरे प्रहर मे देखा हो तो आठ मास मे, तीसरे प्रहर का छह मास म, चौथे प्रहर का एक पक्ष मे और प्रात काल देखा स्वप्न तत्काल फल देता है।

कारण के आधार पर स्वप्न नौ प्रकार का कहा गया है—

१—अनुभूत—पहले अनुभव की हुई वस्तु का स्वप्न,

२—दृष्ट—देखी हुई वस्तु सबधी

३—श्रुत—कानो से सुनी हुई वस्तु सबधी

४—प्रकृति विकारज—वात पित्त या कफ के विकार से उत्पन्न होने वाला।

५—स्वभावत —स्वभाव से आने वाला।

६—चिन्ता समुद्भूत—जागत अवस्था की चिन्ता से होने वाला।

७—दैविक—देवता के निमित्त से आने वाला।

८—धर्मकर्मप्रभावत —धर्म कर्म के प्रभाव से होने वाला।

९—पापोद्रेकसमुत्थ—पाप के उदय से आने वाला।

इनमे से ६ स्वप्न प्राय निरर्थक होते हैं। अशुभ स्वप्न मल मूत्र का त्याग करने से निष्फल हो जाते हैं। शुभ स्वप्न देखने के पश्चात् भगवत् भजन एव धर्म चिन्तन करते हुए जागते रहना उचित है। (६)

मूल—तए ण सा धारिणी देवी अयमेयारूव उराल कल्लाण सिव धन्न मगल्ल सस्सिरीय महासुमिण पासित्ताण पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठा चित्तमाणन्दिया पीइमणा परम-सोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया धाराहयकलवपुप्फग पिव समूससियरोमकूवा त सुमिण ओगिण्हइ ओगिण्हित्ता सय-णिज्जाओ उट्ठेइ, उट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चो रुहित्ता अतुरियमचवलमसभताए अविलबियाए रायहससरि-सीए गईए जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवाग-

च्छित्ता सेणिय राय ताहिं इट्ठाहिं कताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं उरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं मियमहुररिभियगभीर सस्सिरीयाहिं गिराहिं सलवमाणी २ पडिबोहेइ, पडिबोहित्ता सेणिए ण रण्णा अब्भणुन्नाया समाणी नाणामणिकणगरयणभत्ति-चित्तसि भद्दासणसि निसीयइ, निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया करयल परिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अर्जलि कट्टु सेणिय राय एव वयासी—

एव खलु अह देवाणुप्पिया ! अज्ज तसि तारिसगसि सयणिज्जसि सालिगणवट्टिए जाव नियगवयणमइवयत गय सुमिणे पासित्ताण पडिवुद्धा। त एयस्स ण देवाणुप्पिया ! उरालस्स जाव सुमिणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? (७)

मूलार्थ – धारिणी देवी इस प्रकार के प्रधान कल्याणकारी, शान्तिकारी, प्रशसनीय, मगलकारक, सुशोभन, महास्वप्न को देखकर जागी। उसका हृदय हर्षित और सतुष्ट हुआ। चित्त आनन्दित हुआ। मन प्रसन्न हुआ। अत्यन्त सौमनस्य हुआ। हर्ष के कारण उसका हृदय फूल उठा। मेघ की धारा से आहत कदम्ब पुष्प की तरह वह रोमांचित हो गई। उसने अपने स्वप्न को समझा।

धारिणी स्वप्न को समझ कर शय्या से उठी और पाद पीठ से नीचे उतरी। फिर त्वरा रहित एव चपलता-रहित असम्भ्रान्त राजहस के समान गति से चल कर अपने पति राजा श्रेणिक के पास पहुची। वहाँ पहुँचकर उसने इष्ट कमनीय प्रिय मनोज्ञ अतिमनोहर उदार कल्याणमय, शिवमय, धन्य, मागलिक, सश्रीक, हृदयहारी, हृदय में

अतीव आह्लाद उत्पन्न करने वाली मित मधुर एवं मीठी वाणी बोल कर राजा को जगाया।

श्रेणिक ने जागकर रानी को बैठने की आज्ञा दी। तब रानी धारिणी नानाविध मणियों, रत्नों और स्वर्ण से जटित होने के कारण चित्र विचित्र भद्रासन पर बैठी। विश्राम लेने के पश्चात् सुखद आसन पर आसीन रानी ने दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक पर अञ्जलि करके श्रेणिक राजा से कहा—

देवानुप्रिय! आज रात्रि में शरीर प्रमाण पूर्ववर्णित शय्या पर सोते समय मैंने आकाश से उतरते हुए हाथी को अपने मुख में प्रवेश करते देखा है। स्वप्न देखते ही मैं जाग उठी। देवानुप्रिय! इस उदार शुभ स्वप्न से किस फल की प्राप्ति होगी? (७)

विशेष बोध—मंगलमय महास्वप्न देखने वाली धारिणी एक ओर शृंगार का घर थी तो दूसरी ओर त्याग तप की मोहक मूर्ति थी। श्रेणिक की यह प्रिया शान्ति और संयम की शोभा थी। इन्हीं गुणों के प्रभाव से उसने कल्याणकारी गज का स्वप्न देखा।

"रायहंस सरिसीए गईए जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ" इस पाठ से स्पष्ट है कि राजा और रानी के शयनकक्ष पृथक् पृथक् थे। दम्पती के शयनगृह अलग अलग रहने से विकार-वासना मर्यादित रहती है और सात्त्विक भाव की सुरक्षा होती है।

पत्नी को पति के साथ किस प्रकार का विनम्रतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए यह तथ्य भी इस पाठ से भली भांति प्रकट होता है। पति को पत्नी का आदर करना चाहिए, यह बात श्रेणिक के व्यवहार से प्रकट होती है। (७)

मूल—तए णं सेणिए राया धारिणीए देवीए अन्तिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ तुट्ठ जाव हियए धाराहयनीवसुरभि कुसुमचंचुमालइयतणू ऊसवियरोमकूवे तं सुमिणं ओ-

गिण्हइ, ओगिण्हित्ता ईह पविसइ, पविसित्ता अप्पणो साभाविएण मइपुव्वएण बुद्धि विण्णाणेण तस्स सुमिणस्स अत्थोग्गह करेइ, करित्ता धारिणि देविं ताहिं जाव हिययपल्हायणिज्जाहिं मिउमहुररिभियगभीरसस्सिरीयाहिं वग्गूहिं अणुवूहेमाणे २ एव वयासी—

उराले ण तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे!

कल्लाणे ण तुमे देवाणुप्पिए सुमिणे दिट्ठे!

सिवे धन्ने मगल्ले सस्सिरीए ण तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे!

आरुग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मगलकारए ण तुमे देवी सुमिणे दिट्ठे!

अत्थलाभो ते देवाणुप्पिए!

पुत्तलाभो ते देवाणुप्पिए!

रज्जलाभो भोग-सोक्खलाभो ते देवाणुप्पिए!

एव खलु तुम देवाणुप्पिए! नवण्ह मासाण पडिपुण्णाण अद्धट्ठमाण य राइ दियाण विइक्कताण अम्ह कुलकेउ, कुलदीव, कुलपव्वय कुलवडिसय कुलतिलक कुलकित्तिकर कुलवित्तिकर कुलणदिकर कुलजसकर कुलाधार कुलपायव कुलविवद्धणकर सुकुमाल पाणिपाय जाव दारय पयाहिसी।

से वि य ण दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नाय परिणयमेत्ते सूरे वीरे विक्कते वित्थिन्नविपुलबलवाहणे रज्जवती राया भविस्सइ।

त उराले ण तुमे देवी सुमिणे दिट्ठे जाव आरोग्गतुट्ठि-दीहाउयकल्लाणकारए ण तुमे देवी! सुमिणे दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो २ अणुवूहेइ॥ (८)

मूलार्थ—धारिणी देवी के मुख से स्वप्न की बात सुनकर और समझकर राजा श्रेणिक हर्षित हुए। जैसे वृष्टि की धारा पड़ने से कदम्ब का पुष्प विकसित हो जाता है। उसी प्रकार श्रेणिक का हृदय भी खिल उठा। उसे रोमाच हो आया।

राजा ने स्वप्न को समझने का प्रयत्न किया। उस पर विचार किया और फिर अपने स्वाभाविक बुद्धि वभव से उसका निर्णय भी कर लिया। तत्पश्चात उसने बड़े ही मीठे मधुर और मृदुल शब्दा मे रानी से कहा-"देवानुप्रिये! तुमने उदार प्रधान स्वप्न देखा है, देवानुप्रिये! तुमने कल्याण स्वप्न देखा है। देवानुप्रिये! तुमने शिव धन्य मागलिक एव शोभन स्वप्न देखा है। देवि! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मगलकारी स्वप्न देखा है। देवानुप्रिये! अर्थ लाभ होगा, पुत्रलाभ होगा, राज्यलाभ होगा, भोग-सुख का लाभ होगा। देवानुप्रिये! तुम्हें नौ मास और साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर पुत्र की प्राप्ति होगी।

देवानुप्रिये! वह पुत्र कुल का केतु (ध्वज), कुल का दीपक, कुल के लिए पर्वत के समान, कुल का भूषण कुलतिलक, कुल की कीर्ति बढाने वाला, कुल की वृत्तिरूप कुल का आनन्द प्रदान करने वाला, कुल का यश वर्धन करने वाला, कुल का आधार, कुल के लिए वृक्ष के सदृश कुल की वृद्धि करने वाला और सुकुमार शरीर वाला होगा। वह बालक जब बाल्यावस्था [illegible] र लेगा औ[illegible] होगा तो शूर वीर, पराक्रमी [illegible] ।हन। से [illegible] ति राजा होगा।

[illegible] महार [illegible] र

आ[illegible] स्वप्न

[illegible] -बार कह [illegible] था।

विशेष बोध—महाराजा श्रेणिक ने जिन शब्दो मे स्वप्न का फलादेश किया, वह बहुत प्रभावशाली है। कल्याणकारी मगलमय स्वप्न पुण्यशाली नर-नारियो को आते हैं। स्वप्न के निमित्त से राजा और रानी को अपार हर्ष हुआ और उनकी सुन्दर शिशु की प्राप्ति की सभावना साकार हो उठी।

राजा श्रेणिक राजनीति मे निपुण तो थे ही, ज्योतिर्विद् भी थे। उन्होने स्वप्न के फल को स्वय समझ कर महारानी को सन्तोष प्रदान किया।

सन्तान की कामना नारी जाति की बड़ी से बड़ी साध है। एक महिला को पुत्रवती बन कर जो आनन्द प्राप्त होता है वह त्रिलोकाधीश्वरी बनने के आनन्द से भी कदाचित् बढ़कर है।

यहाँ यह सब भाव बड़ी सुन्दरता के साथ व्यक्त किए गए हैं। (८)

मूल—तए ण सा धारिणी देवी सेणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठ जाव हियया करयलपरिग्गहिय जाव अजलि कट्टु एव वयासी-एवमेय देवाणुप्पिया! तहमेय देवाणुप्पिया! अवितहमेय देवाणुप्पिया! असदिद्धमेय देवाणुप्पिया! इच्छियमेय देवाणुप्पिया! पडिच्छियमेय देवाणुप्पिया! सच्चे ण एसमट्ठे ज ण तुब्भे वदह त्ति कट्टु त सुमिण सम्म पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सेणिएण रण्णा अब्भणुन्नाया समाणी नाणामणि-कणगरयण भत्ति-चित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयसि सयणिज्जसि निसीयइ, निसीइत्ता एव वयासी-मा मे से उत्तमे पहाणे मगल्ले सुमिणे अन्नेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिहि त्ति कट्टु देवय

गुरुजणसवद्धाहि पसत्थाहि धम्मियाहि कहाहि सुमिणजागरियं पडिजागरमाणी विहरइ ॥ (६)

मूलार्थ—तत्पश्चात् श्रेणिक राजा के ऐसा कहने पर अत्यन्त हृष्ट-तुष्ट हुई धारिणी देवी ने हाथ जोडकर और मस्तक पर अजलि करके इस प्रकार कहा–"देवानुप्रिये ! आपने जैसा कहा वसा ही है। देवानुप्रिय ! वह असत्य नही है। देवानुप्रिय ! उसमें सन्देह के लिए अवकाश नही है। देवानुप्रिय ! वह इष्ट है। देवानुप्रिय ! बार बार इष्ट है। आपने जो कहा वह सब सत्य है।"

इस प्रकार कह कर धारिणी ने उस स्वप्न को भली भाँति अगीकार किया। फिर श्रेणिक राजा से अनुमति लेकर विविध मणियो, कनक और रत्नो से जटित भद्रासन से उठी। उठ कर जहाँ अपनी शय्या थी वहाँ पहुँची। उस पर बैठी। बैठकर (मन ही मन बोली) मेरा उत्तम प्रधान मागलिक स्वप्न कहीं दूसरे अशुभ स्वप्नों से नष्ट न हो जाय ! इस प्रकार विचार करके वह देव और गुरुजनो सम्बन्धी प्रशस्त वार्त्ताओ द्वारा स्वप्न जागरिका करने लगी, अर्थात् शेष रात्रि उसने जागृत रह कर ही व्यतीत की ॥ (६)

*विशेष बोध—धारिणी देवी ने जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों* को विधिपूर्वक समझा था। केवल समझा ही नहीं था, उनका यथा शक्ति वह पालन भी करती थी। उसे धर्म क्रिया करने की कला प्राप्त थी। अवसर के महत्त्व को वह जानती थी।

स्वप्न प्राय अर्धनिद्रावस्था में आया करते हैं। उनमें कोई शुभ का और कोई अशुभ का सूचक होता है, किन्तु उनके शुभ अशुभ होने का ज्ञान सब को नहीं होता। शुभ स्वप्न देखने के पश्चात् यदि कोई अशुभ स्वप्न आ जाय तो शुभ स्वप्न का फल विनष्ट हो सकता है। धारिणी देवी इस तथ्य से परिचित थी। इस कारण

रात्रि का शेप समय उसने जागृत रह कर हो व्यतीत किया—नीद नही ली ।

घारिणी का जागरण स्वप्न की रक्षा के निमित्त था, अतएव इसे 'स्वप्न जागरिका' कहा है, यह घम जागरण नही था ।

घारिणी देवी अरिहत घम पर श्रद्धा रखती थी। उसके आराध्य देव अरिहन्त थे—राग-द्वेप आदि आन्तरिक अरियो (रिपुओ) पर पूण विजय प्राप्त करने वाले जिनेन्द्र देव । जिनेन्द्र देव सवज्ञ और वीतराग होते हैं। जो भी महापुरुप इन गुणो को प्राप्त कर लेता है वही देव पद को प्राप्त करता है ।

देव की दो श्रेणिया हैं—अरिहन्त और सिद्ध । जो सशरीर परमात्मा है, जिन्होने चार घातिया कर्मो का क्षय किया है, वे अरिहत या अहन्त कहलाते हैं। जिन्होने विदेह मुक्ति प्राप्त कर ली है और आठो कर्मों का अन्त कर दिया है, वे सिद्ध परमात्मा कहलाते हैं। यही दो प्रकार के देव मुमुक्षुजनो के लिए आदर्श एव आराघनीय होते हैं।

नरदेहधारी कोई भी जीव घम की आराघना द्वारा सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

घारिणी के गुरु वे निग्रन्थ साधक थे, जो सयम, तप और त्याग की प्रतिमूर्ति होते हैं। जो सम्पूण रूप से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचय और अपरिग्रह की साधना करके स्वाध्याय और ध्यान मे समय व्यतीत करते हैं। जो आत्मस्वरूप मे रमण करते हैं, आत्मानन्द मे विभोर रहते हैं और आत्मिक वभव की वृद्धि मे दत्तचित्त रहते हैं। केशलुचन अनशन, पैदल और उघाडे पावो गमन, भिक्षा भोजन उनकी बाह्यचर्या है। प्राणिमात्र के प्रति उनके अन्त करण मे मत्रीभाव जागत हो जाता है, इस कारण वे पृथ्वीकाय, जलकाय,

अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय का भी आरम्भ-समारम्भ नही करते। यही कारण है कि वे अस्नान व्रत धारण करते हैं। जन सन्त के विषय मे कहावत प्रसिद्ध है—

जाये थे तब नहाये थे,
जायेंगे तब नहाएँगे।

लोभ लालच, आशा-तृष्णा सच्चे साधु को स्पर्श नही कर सकती। वह आत्मकल्याण के लिए जगत् के जीवो का महान उपकार करता है। उनका पथप्रदर्शन करता है, मगर किसी पर भार नही बनता।

धारिणी देवी ने ऐसे देव और गुरु के चिन्तन मे ही रात्रि का शेष समय व्यतीत किया। इस प्रकार का चिन्तन आत्मा मे निर्मलता उत्पन्न करता है। विषय-वासना की आग को शान्त करता है। अन्तःकरण को प्रशमभावना से परिपूरित कर देता है। निर्बल आत्मा मे भी सयम साधना की स्पृहा उत्पन्न करता है और उस साधना को अपनाने की प्रेरणा तथा शक्ति भी प्रदान करता है।

धारिणी ने इस तथ्य को भली भांति समझ लिया था, इस कारण वह देव तथा गुरु सम्बन्धी चिन्तन म तत्पर हो सकी। (६)

मूल—तए ण सेणिए राया पच्चूसकालसमयसि कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! वाहिरिय उवट्ठाणसाल अज्ज सविसेसं परमरम्म गधोदगसित्त सुइय समज्जिओवलित्त पचवन्न-सरससुरभिमुक्कपुप्फपु जोवयारकलिय कालागुरुपवरकुदरुक्क तुरुक्कधूवडज्झतमघमघतगधुद्धुयाभिराम सुगधवर गधिय गधवट्टिभूय करेह, कारवेह, करित्ता कारवित्ता य एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह।

तए ण ते कोडु बियपुरिसा सेणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव पच्चप्पिणति ।

तए ण सेणिए राया कल्ल पाउप्पभाए रयणीए फुल्लुप्पलकमल कोमलुम्मिलियमि अहापडुरे पभाए रत्तासोगपगास सुयमुह-गु जद्धराग-बधुजीवग-पारावयचलण-नयणपरहुयसुरत्तलोयण जासुमिणकुसुम-जलियजलण-तवणिज्जकलसहिंगुलयनिगर-रुवाइरगरेहन्तसस्सिरीए दिवागरे अहक्कमेण उदिए तस्स दिणयरपरपरावयारपारद्धमि अधयारे बालातवकु कुमेण खइयव्व जीवलोए लोयण विसआण ुआस विगसतविसद दसियमि लोए कमलागरसडवोहए उट्ठियमि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलते सयणिज्जाओ उट्ठेइ, उट्ठित्ता जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ,उवागच्छित्ता अट्टणसाल अण ुपविसइ, अण ुपविसित्ता अणेगवायामजोग वग्गणवामद्दणमल्लजुद्धकरणेहिं सते परिसते सयपागेहिं सहस्सपागेहिं सुगधवरतेल्लमादिएहिं पीणणिज्जेहिं दीवणिज्जेहिं दप्पणिज्जेहिं मदणिज्जेहिं विहणिज्जेहि सव्विदियगायपल्हायणिज्जेहिं अब्भगेहिं अब्भगिए समाणे तेल्लचम्मसि पडिपुण्णपाणि-पायसुकुमाल कोमलतलेहिं पुरिसेहिं छेएहिं दक्खेहिं पट्ठेहिं कुसलेहिं मेहावीहिं निउणसिप्पोवगतेहिं जियपरिस्समेहिं अब्भगण-परिमद्दण ु-व्वलण करणगुणनिम्माएहिं अट्ठिसुहाए मससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए चउव्विहाए सवाहणाए सवाहिए समाणे अवगयपरिस्समे नरिंदे अट्टणसालाओ पडिणिक्खमइ—

पडिणिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघर अण ुपविसइ, अण ुपविसित्ता समत

जालाभिरामे विचित्तमणिरयण कोट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाण-मडवसि णाणामणिरयणभत्तिचित्तसि ण्हाणपीढसि सुह-निसन्ने । सुहोदएहिं पुप्फोदएहिं गधोदएहिं सुद्धोदएहिं य पुणो पुणो कल्लाणगपवरमज्जणविहीए मज्जिए। तत्थ कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणगपवरमज्जणावसाणे पम्ह-लसुकुमाल गधकासाइयलूहियगे अहयसुमहग्घदूसरयणसुसवुए सरससुरभिगोसीसचदणाणुलित्तगत्ते सुइमालावण्णग-विलेवणे आविद्धमणिसुवण्णे कप्पियहारद्धहार तिसरयपालब-पलबमाणकडिसुत्तकयसोहे पिणद्धगेविज्जगुलेज्जगललिय कयाभरणे णाणामणिकडगतुडियथभियभुए अहिय-रूवसस्सिरीए, कुडलुज्जोइयाणणे, मउडदित्तसिरए, हारो-त्थयसुकयरइयवच्छे, पालबपलबमाणसुकयपडउत्तरिज्जे मुद्दियापिंगलगुलीए णाणामणिकणगरयणविमलमहरिहनिउ-णोविय मिसमिसत विरइयसुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठसठिय पसत्थ आविद्धवीरवलए, किं बहुणा, कप्परुक्खए चेव सुअलकिय-विभूसिए नरिंदे सकोरटमल्लदामेणं छत्तेणं धारिज्जमाणेणं उभओ चउचामरवालवीइयगे मगलजयसद्दकयालोए मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ—

पडिणिक्खमित्ता अणेगगणनायग-दडणायग-राईसरतल-वर-माडविय-कोडुबिय-मति-महामतिगण-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्द-नगर-निगम-इब्भ-सेट्ठि सेणावइ-सत्थवाह-दूय-सधि-वालसद्धि स परिवुडे धवल महामेहनिग्गए विव गह-गणदिप्पत रिक्ख तारागणाणमज्झे ससिव्व पियदसणे नरवई, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासण-वरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसण्णे। (१०)

मूलार्थ—तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने भोर होते ही कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! आज वाहर की उपस्थानशाला (सभाभवन) को विशेप रूप से परम रमणीय, गधोदक से सिंचित, साफ-सुथरी, लिपी-पुती, पाचो वर्णो के सरस, सुगधित पुष्पो के उपचार से युक्त, काले अगर, उत्तम कु दरुक्क, लोवान एव धूप की मधमधाती गध के समूह से सुगधमय तथा गध की गुटिका के समान करो और करवाओ। ऐसी करके और करवाकर मेरी आज्ञा वापिस सोपो अर्थात् आज्ञानुसार काय हो जाने की सूचना दो।

तव वे कौटुम्बिक पुरुप श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हर्षित और सन्तुष्ट हुए। यावत् उन्होंने आज्ञानुसार काय हो जाने की सूचना दी।

तदनन्तर रात्रि व्यतीत हुई। प्रभात होने पर कमल खिल उठे। रक्त अशोक, किंशुकपुष्प, शुक की चोच, चिरमी के अधभाग, वधुजीवक, कवूतर के पैर एव नेत्र, कोयल के सुरक्त लोचन तथा जासुमन के कुसुम, जाज्वल्यमान अग्नि, स्वणकलश, हिंगलू की राशि के वण सदृश एव सश्रीक सूय का उदय हुआ। अधकार विलीन हुआ। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे समस्त जीव-लोक कु कुम की लालिमा से व्याप्त हो गया हो। अनुक्रम से सूय ऊपर उठा। नेत्र अपना काय करने लगे। जव दिवाकर तेज से ज्वलित हो गया तव राजा अपनी शय्या से उठ कर व्यायामशाला की ओर गया।

उसने व्यायामशाला मे प्रवेश किया। प्रवेश करके अनेक प्रकार के व्यायाम-योग्य (भारी पदार्थों को उठाना) वल्गन (कूदना) व्यामर्दन (भुजा आदि अगो को मरोडना) कुश्ती तथा करण (वाहु को विशेप प्रकार से मोडना) करके श्रेणिक राजा ने श्रम किया और खूव श्रम

किया अर्थात् सामान्यत शरीर का और विशेषत प्रत्येक अगोपाग का व्यायाम किया।

तत्पश्चात शतपाक और सहस्रपाक तेलो से शरीर की मालिश की, जो प्रीति उत्पन्न करने वाले अर्थात् रुधिर आदि धातुओ को सम करने वाले, जठराग्नि को दीप्त करने वाले, दर्पणीय (शरीर का बल बढाने वाले), मदनीय (कामवर्द्धक), बृहणीय (मासवर्द्धक) तथा समस्त इन्द्रियों को और शरीर को आह्लादित करने वाले थे।

फिर श्रेणिक ने परिपूर्ण हाथों-पैरो वाले, कोमल तलुवे वाले, छेक (अवसर के ज्ञाता), दक्ष (चटपट काम करने वाले), पट्ठ। कुशल (मर्दन करने मे चतुर) मेधावी (नवीन कला को ग्रहण करने में समर्थ), निपुण (क्रीडा मे कुशल), निपुण (मर्दन करने के सूक्ष्म रहस्यो के ज्ञाता), परिश्रम को जीतने वाले तथा अभ्यगन मर्दन उद्वर्त्तन एव उद्वलन करने के गुणो मे परिपूर्ण पुरुषों द्वारा अस्थियों को सुखकारी, मास को सुखकारी, त्वचा को सुखकारी तथा रोमो को सुखकारी, चार प्रकार की संबाधना से श्रेणिक के शरीर का मर्दन किया गया। इस मालिश और मर्दन से राजा का परिश्रम दूर हो गया। थकावट मिट गई। वह व्यायामशाला से बाहर निकला।

व्यायामशाला से बाहर निकल कर श्रेणिक राजा जहाँ मज्जनगृह है, वहाँ आता है। आकर मज्जनगृह मे प्रवेश करता है। प्रवेश करने के पश्चात् धारा और मोतियों की जाली से सुन्दर, चित्र विचित्र मणियो एव रत्नो मे जटित फर्श वाले तथा रमणीय स्नानमडप में, नाना प्रकार के मणि रत्नो की रचना से विचित्र स्नानपीठ (नहाने के पीढे) पर सुखपूर्वक बैठा।

तत्पश्चात् राजा ने (पवित्र स्थानो से लाये गये) शुभ जल से,

पुष्पमिश्रित जल से, सुगधित जल से तथा शुद्ध जल से वार-वार कल्याणकारी उत्तम स्नानविधि से स्नान किया।

स्नान के अन्त मे रक्षापोटली आदि सैकडो कौतुक किए। फिर रुएदार, अत्यन्त नरम, सुगधित एव कषाय-रग से रगे हुए वस्त्र से शरीर को पोंछा। कोरे और बहुमूल्य उत्तम वस्त्रो से शरीर को आच्छादित किया। सरस और सुगन्धित गोशीष चन्दन का उसके शरीर पर लेपन किया गया। शुचि-पवित्र पुष्पमाला धारण की। केसर आदि का लेपन किया। मणियो और स्वण के अलकार धारण किए। अठारह लडो के हार, नौ लडो के अधहार, तीन लडो के छोटे हार तथा लम्बे लटकते हुए कटिसूत्र से शरीर की शोभा बढाई। कठ मे कठा पहना। उ गलियो मे अगूठियां धारण की। नाना मणियो के कडो और त्रुटितो से उसकी भुजाएं दीपित हो गई। अतिशय रूप के कारण राजा अत्यन्त सुशोभित हुआ।

कु डलो की चमक-दमक से उसका मुख मण्डल उद्दीप्त हो उठा। मुकुट से मस्तक प्रकाशित होने लगा। वक्षस्थल हार से सुशोभित होने के कारण अतिशय प्रीति उत्पन्न करने लगा।

लम्बे लटकते हुए दुपट्टे से उसने सुन्दर उत्तरासग किया। मुद्रिकाओ से उसकी अगुलियाँ पीली दिखाई देने लगी। उसने नाना प्रकार की मणियो एव सुवण के बने, उज्ज्वल, महापुरुषो के योग्य, निपुण कलाकारो द्वारा निर्मित, चमचमाते हुए, भलीभाति मिली हुई सधिया वाले, विशिष्ट प्रकार के मनोहर सुन्दर आकार के और प्रशस्त वीर-वलय धारण किए।

अधिक क्या कहा जाय? भलीभाति मुकुट आदि आभूषणो से अलकृत और वस्त्रो से विभूषित राजा श्रेणिक कल्पवृक्ष के समान दिखाई देने लगा।

कोरट (कनेर) के पुष्पो की माला वाला छत्र उसके मस्तक पर

धारण किया गया। दोना ओर चार चामरो से उसका शरीर वीजा जाने लगा। राजा पर दृष्टि पडते ही लोगो ने जय-जय का मगलघोष किया। अनेक गणनायक (गणो के अधिपति), दण्डनायक, राजा (माडलिक राजा), ईश्वर (युवराज या ऐश्वर्यशाली), तलवर (राजा द्वारा प्रदत्त स्वर्णपट्ट से विभूषित), माडविक (मडब नामक वस्ती के अधिपति), कौटुम्बिक (वडे कुटम्बो के मुखिया) मत्री, महामत्री, दौवारिक, अमात्य, चेट, (सेवक) पीठमर्द (सभा के समीप रहने वाले सेवक-मित्र) नगरनिवासी, निगमवासी, सेठ, इभ्य, सेनापति, सार्थवाह, दूत, सधिपाल आदि के साथ—इनसे घिरा हुआ प्रियदर्शन राजा श्रेणिक ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे ग्रहगणो मे शोभायमान नक्षत्रो और तारागणो के मध्य मे महामेघ से बाहर निकला हुआ चन्द्रमा हो। वह बाहर की उपस्थानशाला (सभाभवन) मे आया और पूर्वदिशा की ओर मुख करके उत्तम सिंहासन पर आसीन हुआ। (१०)

विशेप वोध—इस सूत्र मे राजा श्रेणिक की प्रभातकालिक दिनचर्या का विवरण दिया गया है। अन्य बातो पर भी प्रकाश डाला गया है।

स्वप्न का फल पूछने के लिए तैयारी करनी थी। उसके लिए वे कर्मचारियो को बुलाते हैं तो कितने मधुर शब्दो का प्रयोग करते हैं! मगध का यह प्रभावशाली सम्राट् अपने कर्मचारियों को 'देवानुप्रिय' अर्थात् देवो के वल्लभ कहकर सबोधित करता है। उनको 'कौटुम्बिक पुरुष' की सज्ञा देना तो भारतीय सस्कृति की ऐसी गरिमा का द्योतक है जिसकी तुलना विश्व का कोई भी देश नहीं कर सकता। अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व की उच्च भारतीय सस्कृति यहाँ चमक उठी है।

सम्राट जब सभाभवन की सफाई और सजावट करने की आज्ञा देते हैं तो वे देवानुप्रिय कौटुम्बिक पुरुष एकदम हर्षित हो उठते हैं।

इससे स्वामी और सेवक मे कितने मधुर सम्बन्ध थे, इस बात का सहज ही पता लग जाता है।

श्रेणिक उदार हृदय दातार थे। दातारो के सन्तुष्ट और सुखी कर्मचारी सहप आज्ञापालन करते हैं। इसके विपरीत, जो स्वामी कृपण और अनुदार होता है, उसके सेवक दुखी रहते हैं और वे जैसा-तैसा काम करते भी हैं तो मन मारकर। गिरिधर कवि ने कृपण स्वामी की मनोवृत्ति का सुन्दर चित्रण किया है—

नौकर ऐसा होय नित्य उठ चने चबावे,
हरदम हाजिर रहे कभी ना घर को जावे।
तन मन धन से काम सदा मालिक का सेवे,
मालिक पैसा देय मगर वो कभी न लेवे।
कह गिरिधर कविराय चाहिए नाकर ऐसा,
लघन कर मर जाय मगर मागे नहि पैसा।

यह है कलियुगी स्वामी-सेवकभाव! राजा श्रेणिक की मनोवृत्ति ऐसी नही थी। वह युग भी ऐसा नही था। इस कारण उस युग के कौटुम्बिक पुरुष थे, "इगियागार सम्पन्ने"—अर्थात् स्वामी के इशारे पर नाचते थे। उन्होंने आज्ञानुसार काय सम्पन्न करके पुन राजा को सूचना दी कि आदेशानुसार काय सम्पन्न किया जा चुका है।

प्रभात का समय कितना मनोहर होता है! इसी कारण ब्राह्म-मुहूत का महत्त्व है। सूय जगत् के जीवो का प्राणाधार है। इसी से शास्त्रकारो ने उसे इतनी महिमा प्रदान की है।

मगलमय प्रभात-वेला मे राजा श्रेणिक उठ कर व्यायामशाला मे जाते हैं। राजा की दिनचर्या यह प्रमाणित करती है कि बुद्धिजीवी मानवो को नित्यक्रिया मे व्यायाम, आसन अथवा भ्रमण करना

धारण किया गया। दोनों ओर चार चामरों से उसका शरीर वीजा जाने लगा। राजा पर दृष्टि पडते ही लोगों ने जय-जय का मगलघोष किया। अनेक गणनायक (गणों के अधिपति), दण्डनायक, राजा (माडलिक राजा), ईश्वर (युवराज या ऐश्वयशाली) तलवर (राजा द्वारा प्रदत्त स्वणपट्ट से विभूषित), माडविक (मडव नामक वस्ती के अधिपति), कौटुम्बिक (वडे कुटम्बों के मुखिया) मत्री, महामत्री, दौवारिक, अमात्य, चेट, (सेवक) पीठमद (सभा के समीप रहने वाले सेवक-मित्र), नगरनिवासी, निगमवासी, सेठ, इभ्य, सेनापति, सार्थवाह, दूत, सधिपाल आदि के साथ—इनसे घिरा हुआ प्रियदशन राजा श्रेणिक ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे ग्रहगणों से शोभायमान नक्षत्रों और तारागणो के मध्य में महामेघ से बाहर निकला हुआ चन्द्रमा हो। वह वाहर की उपस्थानशाला (सभाभवन) मे आया और पूवदिशा की ओर मुख करके उत्तम सिंहासन पर आसीन हुआ। (१०)

विशेष बोध—इस सूत्र मे राजा श्रेणिक की प्रभातकालिक दिनचर्या का विवरण दिया गया है। अन्य वातों पर भी प्रकाश डाला गया है।

स्वप्न का फल पूछने के लिए तैयारी करनी थी। उसके लिए वे कर्मचारियों को वुलाते हैं तो कितने मधुर शब्दों का प्रयोग करते हैं। मगध का यह प्रभावशाली सम्राट अपने कर्मचारियों को 'देवानुप्रिय' अर्थात् देवों के वल्लभ कहकर सबोधित करता है। उनको 'कौटुम्बिक पुरुष' की सज्ञा देना तो भारतीय सस्कृति की ऐसी गरिमा का द्योतक है जिसकी तुलना विश्व का कोई भी देश नहीं कर सकता। अढ़ाई हजार वप पूव की उच्च भारतीय संस्कृति यहाँ चमक उठी है।

सम्राट् जब सभाभवन की सफाई और सजावट करने की आज्ञा देते हैं तो वे देवानुप्रिय कौटुम्बिक पुरुष एकदम हर्षित हो उठते हैं।

इससे स्वामी और सेवक मे कितने मधुर सम्बन्ध थे, इस बात का सहज ही पता लग जाता है।

श्रेणिक उदार हृदय दातार थे। दातारो के सन्तुष्ट और सुखी कर्मचारी सहर्ष आज्ञापालन करते हैं। इसके विपरीत, जो स्वामी कृपण और अनुदार होता है, उसके सेवक दुखी रहते हैं और वे जैसा-तैसा काम करते भी हैं तो मन मारकर। गिरिधर कवि ने कृपण स्वामी की मनोवृत्ति का सुन्दर चित्रण किया है—

नौकर ऐसा होय नित्य उठ चने चबावे,
हरदम हाजिर रहे कभी ना घर को जावे।
तन मन घन से काम सदा मालिक का सेवे,
मालिक पैसा देय मगर वो कभी न लेवे!
कह गिरिधर कविराय चाहिए नाकर ऐसा,
लघन कर मर जाय मगर मागे नहि पैसा।

यह है कलियुगी स्वामी-सेवकभाव! राजा श्रेणिक की मनोवृत्ति ऐसी नही थी। वह युग भी ऐसा नही था। इस कारण उस युग के कौटुम्बिक पुरुष थे, "इगियागार सम्पन्ने"—अर्थात् स्वामी के इशारे पर नाचते थे। उन्होने आज्ञानुसार काय सम्पन्न करके पुन राजा को सूचना दी कि आदेशानुसार काय सम्पन्न किया जा चुका है।

प्रभात का समय कितना मनोहर होता है! इसी कारण ब्राह्म-मुहूर्त का महत्त्व है। सूय जगत के जीवो का प्राणाधार है। इसी से शास्त्रकारा ने उसे इतनी महिमा प्रदान की है।

मगलमय प्रभात-वेला मे राजा श्रेणिक उठ कर व्यायामशाला मे जाते है। राजा की दिनचर्या यह प्रमाणित करती है कि बुद्धिजीवी मानवो को नित्यक्रिया में व्यायाम, आसन अथवा भ्रमण करना

आवश्यक है। ऋतु के अनुकूल किया गया समुचित शारीरिक श्रम जीवन मे अमृत का काय करता है, किन्तु किया जाना चाहिए वह नियमित रूप से।

पुरातन उल्लेखो से प्रतीत होता है कि प्राचीन युग मे भारतवर्ष मे आभूषणो का खूब उपयोग किया जाता था। उस समय नाना प्रकार के बहुमूल्य आभूषणो से देह-मन्दिर की सजावट की जाती थी। जब पुरुष इतने आभूषण पहनते थे तो अन्त पुर की सुन्दरियाँ कितना शृ गार सजती होगी! यह कल्पना करना कठिन नही है।

राजा श्रेणिक अतीव-अतीव सुशोभन होकर अपने सामन्तों आदि से परिवृत हो सभा-भवन मे जाकर सिंहासन पर आसीन होते हैं। उसका मुख पूर्वदिशा की ओर रहता है।

भारतीय साहित्य मे पूर्व और उत्तर दिशा को अधिक महत्व दिया गया है। फिर ईशानकोण का, जहाँ इन दोनो दिशाओ का मिलाप है, और अधिक महत्त्व माना गया है। धर्मकार्य तथा अन्य कोई भी शुभ कार्य करने के लिए इन्ही दिशाओ मे मुख करके बैठा जाता है। राजा श्रेणिक भी इसी कारण 'पुरत्थाभिमुह' अर्थात् पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठा था। (१०)

मूल—तए ण से सेणिए राया अप्पणो अदूरसामते उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए अट्ठ भद्दासणाइ सेयवत्थपच्चत्थुयाइ सिद्धत्थमगलोवयारकयसतिकम्माइ रयावेइ, रयाविता णाणामणिरयणमडिय अहियपेच्छणिज्जरूव महग्घवरपट्ट-णुग्गयसण्ह बहुभत्तिसयचित्तट्ठाण ईहामिय-उसभ-तुरय णर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कु जर-वणलय-पउमलयभत्ति चित्त, सुखचियवरकणगपवर पेरतदेसभाग अब्भितरिय जवणिय अछावेइ, अछावित्ता अत्थरयमउअम-

सूरगउच्छइय धवलवत्थपच्चत्थुय विसिट्ठ अगसुहफासय सुमउय धारिणीए देवीए भद्दासण रयावेइ, रयावित्ता कोडु बिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—

'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अट्ठ गमहानिमित्त-सुत्तत्थपाढए विविहसत्थकुसले सुमिणपाढए सद्दावेह, सद्दावित्ता एयमाणत्तिय खिप्पामेव पच्चप्पिणह ।'

तए ण ते कोडु बियपुरिसा सेणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया करयलपरिग्गहिय दसनह सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव देवो तहत्ति आणाए विणएण पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सेणियस्स रण्णो अतियाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता रायगिहस्स नगरस्स मज्झ मज्झेण जेणेव सुमिरण-पाढगगिहाणि तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सुमिणपाढए सद्दावेंति ।

तए ण ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रण्णो कोडु बिय पुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठ जाव हियया ण्हाया कयवलिकम्मा जाव पायच्छित्ता अप्पमहग्घाभरणालकिय सरीरा हरियालिय सिद्दत्थकय मुद्धाणा सएहिं सएहिं गिहेहिं पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता राजगिहस्स मज्झमज्झेण जेणेव सेणियस्स रण्णो भवण-वडेंसगदुवारे तणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता एगयओ मिलति, मिलित्ता सेणियस्स रण्णो भवणवडेसगदुवारेण अणुपविसति, अणुपविसित्ता जेणेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सेणिय राय जएण विजएण वद्धावेंति ।

सेणिएण रण्णा अच्चिय-वदिय-पूइय-माणिय-सक्कारिय-

सम्माणिय समाणा पत्तेय पत्तेय पुव्वन्नत्थेसु भद्दासणेसु निसीयति ।

तए ण सेणिए राया जवणियतरिय धारिणि देवि ठवइ, ठवित्ता पुप्फफलपडिपुण्णहत्थे परेण विणएण ते सुमिणपाढए एव वयासी—

एव खलु देवाणुप्पिया ! धारिणीदेवी अज्जतसि तारिसगसि सयणिज्जसि जाव महासुमिण पासित्ताण पडिवुद्धा । त एयस्स ण देवाणुप्पिया ! उरालस्स जाव सस्सिरीयस्स महासुमिणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?

तए ण ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रण्णो अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठ जावहियया त सुमिण सम्म ओगिण्हति, ओगिण्हित्ता ईह अणुपविसति, ईह अणुपविसित्ता अन्नमन्नेण सद्धि सचालेंति, सचालेत्ता तस्स सुमिणस्स लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अहिगयट्ठा सेणियस्स रण्णो पुरओ सुमिणसत्थाइ उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा एव वयासी—

एव खलु सामी ! सुमिणसत्थसि वायालीस सुमिणा, तीस महासुमिणा, वावत्तरिं सव्वसुमिणा दिट्ठा ! तत्थ ण सामी ! अरहत मायरो वा चक्कवट्टि मायरो वा अरहतसि वा चक्कवट्टिसि वा गब्भ वक्कममाणसि एएसिं तीसाए महासुमिणाए इमे चोद्दसमहासुमिणा पासित्ताण पडिबुज्झति, तजहा—

गय-उसभ-सीह-अभिसेय,
दाम-ससि-दिणयर झय कुभ,

पउमसर-सागर-विमाण-
भवण-रयणुच्चय-सिहं च ॥१॥

वासुदेवमायरो वा वासुदेवसि गब्भ वक्कममाणसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाण अन्नयरे सत्त महासुमिणे पासित्ताण पडिबुज्झति ।

बलदेवमायरो वा बलदेवसि गब्भ वक्कममाणसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाण अण्णतरे चत्तारि महासुमिणे पासित्ताण पडिबुज्झति ।

मडलियमायरो वा मडलियसि गब्भ वक्कममाणसि, एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाण अन्नतर एग महासुमिण पासित्ताण पडिबुज्झति ।

इमे य ण सामी ! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मगल्लकारए ण सामी ! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे । अत्थलाभो सामी ! सोक्ख-लाभो सामी ! भोगलाभो सामी ! पुत्तलाभो रज्जलाभो । एव खलु सामी ! धारिणी देवी नवण्हं मासाण बहुपडि-पुण्णाण जाव दारग पयाहिइ ।

से वि य ण दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणय मित्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कते विच्छिन्न विउल-बलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा ।

त ओराले ण सामी ! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि जाव दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो-भुज्जो अणुवूहति ।

तए ण सेणिए राया तेसिं सुमिणपाढगाण अतिए

सम्मा
निसीय

कट्टु
ठवइ, विउ-
सुमि कारेण य
विउल जीवि-
गसि
त इ, अब्भु-
मह इ, उवागच्छित्ता
! सुमिण-
भुज्जो-

एय-
सुमिण सम्म
तेणेव उवा-
जाव विपुलाइ

से भरे हुए सुशोभित किनारो वाली यवनिका (पर्दा) सभा के भीतरी भाग मे बधवाई। यवनिका बधवा कर उसके भीतरी भाग मे धारिणी देवी के लिए एक भद्रासन रखवाया। वह भद्रासन आस्तरक (खोली) और कोमल तकिया से युक्त था। श्वेत वस्त्र उस पर डाला गया था। वह सुन्दर स्पश से अग को सुख उत्पन्न करने वाला था और अतिशय मृदु था।

इस प्रकार आसन बिछवा कर राजा ने कौटुम्बिक पुरुपो को बुलवाया और बुलवा कर इस प्रकार कहा—

देवानुप्रियो! अष्टागमहानिमित्त ज्योतिपशास्त्र के सूत्र एव अथ के पाठ तथा विविध शास्त्रो मे कुशल स्वप्न पाठको (स्वप्न-शास्त्रियो) को शीघ्र बुलाओ और बुलाकर इस आज्ञा को वापिस लौटाओ।

तव वे कौटुम्विक पुरुप श्रेणिक राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हर्पित यावत् आनन्दित हृदय हुए। दोनो हाथ जोड कर, दसो नखो को इकटठा करके, मस्तक पर घुमाकर अजलि करके 'हे देव! ऐसा ही होगा' इस प्रकार कहकर विनयपूवक आज्ञा के वचनो को स्वीकार करते है। स्वीकार करके श्रेणिक के पास से निकलते हैं, निकल कर राजगृह के बीचो-बीच होकर जहाँ स्वप्न-पाठको के घर थे वहाँ पहुँचते हैं। पहुँच कर स्वप्न-पाठको को बुलाते हैं।

तव स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुपो द्वारा बुलाये जाने पर हृष्ट, तुष्ट एव आनन्दित हृदय हुए। उन्होने स्नान किया। कुलदेवता का पूजन किया। यावत् कौतुक (मसी तिलक) और मगल प्रायश्चित्त (सरसो, दही, अक्षत का प्रयोग) किया। अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूपणो से शरीर को अलकृत किया। मस्तक पर दूर्वा तथा सरसो, मगल निमित्त धारण किए।

एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियए करयल जाव एव वयासी—

एवमेय देवाणुप्पिया ! जाव जण्ण तुब्भे वयह त्ति कट्टु त सुमिण सम्म पडिच्छइ, पडिच्छित्ता ते सुमिणपाढए विउलेण असणपाण खाइम-साइमेण वत्थ-गध-मल्ला लकारेण य सक्कारेई सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विउल जीवियारिह पीइदाण दलयइ, दलइत्ता पडिविसज्जइ ।

तए ण से सेणिए राया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता जेणेव धारिणी देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणि देवि एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिए ! सुमिणसत्थसि वायालीस सुमिणा जाव एग महासुमिण भुज्जो-भुज्जो अणुवूहइ ।

तए ण धारिणी देवी सेणियस्स रण्णो अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियया त सुमिण सम्म पडिच्छइ, पडिच्छित्ता जेणेव सए वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाया कयवलिकम्मा जाव विपुलाइ जाव विहरइ । (११)

मूलार्थ—तत्पश्चात् श्रेणिक राजा अपने समीप ईशान कोण में श्वेत वस्त्र से आच्छादित तथा सरसों के मांगलिक उपचार से जिनमें शान्तिकर्म किया गया है, ऐसे आठ भद्रासन रखवाता है। रखवा करके नाना मणियों और रत्नों से मंडित, अतिशय दर्शनीय, बहुमूल्य और नगर में बनी हुई, कोमल तथा सैकड़ों प्रकार की रचना वाले चित्रों का स्थानभूत, ईहामृग (भेड़िया) वृषभ, अश्व, नर, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु (मृगविशेष), अष्टापद, चमरी गाय, हाथी, वनलता और पद्मलता आदि के चित्रों से युक्त, श्रेष्ठ स्वर्ण के तारों

से भरे हुए सुशोभित किनारो वाली यवनिका (पर्दा) सभा के भीतरी भाग मे वधवाई। यवनिका वधवा कर उसके भीतरी भाग मे धारिणी देवी के लिए एक भद्रासन रखवाया। वह भद्रासन आस्तरक (खोली) और कोमल तकिया से युक्त था। श्वेत वस्त्र उस पर डाला गया था। वह सुन्दर स्पश से अग को सुख उत्पन्न करने वाला था और अतिशय मृदु था।

इस प्रकार आसन विछवा कर राजा ने कौटुम्बिक पुरुपो को बुलवाया और बुलवा कर इस प्रकार कहा—

देवानुप्रियो ! अष्टागमहानिमित्त ज्योतिपशास्त्र के सूत्र एव अथ के पाठ तथा विविध शास्त्रो में कुशल स्वप्न पाठको (स्वप्न-शास्त्रियो) को शीघ्र बुलाओ और बुलाकर इस आज्ञा को वापिस लौटाओ।

तव वे कौटुम्बिक पुरुप श्रेणिक राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हर्पित यावत् आनन्दित हृदय हुए। दोनो हाथ जोड कर, दसो नखो को इकट्ठा करके, मस्तक पर घुमाकर अजलि करके 'हे देव ! ऐसा ही होगा' इस प्रकार कहकर विनयपूवक आज्ञा के वचनो को स्वीकार करते हैं। स्वीकार करके श्रेणिक के पास से निकलते हैं, निकल कर राजगृह के वीचो-वीच होकर जहाँ स्वप्न-पाठको के घर थे वहाँ पहुँचते हैं। पहुँच कर स्वप्न-पाठका को बुलाते हैं।

तव स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुपो द्वारा बुलाये जाने पर हृष्ट, तुष्ट एव आनन्दित हृदय हुए। उन्होने स्नान किया। कुलदेवता का पूजन किया। यावत् कौतुक (मसी तिलक) और मगल प्रायश्चित्त (सरसो, दही, अक्षत का प्रयोग) किया। अल्प किन्तु वहुमूल्य आभूपणो से शरीर को अलकृत किया। मस्तक पर दूर्वा तथा सरसो, मगल निमित्त धारण किए।

फिर वे अपने-अपने घर से निकले। निकल कर राजगृह के बीचोंबीच होकर जहाँ राजा श्रेणिक का मुख्य भवन का द्वार था वहाँ आए। आकर सब एक साथ मिले। मिल कर द्वार के भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके बाहरी उपस्थानशाला थी और जहाँ राजा श्रेणिक था, वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँच कर राजा श्रेणिक को जय विजय शब्दों से बधाया।

श्रेणिक राजा ने उनकी अर्चना की। गुणों की प्रशंसा कर वन्दना की, पुष्पों द्वारा पूजा की। आदरपूर्ण दृष्टि से देखा। नमस्कार किया। फलादि देकर सत्कार किया। अनेक प्रकार से भक्ति कर सम्मान किया।

तत्पश्चात् वे स्वप्नपाठक पहले से बिछाए हुए भद्रासनों पर पृथक्-पृथक् बैठ गए।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने यवनिका के पीछे धारिणी देवी को बिठलाया। फिर हाथों में पुष्प और फल लेकर अत्यन्त विनय के साथ उन स्वप्नपाठकों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! उस प्रकार की उस (पूर्ववर्णित) शय्या पर शयन करती हुई धारिणी देवी यावत् महास्वप्न देख कर जागी है, तो देवानुप्रियो! इस उदार स्वप्न का क्या कल्याणकारी फल-विशेष होगा?

तब वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा से इस अर्थ को सुनकर और हृदय में धारण करके हृष्ट, तुष्ट एवं आनन्दित हृदय हुए। उन्होंने उस स्वप्न का सम्यक् प्रकार से अवग्रहण किया। अवग्रहण करके ईहा (विचारणा) में प्रवेश किया। प्रवेश करके परस्पर एक दूसरे के साथ विचारविमर्श किया। विचारविमर्श करके स्वयं अर्थ को समझा। दूसरे का अभिप्राय जान कर विशेष अर्थ समझा। आगम से अर्थ को पूछा। अर्थ का निश्चय किया और फिर तथ्य अर्थ का भलीभांति निश्चय किया। तब वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा के

समक्ष स्वप्नशास्त्रो का बार-बार उच्चारण करते हुए इस प्रकार बोले—

स्वामिन् ! स्वप्नशास्त्र मे बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न, यों सब बहत्तर स्वप्न हमने देखे है। अरिहन्त (तीर्थंकर) की माता और चक्रवर्ती की माता, अरिहन्त और चक्रवर्ती जब गर्भ मे आते हैं तब तीस महास्वप्नो मे से चौदह महास्वप्न देखती है। वे इस प्रकार है—

(१) हाथी (२) वृषभ (३) सिंह (४) अभिषेक (५) पुष्पमाला (६) चन्द्र (७) सूर्य (८) ध्वजा (९) पूर्णकलश (१०) पद्मयुक्त सरोवर (११) क्षीरसागर (१२)[1] विमान अथवा भवन (१३) रत्नराशि और (१४) निर्धूम अग्निशिखा।

जब वासुदेव गर्भ में आते हैं तो वासुदेव की माता को इन चौदह मे से कोई भी सात स्वप्न दिखाई देते है। बलदेव जब गर्भ मे आते हैं तो उनकी माता चौदह मे से चार स्वप्न देखकर जागृत होती है।

माडलिक राजा गर्भ मे आवे तो माता चौदह मे से कोई भी एक महास्वप्न देखकर जागती है।

स्वामिन् ! धारिणी देवी ने इन महास्वप्नो मे से एक महास्वप्न देखा है, अतएव स्वामिन् ! धारिणी देवी ने उदार प्रधान स्वप्न देखा है, यावत आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारी, स्वामिन् ! धारिणी देवी ने स्वप्न देखा है। स्वामिन् ! इससे आपको अर्थलाभ होगा। स्वामिन् ! सुख का लाभ होगा, भोग का लाभ होगा, पुत्र का लाभ होगा। स्वामिन् ! धारिणी देवी पूरे नौ मास व्यतीत होने पर यावत् पुत्र को जन्म देगी। वह पुत्र भी बालभाव का अतिक्रमण

---

१ गर्भ म आने वाला जीव यदि देवलोक से आए तो विमान और यदि नरक स आए तो भवन स्वप्न म दिखाई देता है।

करके, समझदार होकर, युवावस्था में पहुँच कर शूर, वीर, पराक्रमी होगा। विस्तीर्ण एवं विपुल बल-वाहनों वाला तथा राज्य का अधिपति राजा होगा, अथवा भावितात्मा अणगार होगा। अतएव स्वामिन्! धारिणी देवी ने उदार स्वप्न देखा है। यावत् आरोग्यकारी, तुष्टकारी आदि पूर्वोक्त विशेषणों वाला स्वप्न देखा है।

इस प्रकार कह कर स्वप्नपाठक बार-बार उस स्वप्न की सराहना करने लगे। राजा श्रेणिक स्वप्नपाठकों के मुख से इस अर्थ को सुनकर और हृदय मे धारण करके हृष्ट तुष्ट और आनन्दित हृदय हो गया और हाथ जोडकर इस प्रकार बोला—

देवानुप्रियो! जो तुम कहते हो सो वैसा ही है। सत्य है। इस प्रकार कह कर उस स्वप्न के फल को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करके स्वप्नपाठकों को विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम (आहार) तथा वस्त्र, गंध, माला एवं अलंकारों से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके जीविका के योग्य प्रीतिदान दिया। उन्हें विदा किया।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा सिंहासन से उठा। उठ कर जहाँ धारिणी देवी थी वहाँ गया और जाकर इस प्रकार कहने लगा— देवानुप्रिये! स्वप्नशास्त्र में ४२ स्वप्न और ३० महास्वप्न कहे हैं। उनमे से तुमने एक महास्वप्न देखा है, इत्यादि स्वप्नपाठकों के कथनानुसार सब कहता है और बार-बार उनकी सराहना करता है।

तब धारिणी देवी श्रेणिक राजा से इस अर्थ को सुनकर और हृदय मे धारण करके हृष्ट-तुष्ट हुई यावत् आनन्दित हृदय हुई। उसने उस स्वप्न को सम्यक् प्रकार से अंगीकार किया। अंगीकार करके जहाँ अपना वासगृह था वहाँ आई। आकर स्नान करके, बलिकर्म अर्थात् कुलदेवता का पूजन करके यावत् विपुल भोग भोगती हुई विचरने लगी। (११)

विशेष बोध—जसा कि प्रथम उल्लेख किया गया है, ईशान कोण का बहुत महत्त्व स्वीकार किया गया है। प्रत्येक नगर का उद्यान, जहाँ भी है, वह ईशान कोण मे बतलाया गया है। जो भी मगलमय काय होता है, ईशान कोण मे ही किया जाता है। स्वगलोक से मत्यलोक मे आने वाले देव भी सदा ईशान कोण मे ही पहले जाते हैं।

शक्रेन्द्र की आज्ञा से जब हरिणगमेषी देव देवानन्दा के निकट आया तो ईशान कोण मे होकर ही आया।[1]

सयम ग्रहण करने के अभिलाषी नर नारी ईशान कोण मे जाकर ही वेशपरिवतन करते हैं।

पद्मावती रानी की तरह भामा, रुक्मिणी आदि सब ईशान कोण मे जाकर सयम स्वीकार करती हैं।[2]

ईशान कोण मे सदा विहरमान सीमधर स्वामी महाविदेह क्षेत्र मे विराजमान हैं। सभवत इसी कारण उसे शुभ माना गया है और उसी की ओर मुख करके मगल-काय सम्पादित किए जाते है।

ईशान कोण का महत्त्व जैनागमो मे ही अधिक माना गया है। जैनेतर साहित्य मे नही।

तामली तापस ने मुण्डित होकर प्राणामी[3] नामक प्रव्रज्या अगीकार की। वह जैन मुनि नही था, अत ईशान कोण मे नही गया, यह सभव है। अजु न मालाकार प्रभृति जैन-दीक्षा अगीकार करने वाले सब ईशान कोण मे जाते हैं।

---

१ उत्तरपुरत्थिमदिसीभाग —कल्पसूत्र गा० २६

२ पउमावई देवी-उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग—

अन्तगडदसाग, वग ५

३ जट्ठ पुत्त च आपुच्छइ आपुच्छित्ता मुडे भवित्ता पाणामाए पव्यज्जाए पव्वइए। —भग० ३ १ उ १

श्रेणिक राजा ने भद्रासन रखवाए—स्वप्नपाठकों के लिए और रानी धारिणी के लिए। धारिणी पर्दा के पीछे बैठती है। इससे स्पष्ट है कि उस युग मे राजघराना मे पर्दा की परम्परा थी। नारी जीवन मे लज्जा एव दया का विशेष महत्त्व रहा है। पर्दे पर नाना प्रकार के चित्र बने थे। सौन्दर्यवर्धन के साथ वे राजा रानी को यह सोचने की प्रेरणा देते थे कि मानव का चित्र सबसे महान् है। मानव-जीवन से ही आत्मा का शाश्वत और वास्तविक कल्याण हो सकता है। इस प्रकार की भावना से गर्भस्थ शिशु पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

स्वप्नपाठका के आने पर सम्राट श्रेणिक उनकी अर्चना करता है, गुणगान करता है, पूजा करता है, उनको नमस्कार करता है। एक करोड एकहत्तर लाख गावा का अधिपति सम्राट विद्वाना का किस प्रकार सत्कार-सन्मान करता है और उनके समक्ष कितनी विनम्रता प्रकट करता है, यह ध्यान देने योग्य है। विद्यावान् का सत्कार-सम्मान वस्तुत विद्या का सत्कार सम्मान है। विद्वाना का सन्मान होने से विद्या की अभिवृद्धि होती है।

क्या आधुनिक युग के धनी, राजा, मागध और नेता इस प्रकार श्रेणिक की भांति नम्रता प्रदर्शित करते हैं?

प्रश्न करने से पूर्व राजा ने स्वप्नपाठको को फल आदि प्रदान किए। यह परम्परा जनसाधारण मे आज भी देखी जाती है। गुड या नारियल आदि भेट करके ही लोग मुहूर्त आदि पूछते हैं। रिक्त हस्त से प्रश्न पूछना शुभ नही समझा जाता।

स्वप्नपाठको ने स्वप्नशास्त्र के आधार पर विचार विमर्श किया, परस्पर विचारणा की। तत्पश्चात् एक निष्कर्ष पर पहुँच कर कथन किया। कोई भी बात कहने से पहले मनुष्य को सम्यक् प्रकार से सोच-समझ लेना चाहिए।

भारतीय प्राचीन साहित्य मे भी स्वप्न के विषय मे अच्छा उल्लेख मिलता है। पहले[1] अनुभव की हुई, देखी हुई, मन से सोची हुई, सुनी हुई वस्तु ही स्वप्न मे दिखाई देती है। वात, पित्त और कफ के विकार के कारण भी स्वप्न आते हैं। पुण्य और पाप भी स्वप्न मे कारण होता है। कुछ स्वप्न दैविक भी होते हैं।

गृहस्थो को प्राय ससार-सम्बन्धी स्वप्न आते हैं और सयमी को ज्ञानाचरणसम्बन्धी।

अर्धनिद्रावस्था मे मस्तिष्क के ज्ञानतन्तुओ का जागृत होना स्वप्न कहलाता है। विशेषज्ञो का कथन है कि हमारे मस्तिष्क के पिछले भाग मे कमल-नाल के भीतर के रेशे के समान बहुत बारीक नाड़िया हैं। उन्ही को ज्ञानतन्तु कहते हैं। पूर्ण निद्रा के समय वे नाडियाँ भी विश्राम करती हैं। किन्तु अर्धनिद्रा के समय जागृत रहती हैं। उस समय विभिन्न इन्द्रियो या मन द्वारा जानी देखी वस्तुओ के ज्ञान का सस्कार प्रबुद्ध हो उठता है। वही स्वप्न बन जाता है।

आहारसज्ञा, भयसज्ञा, मैथुनसज्ञा और परिग्रहसज्ञा का उद्‌बुद्ध होना ही निद्रा मे स्वप्न का आकार धारण करता है।

ये चारो सज्ञाएँ प्रत्येक ससारी प्राणी मे विद्यमान हैं। मगर किसी मे न्यून मात्रा मे तो किसी मे अधिक मात्रा मे होती है। जिसमे आहारसज्ञा की मात्रा अधिक होती है, उसे खाने-पीने का स्वप्न आता है। भयसज्ञा की प्रचुरता वाला भीतिजनक स्वप्न देखता है। मैथुन सज्ञा की अधिकता वाले को निद्रा मे विलास के चित्र दिखाई देते हैं। परिग्रह सज्ञा से ग्रस्त मनुष्य धन-दौलत आदि के स्वप्न देखता है। किन्तु ये स्वप्न प्राय निष्फल होते हैं।

---

१ अणुहूयदिट्ठचिन्तिय पयइवियारदेवयाणू वा।
सुविणस्स निमित्ताइ, पुण्ण पाव च नायव्वो॥ —कल्पसूत्र

वात, पित्त और कफ के विकार से जो स्वप्न आते हैं वे भी प्राय फलजनक नही होते । फलदेने वाले स्वप्न अक्सर नीरोग अवस्था मे आते हैं । जिनका जीवन उत्तम होता है, वे उत्तम स्वप्न देखते हैं।

हमारे जीवन मे स्वप्न मानो पर्वतवत् है । उस शलराज के सामने वाले भाग मे हम स्वप्नावस्था मे खूब दौड धूप करते हैं। विविध चित्र एव सिनेमा देखते हैं ।

स्वप्न शैल पर आरूढ होकर परभव देखा जा सकता है । वहाँ शुभाशुभ जीवन के फल नजरो मे आते हैं । अच्छे स्वप्नो के लिए जीवन अच्छा बनाना आवश्यक है । विचार के अनुसार आचार होता है और आचार के अनुसार स्वप्न-ससार का निर्माण होता है ।

राजा श्रेणिक और रानी धारिणी ने स्वप्न सुने । विस्तार से शास्त्रपाठ सुना । आदरपूवक स्वप्नपाठको को विदाई दी गई । उन्हें प्रचुर मात्रा मे उपहार दिया । वस्त्र दिये, अन्न दिया, धन दिया। स्वप्नपाठक संतुष्ट और प्रसन्न होकर अपने-अपने घर गये ।

दाम्पत्यप्रेम की झाकी भी इस सूत्र में देखने को मिलती है। राजा श्रेणिक सभाभवन से उठ कर रानी के पास गया । उसने स्वप्नपाठको का सारा कथन रानी के समक्ष दोहराया । रानी ने आन्तरिक परितोष और हर्ष प्रकट किया ।

मूल—ताए ण तीसे धारिणीए देवीए दोसु मासेसु विइक्कतेसु तइए मासे वट्टमाणे तस्स गब्भस्स दोहलकाल समयसि अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहले पाउब्भवित्था—

धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ, सपुन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ ण ताओ, कयपुन्नाओ, कयलक्खणाओ, कयविहवाओ, सुलद्धे ण तासि माणुस्सए जम्म जीवियफले, जाओ ण मेहेसु अब्भुगगएसु अब्भुज्जएसु अब्भु

न्नएसु अब्भुट्टिएसु सगज्जिएसु सविज्जएसु सफुसिएसु सथणिएसु धतधोतरुप्पपट-अ क-सख-चद-कु द-सालिपिट्ठरासिसमप्पभेसु, चिउर-हरियालभेद-चपग-मण कोरट-सरिसव पउमरयसमप्पभेसु, लक्खारस-सरसरत्त-किंसुय-जासुमणरत्त-वधुजीवग-जाईहिंगुलय-सरस-कु कुम-उरब्भ-सस-रुहिरइदगोवगसमप्पभेसु, वरहिण-नील-गुलिय-सुग-चासपिच्छभिगपत्त-सास-नीलुप्पलनियर-णवसिरीसकुसुम-णवसद्दलसमप्पभेसु, जच्चजण-भिगभेय-रिट्ठग-भमरावलिगवलगुलिय-कज्जलसमप्पभेसु फुरतविज्जुत-सगज्जि एसु, वायवसविपुलगगणचवल परिसक्करेसु निम्मलवरवारिधारापगलियपयडमारुयसमाहयसमोत्थरत उवरि उवरि तुरियवास पवासिएसु धारापहकरणिवायणिव्वावियमेइणितले हरियगणकचुए पल्लवियपायवगणेसु वल्लिवियाणेसु पसरिएसु उन्नएसु सोभग्गमुवागएसु नगेसु नएसु वा वेभारगिरिप्पवायतडकडगविमुक्केसु उज्झरेसु तुरियपहावियपलोट्टफेणाउलसकलुस जल वहतीसु गिरिनदीसु सज्जज्जुण-नीव-कुडय-कदल-सिलिंधकलिएसु उववणेसु मेहरसियहट्ठतुट्ठचिट्ठिय-हरिसवसपमुक्क-कठकेकारव मुयतेसु वरहिणेसु, उउवसमयजणियतरुणसहयरिपणच्चिएसु, नवसुरभिसिलिंध-कुडय-कु दल-कलव-गधद्ध णिं मुयतेसु उववणेसु परहुयरुयरिभितसकुलेसु, उद्दायतरत्तइदगोवय थोवयकासन्न विलविएसओणयतणमडिएसु, दद्दुरपयपिएसु, सपिंडियदरिय-भमर-महुकरि - पहकरपरिलित-मत्तछप्पय-कुसुमासव-लोलमहुरगु जतदेसभाएसु उववणेसु, परिसामियचदसूर-गहगणपणट्ठनक्खत्त-तारगपहे, इदाउहवद्ध-चिध-

पट्टंसि अवरतले उड्डीणवलागपतिसोभत-मेहविंदे कार
डग-चक्कवाय-कलहसउस्सुयकरे सपत्तपाउसम्मि काले
ण्हायाओ कयबलिकम्माओ कयकोउयमंगलपायच्छित्ताओ
किं ते ? वरपायपत्तणेउरमणिमेहल-हार-रइयकडगखुड्डय
विचित्तवरवलय-थंभियभुयाओ, कुंडलउज्जोवियाणणाओ,
रयणभूसियंगाओ, नासानीसासवायवोज्झ चक्खुहर वण्ण
फरिस-संजुत्त हयलालापेलवाइरेय धवल-कणयखचियतकम्म
आगासफलिहसरिप्पभं असुय पवरपरिहियाओ, दुगुल्लसु
कुमालउत्तरिज्जाओ सव्वोउयसुरभि कुसुमपवरमल्लसोभिय
सिराओ कालागरु-धूवधूवियाओ सिरिसमाणवेसाओ सेयणग
गंधहत्थिरयणं दुरूढाओ समाणीओ सकोरिंटमल्लदामेणं
छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चंदप्पभवइरवेरुलियविमलदंड-संख
कुंद-दगरय-अमयमहियफेणपुंजसन्निगास चउचामरवालवी-
जियंगाओ सेणिएणं रण्णा सद्धिं हत्थिखंधवरगएणं पिट्ठओ
समणुगच्छमाणीओ चाउरंगिणीए सेणाए महया (१)हयाणी
एणं, (२) गयाणीएणं, (३) रहाणीएणं, (४) पायत्ताणी
एणं। सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए जाव णिग्घोसणादियरवेणं
रायगिहं णयरं सिंघाडक-तिय-चउक्क-चच्चर चउम्मुह
महापह-पहेसु आसित्तसित्त-सुचियसमज्जिओवलित्तं जाव
सुगंधवरगंधियं गंधवट्टीभूयं अवलोएमाणीओ नागरजणेणं
अभिणंदिज्जमाणीओ, गुच्छ-लया-रुक्ख-गुम्म-वल्लि-गुच्छ-
ओच्छाइय सुरम्मं वेभारगिरि-कडगपायमूलं सव्वओ समंता
आहिंडेमाणीओ २ दोहलं विणियंति। तं जइ णं अहमवि
मेहेसु अब्भुवगएसु जाव दोहलं विणिज्जामि। (१२)

मूलार्थ—तत्पश्चात धारिणी देवी के दो मास व्यतीत हो जाने पर जब तीसरा मास चल रहा था। तब उस गर्भ के दोहद-काल के अवसर पर इस प्रकार का अकालमेघ का दोहद उत्पन्न हुआ—

जो माताए अपने अकाल-मेघ के दोहद को पूर्ण करती हैं, वे माताए धन्य हैं, वे पुण्यवती हैं, वे कृतार्थ हैं, उन्होंने पूर्व जन्म में पुण्य का उपार्जन किया है, वे कृतलक्षण हैं अर्थात उनके शारीरिक लक्षण सफल हैं, उनका वैभव सफल है। उन्हें मनुष्यजन्म और मनुष्य जीवन का फल प्राप्त हुआ है, अर्थात उनका जन्म और जीवन सफल है।

आकाश में मेघ उत्पन्न होने पर, क्रमश वृद्धि को प्राप्त होने पर, उन्नति प्राप्त होने पर, बरसने की तैयारी होने पर, गर्जनायुक्त होने पर, विद्युत् से युक्त होने पर, छोटी-छोटी बरसती हुई बूदों से युक्त होने पर, मन्द-मन्द ध्वनि से युक्त होने पर।

अग्नि को तपा कर धोये हुए चादी के पतरे के समान, अक नामक रत्न, शख, चन्द्रमा, कुन्दपुष्प और चावल के आटे की राशि के समान शुक्ल वर्ण वाले, चिकुर नामक रग, हरताल के खण्ड, चम्पा के फूल, सन के फूल (अथवा स्वर्ण, कोरट पुष्प, सरसों के फूल, और कमल के रज के समान पीत वर्ण वाले, लाख के रस, सरस रक्तवर्ण किंशुक के पुष्प, जासु के पुष्प, लाल रग के बन्धुजीवक के पुष्प, उत्तम जाति के हिंगलू, सरस कुकुम, बकरा एव शशक के रक्त और इन्द्रगोप (सावन की डोकरी) के समान लाल वर्ण वाले, मयूर, नील गुटिका, तोते के पख, चास पक्षी के पख, भ्रमर के पख, सासक नामक वृक्ष या प्रियगुलता, नील कमलों के समूह, ताजा शिरीष कुसुम और घास के समान नील वर्ण वाले, उत्तम अजन, काले भ्रमर या कोयला, रिष्ट रत्न, भ्रमरसमूह भैस के सींग और कज्जल के समान काले वर्ण वाले, इस प्रकार पाचों वर्ण के

मेघ हो, बिजली चमक रही हो, गर्जना की ध्वनि हो रही हो, विस्तीर्ण आकाश में वायु के कारण चपल बने हुए बादल इधर-उधर चल रहे हों।

निर्मल एवं श्रेष्ठ जलधाराओं में गलित, प्रचंड वायु से आहत, पृथ्वीतल को भिगोने वाली वर्षा निरन्तर हो रही हो। जलधारा के समूह से भूतल शीतल हो गया हो। पृथ्वी रूपी रमणी ने घास रूपी कंचुकी धारण की हो। वृक्षों का समूह नवीन पल्लवों से सुशोभित हो गया हो। बेलों का समूह विस्तार को प्राप्त हुआ हो।

उन्नत भूप्रदेश सौभाग्य को प्राप्त हुए हों अर्थात् पानी से धुल कर साफ-सुथरे हो गए हों। अथवा पर्वत और कुण्ड सौभाग्य को प्राप्त हुए हों। वैभारगिरि के प्रपात-तट से निर्झर निकल कर बह रहे हों। पर्वतीय नदियों में तेज बहाव के कारण उत्पन्न हुए फेनों से युक्त जल बह रहा हो।

उद्यान सर्ज, अर्जुन, नीप और कुटज नामक वृक्षों के अंकुरों से और छत्राकार (कुकरमुत्ता) से युक्त हो गया हो। मेघ की गर्जना के कारण हृष्ट-तुष्ट होकर नाचने की चेष्टा करने वाले मयूर हर्षवश मुक्त कण्ठ से केकारव कर रहे हों और वर्षाऋतु के कारण उत्पन्न हुए मद से तरुण मयूरियाँ नृत्य कर रही हों। उपवन (घर के समीप वर्ती बाग) शिलिन्ध्र, कुटज, कंदल और कदम्ब वृक्षों के नवीन पुष्पों की सौरभयुक्त गंध समूह को फैला रहे हों। नगर के बाहर के उद्यान कोकिलाओं के स्वर से व्याप्त हों और रक्तवर्ण इन्द्रगोप नामक कीड़ों से सौभाग्यवान् हो रहे हों। ... झुके हुए तृणों से मंडित हों। ... उच्च स्वर से आवाज कर रहे हों। मदोन्मत्त ... भ्रमरियों के समूह एकत्र हों ... उन उद्यानप्रदे... के सौगु... एवं मधुर गुंजा... मदोन्मत्त ... रहे हों।
... चन्द्र, सूर्य और ग्र... तारे मे ...

के कारण श्यामवर्ण दृष्टिगोचर हो रहे हो। इन्द्रधनुष रूपी ध्वजपट फरफरा रहा हो और आकाश मे मेघपटल बगुलो की पक्तियो से शोभित हो रहा हो।

इस भाति कारण्डक, चक्रवाक और राजहस पक्षियो को मान-सरोवर की ओर जाने के लिए उत्सुक बनाने वाला वर्षाऋतु का समय हो!

ऐसे वर्षाकाल मे जो माताए स्नान करके, बलिकर्म करके कौतुक, मगल रूप प्रायश्चित्त करके (वैभारगिरि के प्रदेशो मे अपने पति के साथ विहार करती हैं, वे धन्य हैं।)

धारिणी देवी ने इसके पश्चात् क्या विचार किया, सो बतलाते हैं—

वे माताए धन्य हैं जो पैरो मे उत्तम नूपुर धारण करती हैं। कमर मे करधनी पहनती हैं! वक्षस्थल पर हार धारण करती हैं। हाथो मे कडे तथा अगुलियो मे अगूठिया पहनती हैं। अपनी बाहुओ को विचित्र और श्रेष्ठ बाजूबन्दो से शोभित करती हैं, जिनका मुख कुण्डलो से चमक रहा है। अग रत्नो से भूषित हो रहा है। जिन्होने ऐसा बारीक वस्त्र पहना हो जो नासिका के निश्वास से भी उड जाए, अर्थात अत्यन्त बारीक हो, नेत्रो को हरण करने वाला हो, उत्तम वर्ण एव स्पर्श वाला हो, घोडे के मुख से निकलने वाले फेन से भी कोमल और हल्का हो, उज्ज्वल हो, जिसके किनारे सुवर्ण के तारो से बने हो, श्वेत होने के कारण जो आकाश एव स्फटिक के समान कान्ति वाला हो और श्रेष्ठ हो।

जिन माताओ ने सुकुमार उत्तरीय दुकूल धारण किया हो, जिनका मस्तक समस्त ऋतुओ के सुगधित पुष्पो की श्रेष्ठ मालाओ से सुशोभित हो, जो कृष्ण अगर आदि उत्तम धूप से धूपित हो, लक्ष्मी के समान वेश वाली हो, सेचनक नामक गधहस्तीरत्न पर आरूढ हो, एव कोरट पुष्पो की माला से सुशोभित छत्र को धारण करती हो,

चन्द्रमा की प्रभा, वज्र और वैडूर्यमणि के निर्मल दण्ड वाले एव शख, कुन्दपुष्प, जलकण और अमृत के मथन से उत्पन्न हुए फेन के समूह के समान उज्ज्वल चार चामर जिनके ऊपर ढोल जा रहे हो, जो हस्तीरत्न के स्कन्ध पर (महावत के रूप मे) राजा श्रेणिक के साथ बैठी हो, उनके पीछे-पीछे चतुरगिणी सेना चल रही हो, अर्थात् विशाल अश्वसेना, गजसेना, रथसेना और पैदल सेना हो, जो सब प्रकार की ऋद्धि तथा आभूषणों आदि की कान्ति के साथ एव वाद्यों की ध्वनि के साथ, राजगृह नगर के शृङ्गाटक (सिंघाडे के आकार के मार्ग) त्रिक (जहां तीन मार्ग मिलते हो), चतुष्क (चौक), चत्वर (चबूतरा) चतुर्मुख (चारो ओर द्वार वाले देवकुल आदि), महापथ (राजमार्ग) तथा सामान्य मार्ग मे एक बार और अनेक बार गन्धोदक छिडका गया हो, उन्हे शुचि किया गया हो, भाडा हो, गोबर आदि से लीपा हो, यावत् उत्तम गन्ध के चूर्ण से सुगन्धित किया हो, गन्धद्रव्य की गुटिका जैसा बनाया हो। इस प्रकार के राजगृह नगर का निरीक्षण करती जा रही हो। नागरिक जन उनका अभिनन्दन कर रहे हों। इस प्रकार गुच्छो, लताओं, वृक्षों, गुल्मो (झाडियो) एव वनों के समूह से व्याप्त मनोहर वैभारगिरि के निचले भागों के समीप चारों ओर सर्वत्र भ्रमण करती हुई अपने दोहद का पूर्ण करती हैं (वे माताए धन्य हैं।) मैं भी इसी प्रकार मेघों के उन्नत होने पर यावत् अपने दोहद को पूर्ण करू ॥ (१२)

विशेष बोध—गर्भ के तीसरे मास में माता को दोहद उत्पन्न होना कहा जाता है। दोहद का अर्थ है—गर्भवती माता के चित्त मे उत्पन्न होने वाली विशिष्ट कामना।

दोहद अनेक प्रकार के होते हैं—कोई शुभ और कोई अशुभ। इस की शुभता और अशुभता गर्भस्थ शिशु के व्यक्तित्व पर निर्भर है। गर्भ मे उत्पन्न होने वाला शिशु यदि पुण्यशाली और गुणधारी होता है तो माता के अन्तःकरण म शुभ इच्छाए उत्पन्न होती है

और यदि वह पापी एव कुसस्कारी होता है तो उसे अशुभ दोहद उत्पन्न होता है। अनेक कथाओ से इस तथ्य की पुष्टि होती है कहा जा सकता है कि माता का दोहद शिशु के भावी व्यक्तित्व के स्वरूप का सूचक होता है।

गर्भिणी के दोहद की पूर्ति करना आवश्यक समझा जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो गभ पर उसका दुष्प्रभाव पडता है। वह दुबल, रुग्ण और विकलाग हो जाता है।

महारानी धारिणी का जो दोहद उत्पन्न हुआ, वह नैसर्गिक सौन्दर्य को निहारने से सम्बन्ध रखता है। उस दोहद का वणन सूत्रकार ने विस्तारपूवक किया है। यह वणन वडा ही मनोरम है। वर्षाकालिक प्रकृति-सौन्दय का हूबहू चित्र खीच दिया है। प्राकृतिक सौन्दय म जो सजीवता होती है वह वनावटी सौन्दय मे सभव नही।

धारिणी देवी का दोहद इस तथ्य का सूचक है कि गर्भ मे रहा हुआ शिशु प्रकृति-प्रेमी होगा। जगत का नकली सौन्दर्य उसे विमोहित करने मे समथ नही हो सकेगा।

जिन माताओ ने पुण्य का सचय किया है, उनके दोहद पूरे होते हैं। जो पुण्यहीन हैं, उनके मनोरथ हृदय मे उत्पन्न होकर हृदय मे ही विनष्ट हो जाते हैं।

**मूलपाठ**—तए ण सा धारिणीदेवी तसि दोहलसि अविणिज्जमाणसि असपन्नदोहला असपुन्नदोहला अममाणियदोहला सुक्का-भुक्खा णिम्मसा ओलुग्गा ओलुग्गसरोरा पमइलदुब्बला किलता ओमथिय वयणनयणकमला, पडुइयमुहा करयलमलियव्व चपगमाला णित्तेया दीणा विवण्णवयणा जहोचियपुप्फगधमल्लालकारहार अणभिलसमाणी कोडारमणकिरिय च परिहावेमाणी दीणा दुम्मणा णिराणदा भूमिगयदिट्ठीया ओहयमणसकप्पा जाव झियायइ।

तए ण तीसे धारिणीए देवीए अगपडियारियाओ अब्भि-तरियाओ दासचेडियाओ धारिणि देवि ओलुग्ग जाव झिया-यमाणि पासति, पासित्ता एव वयासी—किण्ण तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरोरा जाव झियायसि ?

तए ण सा धारिणी देवो ताहि अगपडियारियाहि अब्भितरियाहि दासचेडियाहि एव वुत्तासमाणी ताओ दासचेडियाओ नो आढाइ, णो परियाणाइ, अणाढाय माणी अपरियाणमाणी तुसिणीया सचिट्ठइ ।

तए ण ताओ अगपडियारियाओ अब्भितरियाओ दास-चेडियाओ धारिणि देवि दोच्चपि तच्चपि एव वयासी—किन्न तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव झिया-यसि ?

तए ण सा धारिणीदेवी ताहि अगपडियारियाहि अभि-तरियाहि दासचेडियाहि दोच्चपि तच्चपि एव वुत्तासमाणी णो आढाइ, णो परियाणाइ, अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी तुसिणोया सचिट्ठइ ।

तए ण ताओ अगपडियारियाओ दासचेडियाओ धारि-णीए देवीए अणाढाइज्जमाणीओ अपरिजाणिज्जमाणीओ तहेव सभताओ समाणीओ धारिणीए देवीए अतियाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहिय जाव कट्टु जएण विजएण वद्धावेति, वद्धावित्ता एव वयासी—एव खलु सामी! किंपि अज्ज धारिणीदेवी ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायइ ।

तए ण से सेणिए राया तासि अगपडियारियाण अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म तहेव सभते समाणे सिग्घ तुरिय चवल वेइय जेणेव धारिणीदेवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणि देवि ओलुग्ग ओलुग्ग-सरीर जाव अट्ट-झाणोवगय झियायमाणि पासइ, पासित्ता एव वयासी—किण्ण तुमे देवाणुप्पिए ! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव अट्ट-झाणोवगया झियायसि ?

तए ण सा धारिणी देवी सेणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणी नो आढाइ जाव तुसिणीया सचिट्ठइ ।

तए ण से सेणिए राया धारिणि देवि दोच्चपि तच्चपि एव वयासी—किन्न तुमे देवाणुप्पिए ! ओलुग्गा जाव झियायसि ?

तए ण सा धारिणीदेवी सेणिएण रण्णा दोच्चपि तच्चपि एव वुत्तासमाणा णो आढाइ, णो परिजाणाइ, तुसिणीया सचिट्ठइ ।

तए ण सेणिए राया धारिणि देवि सवहसाविय करेइ, करित्ता एव वयासी—किण्ण तुम देवाणुप्पिए ! अहमेयस्स अट्ठस्स अणरिहे सवणयाए, ताण तुम मम अयमेयारूव मणोमाणसिय दुक्ख रहस्सीकरेसि ?

तए ण सा धारिणीदेवी सेणिएण रण्णा सवहसाविया समाणी सेणिय राय एव वयासी—एव खलु सामी ! मम तस्स उरालस्स जाव महासुमिणस्स तिण्ह मासाण बहु-पडिपुण्णाण अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहले पाउब्भूए—धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ ण ताओ अम्म-

तए ण तीसे धारिणीए देवीए अगपडियारियाओ अब्भि तरियाओ दासचेडियाओ धारिणि देवि ओलुग्ग जाव झिया यमाणि पासति, पासित्ता एव वयासी—किण्ण तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव झियायसि ?

तए ण सा धारिणी देवी ताहिं अगपडियारियाहिं अब्भितरियाहिं दासचेडियाहिं एव वुत्तासमाणी ताओ दासचेडियाओ नो आढाइ, णो परियाणाइ, अणाढाय माणी अपरियाणमाणी तुसिणीया सचिट्ठइ ।

तए ण ताओ अगपडियारियाओ अब्भितरियाओ दास चेडियाओ धारिणि देवि दोच्चपि तच्चपि एव वयासी— किन्न तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव झिया- यसि ?

तए ण सा धारिणीदेवी ताहिं अगपडियारियाहिं अब्भि- तरियाहिं दासचेडियाहिं दोच्चपि तच्चपि एव वुत्तासमाणी णो आढाइ, णो परियाणाइ, अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी तुसिणीया सचिट्ठइ ।

तए ण ताओ अगपडियारियाओ दासचेडियाओ धारि- णीए देवीए अणाढाइज्जमाणीओ अपरिजाणिज्जमाणीओ तहेव सभताओ समाणीओ धारिणीए देवीए अतियाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहिय जाव वद्दु जएण विजएण वद्धावेंति, वद्धावित्ता एव वयासी—एव खलु सामी! किंपि अज्ज धारिणीदेवी ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव अट्टझाणोवगया झियायइ ।

तए ण से सेणिए राया तासि अगपडियारियाण अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म तहेव सभते समाणे सिग्घ तुरिय चवल वेइय जेणेव धारिणीदेवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणि देवि ओलुग्ग ओलुग्ग-सरीर जाव अट्टझाणोवगय झियायमाणि पासइ, पासित्ता एव वयासी—किण्ण तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव अट्टझाणोवगया झियायसि ?

तए ण सा धारिणी देवी सेणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणी नो आढाइ जाव तुसिणीया सचिट्ठइ।

तए ण से सेणिए राया धारिणि देवि दोच्चपि तच्चपि एव वयासी—किन्न तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा जाव झियायसि ?

तए ण सा धारिणीदेवी सेणिएण रण्णा दोच्चपि तच्चपि एव वुत्तासमाणा णो आढाइ, णो परिजाणाइ, तुसिणीया सचिट्ठइ।

तए ण सेणिए राया धारिणि देवि सवहसाविय करेइ, करित्ता एव वयासी—किण्ण तुम देवाणुप्पिए! अहमेयस्स अट्ठस्स अणरिहे सवणयाए, ताण तुम मम अयमेयारूव मणोमाणसिय दुक्ख रहस्सीकरेसि ?

तए ण सा धारिणीदेवी सेणिएण रण्णा सवहसाविया समाणी सेणिय राय एव वयासी—एव खलु सामी! मम तस्स उरालस्स जाव महासुमिणस्स तिण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहले पाउब्भूए—धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ ण ताओ अम्म-

तए ण तीसे धारिणीए देवीए अगपडियारियाओ अब्भि-तरियाओ दासचेडियाओ धारिणिं देविं ओलुग्ग जाव झिया यमाणिं पासति, पासित्ता एव वयासी—किण्ण तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव झियायसि ?

तए ण सा धारिणी देवी ताहिं अगपडियारियाहिं अब्भितरियाहिं दासचेडियाहिं एव वुत्तासमाणी ताओ दासचेडियाओ नो आढाइ, णो परियाणाइ, अणाढाय माणी अपरियाणमाणी तुसिणीया सचिट्ठइ ।

तए ण ताओ अगपडियारियाओ अब्भितरियाओ दास-चेडियाओ धारिणिं देविं दोच्चपि तच्चपि एव वयासी—किन्न तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव झिया-यसि ?

तए ण सा धारिणीदेवी ताहिं अगपडियारियाहिं अब्भि तरियाहिं दासचेडियाहिं दोच्चपि तच्चपि एव वुत्तासमाणी णो आढाइ, णो परियाणाइ, अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी तुसिणीया सचिट्ठइ ।

तए ण ताओ अगपडियारियाओ दासचेडियाओ धारि-णीए देवीए अणाढाइज्जमाणीओ अपरिजाणिज्जमाणीओ तहेव सभताओ समाणीओ धारिणीए देवीए अतियाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहिय जाव कट्टु जएण विजएण वद्धावेंति, वद्धावित्ता एव वयासी—एव खलु सामी! किंपि अज्ज धारिणीदेवी ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव अट्टझाणोवगया झियायइ ।

तए ण से सेणिए राया तासिं अगपडियाग्यािण अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म तहेव सभते समाणे सिग्घ तुरिय चवल वेइय जेणेव धारिणीदेवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणि देविं ओलुग्ग ओलुग्ग-सरीर जाव अट्ट-झाणोवगय झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एव वयासी—किण्ण तुमे देवाणुप्पिए ! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव अट्ट-झाणोवगया झियायसि ?

तए ण सा धारिणी देवी सेणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणी नो आढाइ जाव तुसिणीया सचिट्ठइ ।

तए ण से सेणिए राया धारिणिं देविं दोच्चपि तच्चपि एव वयासी—किन्न तुमे देवाणुप्पिए ! ओलुग्गा जाव झियायसि ?

तए ण सा धारिणीदेवी सेणिएण रण्णा दोच्चपि तच्चपि एव वुत्तासमाणा णो आढाइ, णो परिजाणाइ, तुसिणीया सचिट्ठइ ।

तए ण सेणिए राया धारिणिं देविं सवहसाविय करेइ, करित्ता एव वयासी—किण्ण तुम देवाणुप्पिए ! अहमेयस्स अट्ठस्स अणरिहे सवणयाए, ताण तुम मम अयमेयारूव मणोमाणसिय दुक्ख रहस्सीकरेसि ?

तए ण सा धारिणीदेवी सेणिएण रण्णा सवहसाविया समाणी सेणिय राय एव वयासी—एव खलु सामी ! मम तस्स उरालस्स जाव महासुमिणस्स तिण्ह मासाण बहु-पडिपुण्णाण अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहले पाउब्भूए—धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ ण ताओ अम्म-

याओ, जाव वेभारगिरिपायमूल आहिंडमाणाओ डोहल विणिंति, त जइ ण अहमवि जाव डोहल विणिज्जामि, तए ण ह मामी ! अयमेयारूवसि अकालदोहलसि अविणि ज्जमाणसि ओलुग्गा जाव अट्टझाणोवगया झियायामि।

तए ण से सेणिए राया धारिणोए देवीए अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म धारिणिं देविं एव वयासी-मा ण तुम देवाणु प्पिए, ओलुग्गा जाव झियाहि, अह ण तहा करिस्सामि जहा ण तुब्भ अयमेयारूवस्स अकालदोहलस्स मणोरहसपत्ती भविस्सइ, त्ति कट्टु धारिणिं देविं इट्ठाहिं कताहिं पियाहि मणुन्नाहिं मणामाहिं वग्गूहिं समासासेइ, समासासेत्ता जेणेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणामेव उवागच्छेइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने, धारिणीए देवीए एव अकालदोहल बहूहिं आएहि य, उवाएहि य, ठिईहि य, उप्पत्तीहि य, वेणइयाहि य, कम्मियाहि य, पारिणामियाहि य, चउव्विहाहिं वुद्धीहिं अणुचिंतेमाण २ तस्स दोहलस्स आय वा उवाय वा, ठिइ वा उप्पत्ति वा अविदमाणे ओहयमणसकप्पे जाव झियायइ। (१३)

मूलाथ—तत्पश्चात् वह धारिणीदेवी उस दोहद के पूर्ण न होने के कारण, दोहद के सम्पन्न न होने के कारण, मघ आदि का अनुभव न होने से दोहद के सम्मानित न होने के कारण, मानसिक सन्ताप द्वारा रक्त का शोषण हो जाने से शुष्क हो गयी, भूख से व्याप्त हो गई, मास से रहित हो गई, जीण एव जीणशरीर वाली होगई। स्नान का त्याग करने से मलीन शरीर वाली, भोजन त्यागने से दुवली तथा थकी हुई हो गयी। उसने अपने मुख और नयनरूपी कमल नीचे कर लिए। उसका मुख फीका पड गया। वह हथेलियों द्वारा मसली हुई चम्पक पुष्पो की माला के समान निस्तेज हो गई।

उसका मुख दीन और विवण हो गया। वह यथोचित पुष्प गध माला अलकार और हार के विषय मे रुचिरहित हो गई। अर्थात् उसने इन सब का त्याग करदिया। वह दीन दुखी मन वाली आनन्द-हीन एव भूमि की तरफ दृष्टि किए हुए बैठी रही। उसके मन का सकल्प नष्ट हो गया। वह यावत् आतध्यान करने लगी।

तत्पश्चात् धारिणीदेवी की अगपरिचारिकाए -शरीर की सेवा शुश्रूषा करने वाली आभ्यतर दासिया धारिणीदेवी को जीण-सी एव जीण शरीर वाली यावत् आतध्यान करती हुई देखती हैं। देखकर इस प्रकार कहती हैं — हे देवानुप्रिये! तुम जीण जैसी तथा जीण शरीर वाली क्यो हो रही हो? यावत् आर्तध्यान क्यो कर रही हो?

तब धारिणीदेवी अगपरिचारिका-आभ्यतर दासिया द्वारा इस प्रकार कहने पर (अन्यमनस्क होने से) उनका आदर नही करती है। वह मौन ही रहती है।

तत्पश्चात् अगपरिचारिका आभ्यन्तर दासिया, दूसरी बार और तीसरी बार यह कहने लगी — हे देवानुप्रिये! क्यो तुम जीण-सी एव जीण शरीर वाली हो रही हो? यावत आतध्यान कर रही हो?

तब धारिणीदेवी उन अगपरिचारिका आभ्यन्तर दासिया द्वारा दूसरी बार और तीसरी बार भी इस प्रकार कहने पर न आदर करती है, न उनके कथन को स्वीकार करती है, अर्थात् उनकी बात पर ध्यान नही देती। वह मौन ही बनी रहती है।

तत्पश्चात् ये अगपरिचारिका आभ्यतर दासियाँ धारिणी देवी द्वारा अनादृत एव अपरिज्ञात की हुई उसी प्रकार सभ्रान्त (व्याकुल) होती हुई धारिणीदेवी के पास से निकलती हैं और निकल कर जहा श्रेणिक राजा था वहा आती हैं। आकर दोनो हाथ जोडकर यावत् मस्तक पर अजलि करके जय-विजय से बधाती हैं। बधा कर इस

प्रकार कहती हैं— स्वामिन् ! आज धारिणी देवी जीर्ण सी औ
शरीर वाली यावत् आर्तध्यान युक्त हो रही हैं।

तब राजा श्रेणिक उन अंगपरिचारिकाओं से यह बात
तथा मन मे धारण करके उसी प्रकार सभ्रम के साथ शीघ्र ह
धारिणी रानी थी वहा आता है। आकर धारिणीदेवी को ज
जीर्ण शरीर वाली यावत् आर्तध्यान से युक्त—चिन्ता करती
है। देखकर इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रिये ! किस कारण
जीर्ण-सी जीर्ण देह वाली यावत आर्तध्यान से युक्त होकर
कर रही हो ?

तब धारिणीदेवी श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर
नही करती—उत्तर नही देती, यावत् चुप रहती है।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने दूसरी वार और फिर तीसरी
इसी प्रकार कहा—यावत् क्या चिन्ता कर रही हो ?

धारिणीदेवी श्रेणिक राजा के द्वारा दूसरी और तीसरी
भी इस प्रकार कहने पर न उस कथन का आदर करती है और
उसे स्वीकार करती है। वह मौन ही रहती है।

तत्पश्चात् राजा श्रेणिक धारिणीदेवी को शपथ दिलाता
और शपथ दिलाकर कहता है—देवानुप्रिये ! क्या तुम्हारे मन
बात सुनने के लिए मैं अयोग्य हूँ, जिससे तुम अपने मन में रहे हु
मानसिक दुःख को छिपाती हो ?

तदनन्तर श्रेणिक राजा के द्वारा शपथ दिलाने पर धारिणी दे
ने श्रेणिक राजा से कहा—स्वामिन् ! मुझे यह उदार आदि विशेषण
वाला महास्वप्न आया था। उसे आये तीन मास पूरे हो चुके हैं
अतएव इस प्रकार का अकाल-मेघ सम्बन्धी दोहद उत्पन्न हुआ है कि
वे माताए धन्य हैं और वे माताए कृतार्थ हैं यावत् जो वैभार
गिरि की तलहटी मे भ्रमण करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं।

इस प्रकार के इस दोहद के पूण नही होने के कारण उदास और चिन्तातुर हो गई हूँ।

तत्पश्चात श्रेणिक राजा ने धारिणी देवी की यह बात सुनकर और समझ कर धारिणी देवी से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये ! तुम उदास एव चिन्तातुर मत होओ। मै वैसा करूँगा अर्थात् कोई ऐसा उपाय करूगा जिससे तुम्हारे अकाल मेघ सम्बन्धी दोहद की पूर्ति हो जायगी। इस प्रकार कहकर धारिणीदेवी को इष्ट (प्रिय), कान्त (इच्छित), प्रिय (प्रीति उत्पन्न करने वाली , मनोज्ञ मन के अनुकूल और मणाम (मन को प्रिय) वाणी से आश्वासन देता है।

आश्वासन देकर वह जहा बाहर की उपस्थानशाला थी वहा आता है! आकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूव दिशा की ओर मुख करके बैठता है। धारिणीदेवी के उस अकाल मेघ सम्बन्धी दोहद की पूर्ति के लिए बहुत से आयो से, उपायो से, औत्पत्तिकी बुद्धि से, वैनयिक बुद्धि से, कार्मिक बुद्धि से और पारिणामिक बुद्धि से, इस प्रकार चारो प्रकार की बुद्धि से बार-बार विचार करता है, परन्तु विचार करने पर भी उस दोहद के आय-लाभ को उपाय को, स्थिति को और उत्पत्ति को समझ नही पाता, अर्थात् उसे दोहद पूर्ति का कोई उपाय नहीं सूझता। इस कारण उसके मन का सकल्प नष्ट हो गया और वह यावत् चिन्ताग्रस्त हो जाता है। (१३)

**विशेष बोध**— आर्तध्यान चार प्रकार का है—

(१) मनोज्ञ वस्तु की प्राप्ति के लिए बार-बार चिन्तन करना

(२) अमनोज्ञ वस्तु का सयोग होने पर उसके वियोग के लिए सतत चिन्ता करना।

(३) वेदना होने पर उससे पिण्ड छूटने के लिए चिन्तन करना।

(४) पारलौकिक सुख की प्राप्ति के लिए निदान (नियाणा) करना।

आर्तध्यान के चार लक्षण हैं—

(१) चिन्ता करना।
(२) अश्रुपात करना।
(३) जोर-जोर से रुदन करना।
(४) सिर पीट पीट कर रोना।

धारिणीदेवी की यही स्थिति हो गयी। आर्तध्यान के कारण वह जीर्ण सी हो गयी। मानसिक सन्ताप से उसका खून तक सूख गया, मांस सिकुड़ गया। दमकता चमकता चेहरा फीका पड़ गया। उसे भारी झटका लगा। जीवन जैसे झुलस गया।

दासियों ने यह स्थिति देखी तो वे हैरान परेशान हो गयीं। उन्होंने कारण जानना चाहा, मगर धारिणी बोली नहीं। उसने पलक उठाकर उनकी ओर देखा तक नहीं। वे दौड़ी-दौड़ी राजा के पास पहुंची। राजा ने देखा, दासियां घबराई हुई हैं। उनका चेहरा उतरा हुआ है। नेत्रों मे पानी आ रहा है। गदगद स्वर मे व बोली-स्वामिन्! महारानी जी आज किसी चिन्ता मे डूबी हैं। पूछने पर बोलती भी नहीं।

महारानी की चिन्ता की बात सुनते ही श्रेणिक द्रुत गति से चल कर धारिणी के पास पहुंचा। रानी की हालत देखकर श्रेणिक स्वयं चिन्ता मे पड़ गया।

यहां दाम्पत्य प्रेम का चित्र सजीव हो उठा है। रानी की चिन्ता राजा की चिंता बन गई है। एक के दुःख से दूसरा दुःखी हो उठा है। वास्तव मे आदर्श दम्पती वही हैं जिनका सुख-दुःख एक होता है।

राजा अत्यन्त व्यग्र होकर रानी की चिन्ता का कारण जानना चाहता है परन्तु चिन्ता मे आकण्ठ निमग्न रानी मौन ही रहती है। शायद वह सोचती है कि मेरी अभिलाषा ऐसी असामयिक एवं अप्राकृतिक है कि उसका निवारण नहीं हो सकता। फिर उसे व्यक्त करके पति को क्या परेशानी मे डाला जाय? मगर उसे व्यक्त न करने से पति की चिन्ता कम होने वाली नहीं थी और फिर राजा

ने उसे शपथ भी दिला दी। तब विवस होकर रानी को अपनी व्यथा निवेदन करनी पड़ी। उसे अकाल मेघ का जो दोहद उत्पन्न हुआ था, वह रानी ने राजा को सुनाया। राजा ने उसे पूर्ण करने का आश्वासन तो दे दिया और ऐसा करना आवश्यक भी था, पर उसे यह नहीं सूझ रहा था कि उसकी पूर्ति किस प्रकार की जाय? चारो प्रकार की बुद्धि मे से कोई भी बुद्धि कारगर नही हुई। तब वह स्वय गहरे सोच विचार मे पड गया।

**मूलपाठ**—तयाणतर अभयकुमारे ण्हाए कयबलिकम्मे सव्वालकारविभूसिए पायवन्दए पहारेत्थ गमणाए। तए णं से अभयकुमारे जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणिय राय ओहयमणसकप्पं जाव झियायमाणं पासइ, पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था—

अन्नया य मम सेणिए राया एज्जमाण पासइ, पासित्ता आढाइ, परिजाणाइ, सक्कारेइ, सम्माणेइ, आलवेइ, सलवेइ, अद्धासणेण उवणिमतेइ, मत्थयसि अग्घाइ। इयाणि मम सेणिए राया णो आढाइ, णो परियाणाइ, णो सक्कारेइ, णो सम्माणेइ, णो इट्ठाहिं कताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं ओरालाहिं वग्गूहिं आलवेइ सलवेइ, नो अद्धासणेण उवणिमतेइ, णो मत्थयसि अग्घाइ य। किंपि ओहयमणसकप्पे झियायइ, त भवियव्व ण एत्थ कारणेण। त सेय खलु मे सेणिय राय एयमट्ठ पुच्छित्तए। एव सपेहेइ, सपेहित्ता जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु जएण विजएण वद्धावेइ, वद्धावित्ता एव वयासी—

तुब्भे ण ताओ ! अन्नया मम एज्जमाण पासित्ता आढाह, परिजाणह जाव मत्थयसि अग्घायह, आसणेण उवणिमतेह। इयाणि ताओ ! तुब्भे मम नो आढाह जाव नो आसणेण उवणिमतेह, किंपि ओहयमणसकप्पे जाव झियायह। त भवियव्व ताओ एत्थ कारणेण, तओ तुब्भे मम ताओ ! एय कारण अगूहेमाणा असकेमाणा अनिण्हवेमाणा अप्पच्छाएमाणा जहाभूयमवितहमसदिद्धे एयमट्ठमाइक्खह। तए ण तस्स कारणस्स अतगमण गमिस्सामि।

तए ण से सेणिए राया अभएण कुमारेण एव वुत्तेसमाणे अभयकुमार एव वयासी—एव खलु पुत्ता ! तव चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए तस्स गब्भस्स दोसु मासेसु अइक्कतेसु तइए मासे वट्टमाणे दोहलकालसमयसि अयमेयारूवे दोहले पाउब्भवित्था—

धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ—तहेव निरवसेस भाणियव्व जाव विणिति।

तओ ण अह पुत्ता ! धारिणीए देवीए तस्स अकाल-दोहलस्स बहूहिं आएहिं य उवाएहिं जाव उप्पत्ति अविदमाणे ओहयमणसकप्पे जाव झियाएमि, तुम आगय.प न जाणामि।

तए ण से अभयकुमारे सेणियस्स रन्नो अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियए सेणिय राय एव वयासी—मा ण तुब्भे ताओ ! ओहयमण जाव झियायह। अहण्ण तहा करिस्सामि जहा ण मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए

अयमेयारूवस्स अकालदोहलस्स मणोरहसपत्ती भविस्सइ त्ति कट्टु सेणिय राय ताहि इट्ठाहि कताहि जाव समासासेइ ।

तए ण सेणिए राया अभएण कुमारेण एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव अभयकुमार सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ । (१४)

मूलार्थ—तदनन्तर अभयकुमार स्नान करके, वलिकम (गृह-देवता का पूजन) करके यावत् समस्त अलकारो से विभूषित होकर श्रेणिक राजा के चरणो मे वन्दना करने के लिए रवाना होता है। तत्पश्चात् अभयकुमार जहा श्रेणिक राजा है वहा आता है। आकर के श्रेणिक राजा को अपहृतमन सकल्प वाला यावत् चिन्तातुर देखता है ।

यह देखकर अभयकुमार के मन मे इस प्रकार का आध्यात्मिक अर्थात् आत्मा-सम्बन्धी चिन्तित प्रार्थित (प्राप्त करने को इष्ट) और मनोगत मन मे ही रहा हुआ विचार उत्पन्न होता है—

अन्य समय श्रेणिक राजा मुझे आता देखते थे, तो देखते ही आदर करते थे । अच्छा अनुभव करते थे, वस्त्रादि से सत्कार करते, आसनादि देकर सम्मान करते और आलाप-सलाप करते थे । आधे आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रण करते थे और मेरे मस्तक को सूघते थे । किन्तु आज श्रेणिक राजा मुझे न आदर दे रहे हैं, न आया जान रहे हैं । न सत्कार करते हैं, न सम्मान करते हैं, न इष्ट कान्त प्रिय मनोज्ञ और उदार वचनो से आलाप सलाप करते हैं, न अध आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रण करते हैं और न मस्तक को सूघते ही हैं। उनके मन के सकल्पो को कुछ आघात पहुचा है, वे चिंतातुर हो रहे हैं । इसका कुछ कारण होना चाहिए। राजा श्रेणिक से मुझे यह बात पूछना श्रेय (योग्य) है ।

अभयकुमार इसप्रकार विचार करता है और फिर श्रेणिक राजा जहा थे वहा पहुचता है। दोनो हाथ जोड़कर मस्तक पर आवर्त्तन करके, अजलि करके जय-विजय से वधाता है। वधा कर इस प्रकार कहता है—

हे तात! आप अन्य समय मुझे आता देखकर आदर करते, भला जानते यावत् मेरे मस्तक को सू घते थे और आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित करते थे, किन्तु तात! आज आप मुझे आदर नही दे रहे हैं, यावत् आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित नहीं कर रहे हैं। अपहृतमन सकल्प होकर चितातुर हो रहे हैं। इसका कोई कारण होना चाहिए। तो, हे तात! आप इसके कारण को मुझसे छिपाये बिना, किसी प्रकार की शका न करते हुए, उसका अपलाप न न करते हुए, उसे दबाए बिना जो हो सो सत्य और सन्देहरहित कहिए। तब मैं उस कारण का पार पाने का प्रयत्न करू गा।

तब अभयकुमार के इस प्रकार कहने पर श्रेणिक राजा ने अभय कुमार से इस प्रकार कहा—पुत्र! तुम्हारी छोटी माता धारिणीदेवी की गर्भस्थिति हुए दो मास बीत गए और तीसरा मास चल रहा है। इस दोहद-काल के समय उसे इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ है—वे माताएँ धन्य हैं, इत्यादि पूर्ववत् दोहद का वर्णन कह लेना चाहिए, यावत् जो माताएं अपने दोहद को पूर्ण करती हैं। पुत्र! अब मैं धारिणीदेवी के उस अकाल-दोहद के आय, उपाय एव उत्पत्ति को अर्थात् उसकी पूर्ति के उपाय को नही समझ पा रहा हूँ। इससे मेरे मन का सकल्प नष्ट हो गया है और मैं चिंता कर रहा हूँ। इस कारण मैंने तुम्हारा आना भी नहीं जाना। पुत्र! इसी कारण मैं नष्ट हुए मन सकल्प वाला हो गया हूँ।

तत्पश्चात् अभयकुमार श्रेणिक राजा से यह अर्थ सुनकर और समझकर हृष्ट-तुष्ट यावत् आनन्दितहृदय हुआ। उसने श्रेणिक

राजा से इस प्रकार कहा—हे तात ! आप भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्ता न करें। मैं वैसा (कोई उपाय) करूंगा, जिससे मेरी छोटी माता धारिणीदेवी के इस अकाल-दोहद के मनोरथ की पूर्ति होगी। इस प्रकार कहकर (अभयकुमार ने) इष्ट, कान्त यावत् मनोहर वचनों से श्रेणिक राजा को सान्त्वना दी।

तत्पश्चात्, श्रेणिक राजा अभयकुमार के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुआ। वह अभयकुमार का सत्कार-सन्मान करता है और सत्कार-सम्मान करके उसे विदा करता है। (१४)

विशेष बोध—अभयकुमार कुलदेवता का पूजन करता है और फिर पिता के चरणवन्दन के लिए जाता है। ज्ञात होता है, कुलदेवता का पूजन करना उस काल की कुलपरम्परा रही है। इस पूजन का क्या रूप था, इसका ब्यौरा शास्त्रों मे कहीं उपलब्ध नहीं होता। तथापि आधुनिक काल की भांति पूजा की परम्परा उस समय नहीं थी, यह बात निस्सन्देह कही जा सकती है।

जैन और जैनेतर भारतीय साहित्य मे माता पिता की बहुत महत्ता स्वीकार की गई है। उसी का एक भव्य चित्र इस सूत्र मे दृष्टिगोचर होता है। राजकुमार अभय, महाराज श्रेणिक के चरणो मे प्रणाम करने के लिए जाते हैं। यह उसका प्रतिदिन का कर्त्तव्य है, यह बात सूत्र को ध्यानपूर्वक पढने से स्पष्ट हो जाती है।

सुपुत्र वही कहलाता है जो कुलदीपक होने के साथ माता पिता को सब प्रकार से सन्तुष्ट और सुखी बनाने का यत्न करता है। उनके दुःख में दुखी होता है, यही नही, वरन् उस दुःख के प्रतीकार की भी चेष्टा करता है। अभयकुमार ने सच्चे सपूत का आदर्श उपस्थित किया है।

पिता को चिन्ताग्रस्त देखकर वह स्वयं चिन्तित हो उठता है और उनकी चिन्ता का कारण जानने को आतुर हो जाता है। आखिर

श्रेणिक उसे अपनी मनोव्यथा कह सुनाते हैं और अभयकुमार उस व्यथा को दूर करने का आश्वासन देता है। किसी ने ठीक कहा है—

मा-बाप जे करता हुक्म, ते हाथ जोडी सांभले,
पछि प्रीति थी ने चित्त थी, आज्ञा चढावे सिर परे।
मा बापना हुकमो बजावे, हृदय थी ते दीकरा,
बाकी बधा भागेन काचा, हाडलाना ठीकरा।
जी जी करी उत्तर वदे ने विनय ने अगे धरी,
उत्थापनाना वैन कदिये एक पण जाये मरी।
मा बाप ने लेखे सदा ये देवसम ते दीकरा,
बाकी बधा भागेल काचा हाडलाना ठीकरा।

मूलपाठ—तए ण से अभयकुमारे सक्कारिय-सम्माणिय-पडिविसज्जिए समाणे सेणियस्स रन्नो अतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणे निसन्ने। तए ण तस्स अभयकुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—

नो खलु सक्का माणुस्सएण उवाएण मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अकालदोहलमणोरहसपत्ती करित्तए, णन्नत्थ दिव्वेण उवाएण। अत्थि ण मज्झ सोहम्मकप्पवासी पुव्वसगइए देवे महिड्ढिए जाव महासोक्खे, त सेय खलु मम पोसहसालाए पोसहियस्स बभयारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालावण्णगविलेवणस्स णिक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबीयस्स दब्भसथारोवगयस्स अट्ठमभत्त परिगिण्हित्ता पुव्वसगइय देव मणसि करेमाणस्स विहरित्तए। तए ण पुव्वसगइए देवे मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए

-

अयमेयारूव अकालमेहेसु डोहल विणेहिइ । एव सपेहेइ, सपेहित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ ।

उवागच्छित्ता पोसहसाल पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चार-पासवणभूमि पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसथारग दुरूहइ, दुरूहित्ता अट्ठमभत्त परिगिण्हइ, परिगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बभयारी जाव पुव्वसगइय देव मणसि करेमाणे २ चिट्ठइ ।

तए ण तस्स अभयकुमारस्स अट्ठमभत्ते परिणममाणे पुव्वसगइअस्स देवस्स आसण चलइ । तए ण पुव्वसगइए सोहम्मकप्पवासी देवे आसण चलिय पासइ, पासित्ता ओहि पउजइ । तए ण तस्स पुव्वसगइअस्स देवस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—एव खलु मम पुव्वसगइए जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे वासे रायगिहे णयरे पोसहसालाए पोसहिए अभए नाम कुमारे अट्ठमभत्त परिगिण्हित्ता मम मणसि करेमाणे २ चिट्ठइ । त सेय खलु मम अभयस्स कुमारस्स अतिए पाउब्भूएत्तए । एव सपेहेइ सपेहित्ता उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग अवक्कमइ, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएण समोहणइ, समोहणित्ता सखेज्जाइ जोयणाइ दड निसिरइ, तजहा—

रयणाए (१) वइराण (२) वेरुलियाण (३) लोहियक्खाण (४) मसारगल्लाण (५) हसगब्भाण (६) पुलगाण (७) सोगधियाण (८) जोइरसाण (९) अकाण (१०) अजणाण (११) रययाण (१२) जायरूवाण (१३) अजणपुलगाण (१४) फलिहाण (१५) रिट्ठाण (१६)

देव इस प्रकार विचार करके उत्तर-पूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) मे जाता है और वैक्रिय समुद्घात से समवहत होता है, अर्थात उत्तरवैक्रिय शरीर बनाने के लिए जीवप्रदेशो को बाहर निकालता है। जीव-प्रदेशो को बाहर निकालकर सख्यात योजन का दड बनाता है। वह इस प्रकार है—

(१) कर्केतनरत्न (२) वज्ररत्न (३) वैडूर्यरत्न (४) लोहिताक्षरत्न (५) मसारगल्लरत्न (६) हसगभरत्न (७) पुलकरत्न (८) सौगन्धिकरत्न ( ) ज्योतिरसरत्न (१०) अकरत्न (११) अजनरत्न (१२) रजतरत्न (१३) जातरूपरत्न (१४) अजनपुलाकरत्न (१५) स्फटिकरत्न, और (१६) रिष्टरत्न।

इन रत्नो के यथाबादर अर्थात् असार पुद्गलो का परित्याग करता है। परित्याग करके यथासूक्ष्म अर्थात् सारभूत पुद्गलो को ग्रहण करता है। ग्रहण करके (उत्तर वैक्रिय शरीर बनाता है।) फिर अभयकुमार पर अनुकम्पा करता हुआ पूवभव मे उत्पन्न हुई स्नेहजनित प्रीति के कारण और गुणानुराग के कारण (वियोग का विचार करके) वह खेद करने लगा। फिर उस देव ने रचना से अथवा रत्ना से उत्तम विमान से निकलकर पृथ्वीतल पर जाने के लिए शीघ्र ही गति का प्रचार किया अर्थात् वह शीघ्रतापूवक चल पडा।

उस समय चलायमान होते हुए निमल स्वण के प्रतर जैसे कण पूर और मुकुट के आडम्बर से वह दशनीय लग रहा था। अनेक मणियो एव स्वण और रत्ना के समूह से शोभित और विचित्र रचना वाले पहने हुए कटिसूत्र से उसे हप उत्पन्न हो रहा था अथवा वह हप उत्पन्न कर रहा था। हिलते हुए श्रेष्ठ और मनोहर कुण्डलो से उज्ज्वल मुख की दीप्ति से उसका रूप बडा ही सौम्य हो गया था। कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि म शनि और मगल के मध्य म स्थित

और उदय प्राप्त शारद निशाकर के समान वह देव दर्शको के नयनो को आनन्द दे रहा था।

तात्पय यह है कि शनि और मगल ग्रह के समान चमकते हुए दोनो कुण्डलो के बीच मे उसका मुख शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान शोभायमान हो रहा था। दिव्य औषधियो (जडी बू टियो) के प्रकाश के समान मुकुट आदि के तेज से देदीप्यमान रूप से मनोहर समस्त ऋतुओ की लक्ष्मी से वृद्धिगत शोभा वाले तथा प्रकृष्ट गघ के प्रसार से मनोहर मेरुपवत के समान वह देव अभिराम प्रतीत होता था। उस देव ने ऐसे विचित्र वेश की विक्रिया की। वह असख्यसख्यक और असख्य नामो वाले द्वीपो और समुद्रो मे होकर जाने लगा। अपनी विमल प्रभा से जीवलोक को तथा नगरवर राज-गृह को प्रकाशित करता हुआ दिव्यरूपधारी देव अभयकुमार के समीप आ पहुँचा। (१५)

**विशेष बोध**—अभयकुमार एकान्त में बैठकर अपनी निमल और विशद बुद्धि से विचार करने लगा। उसके सामने आज एक ऐसी गहन समस्या थी जिसे सुलझाना बहुत कठिन था। बिना मौसिम वर्षाऋतु का परिपूण दृश्य उपस्थित कर देना मानवीय सामथ्य से बाहर है। फिर भी वह पिता के समक्ष इस समस्या का समाधान करने की प्रतिज्ञा कर चुका है। महापुरुप जो प्रतिज्ञा कर लेते हैं, उससे विचलित नही होते। अपना सवस्व निछावर करके भी उसका निर्वाह करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। किन्तु यह प्रतिज्ञा साधारण प्रतिज्ञा नही है। इसका पालन किस प्रकार किया जाय ?

समस्या असाधारण थी तो अभयकुमार के पास बुद्धि-वैभव भी असाधारण था। मनुष्य की बुद्धि क्या नहीं कर सकती ? फिर अभयकुमार तो बुद्धि का निधान था और साथ ही मातृ-पितृ भक्ति

एव कर्त्तव्य भावना उसकी सजीव थी। अतएव एकान्त म बैठ
वह उसके विषय मे विचार करने लगा।

एकान्त विचारशक्ति को बल प्रदान करता है। चित्त की एक
ग्रता मे सहायक होता है। कोलाहलमय वातावरण मे विचार ग
शील नही हो पाते और न उनमे गहराई आ पाती है। एक
विचारशील पुरुष के लिए वरदान है। इसी कारण साधक एक
का आश्रय लेते हैं।

एकान्त म आकर विचार करने पर राजकुमार अभय की बु
का चमत्कार बढ़ गया। सहसा उसे अपने पूर्वभव के साथी का,
इस समय देवपर्याय में सौधर्म देवलोक में था, स्मरण हो आया।
समझ गया था कि समस्या का समाधान दैविक शक्ति से ही स
है अतएव देव की सहायता लेना ही उपयुक्त है।

प्रथम तो स्वर्गवासी मित्र की पहिचान रखना और पता लगा
ही कठिन होता है। किसी प्रकार पता लग भी जाय तो उस
साथ सम्बन्ध स्थापित करना और भी कठिन। मगर अभयकुमार
यह सब करने की विधि निकाल ही ली।

वह अष्टमभक्त की तपश्चर्या अंगीकार करके पोषधशाला
दर्भ के संस्तारक पर आसीन होकर, एकाग्रमना होकर उस देव
पुन पुन स्मरण करने लगा।

आज तार, टेलीफोन और वेतार के तार द्वारा दूरी पर स्थि
व्यक्ति के साथ सम्पर्क स्थापित किया जाता है, किन्तु अभयकुमा
ने मनोयोग के द्वारा देव के साथ सम्बन्ध जोड़ा। भारतवर्ष
प्राचीन काल म, आध्यात्मिक शक्ति का विकास किस सीमा तक हो
चुका था, उसका यह एक साधारण निदर्शन है।

पुन पुन किये गये चिन्तन का प्रभाव देव के मन पर हुआ
तपश्चर्या के अलौकिक तेज से उसका चिन्तन तीव्र प्रभावकारी बन
गया था। कथाकार कहा गया है—

"देवा वि त नमसति जस्स धम्मे सया मणो",

विशुद्ध हृदय से किए गए चिन्तन एव तपश्चरण के प्रभाव से कोटि-कोटि योजन दूर पर रहे हुए देव का आसन भी हिल गया। आसन हिलने पर देव विस्मित होकर इधर-उधर देखने लगा। जब उसे आसन हिलने का कोई कारण दृष्टिगोचर नही हुआ तो उसने अवधि ज्ञान का प्रयोग किया। उससे उसे दूर दूर तक के रूपी पदाथ दिखने लगे। उसे अपना वह सच्चा मित्र (अभयकुमार) दिखाई दिया।

देव ने सोचा—मेरा मित्र मत्यलोक मे है। मत्यलोक यहाँ से बहुत दूर है। वहाँ यहाँ जैसी स्वच्छता और सुन्दरता नही। चमक-दमक नही।

अवधिज्ञान से उसने मानव ससार के अनेक दृश्य और चरित्र देखे। कही मुर्दे जल रहे हैं, कही दफनाये जा रहे हैं, कही पडे सड रहे हैं। नगरो और ग्रामों में सन्तति उत्पन्न होने से बदबू फैल रही है। पशुओं के अस्थिपजरो से निकलती हुई दुगन्ध वातावरण को गन्दा बना रही है। मानव शरीर से निकले मल, मूत्र आदि अशुचि पदाथ अलग ही गन्दगी बिखेर रहे हैं। ऐसे दुग धमय अशुचि वायुमण्डल में असली शरीर से जाना कठिन है।

तब देव अपने आसन से उठा। उसने उत्तर विक्रिया करके अपना दूसरा शरीर बनाने का निश्चय किया। वह ईशान कोण में गया।

उत्तर वैक्रिय शरीर के निर्माण की प्रक्रिया का सक्षेप मे इस सूत्र में दिग्दशन कराया गया है। यह प्रक्रिया वैज्ञानिको के लिए मननीय है। देव ने सोलह प्रकार के रत्नो के सारभूत पुद्गलो को ग्रहण करके वैक्रिय शरीर का निर्माण किया। शरीर-निर्माण की यह प्रक्रिया यदि आज ठीक तरह समझ मे आ सके तो प्रकृति के अनेक गुह्य रहस्य प्रकट हो सकते हैं।

शंका—क्या आधुनिक टनीवीजन और विक्रिया शक्ति में कोई समानता है ? क्या मानव की वैज्ञानिक दौड देव-गति से होड कर सकती है ?

समाधान—आज का मानव विज्ञान के बल पर चाहे जितनी दौड-भाग क्यों न करे, वह देव के समान काय-क्षमता प्राप्त नहीं कर सकता। यदि आज मनुष्य चन्द्रतल पर पहुँच गया तो क्या बड़ी बात है ! चन्द्रमा तो तिर्यक्लोक मे ही है।

जैनशास्त्रों के अनुसार मध्यलोक १८०० योजन का है। इस समतल भूमि से ६०० योजन ऊपर तक और ६०० योजन नीचे तक इसका विस्तार है। ७६० योजन की ऊंचाई पर तारा मण्डल है। तारा मण्डल से दस योजन ऊपर सूर्यविमान है। सूर्यविमान से ८० योजन ऊपर चन्द्रमा है। चन्द्रमा से चार योजन ऊपर नक्षत्र हैं। नक्षत्रों से चार योजन ऊपर ग्रह, उनसे चार योजन ऊपर बुध, उससे तीन योजन ऊपर शुक्र, उससे तीन योजन की ऊंचाई पर मंगल और मंगल से तीन योजन ऊपर शनि का तारा है।

चार हजार कोस का एक योजन माना गया है। शनि विमान की ऊंची ध्वजा पर्यन्त मध्यलोक माना गया है।

वह देवता स्वर्ग से तुरन्त चल पडा। मार्ग मे इतने द्वीप-समुद्र आए कि उनकी संख्या का पार नहीं।

जैनदर्शन के अनुसार मध्यलोक में असंख्य द्वीप और असंख्य सागर हैं। जहाँ हमारा निवास है, वह जम्बूद्वीप कहलाता है। यह द्वीप इन सब के मध्य में है। इसे चारों ओर से घेरे हुए लवण समुद्र है। लवण समुद्र को वेष्टित करके धातकी खण्ड नामक द्वीप स्थित है।[1]

---

1 एक बार पाँच पाण्डवों की रानी द्रौपदी को पद्मोत्तर राजा देवता के द्वारा उठवाकर धातकी खण्ड में लाया था। फिर श्रीकृष्ण जी और ५ पाण्डव जाकर युद्ध में विजय प्राप्त कर द्रौपदी को वापस ले आये। वह यही धातकी खण्ड है।

धातकी खण्ड के चारो ओर कालोदधि समुद्र है। उसके बाद पुष्कर द्वीप है। यो एक द्वीप और एक समुद्र के क्रम से असंख्य द्वीप और समुद्र हैं। सभी द्वीप और समुद्र चूडी की तरह गोलाकार हैं। उनका विस्तार दुगुना दुगुना होता चला गया है। उन सबके अन्त मे *स्वयभूरमण द्वीप और स्वयभूरमण समुद्र* है। इस अंतिम समुद्र से ११२१ योजन की दूरी से अलोक आरम्भ हो जाता है। इन द्वीप-समुद्रो मे से अनेको को पार करके देव राजगृह नगर मे अभय कुमार के निकट आया। (१५)

**मूलपाठ**—तए ण से देवे अतलिक्खपडिवन्ने दसद्धवण्णाइ सखिखिणियाइ पवरवत्थाइ परिहिए एक्को ताव एसो गमो, अण्णो वि गमो—

ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए सीहाए उद्धुयाए जइणीए छेयाए दिव्वाए देवगईए जेणामेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे जेणामेव दाहिणद्धभरहे रायगिहे नयरे पोसहसालाए अभये कुमारे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अतलिक्खपडिवन्ने दसद्धवण्णाइ सखिखिणियाइ पवरवत्थाइ परिहिए अभय कुमार एव वयासी—

अहण्ण देवाणुप्पिया! पुव्वसगइए सोहम्मकप्पवासी देवे महिड्ढिए, जण्ण तुम पोसहसालाए अट्ठमभत्त पगिण्हित्ताण मम मणसि करमाणे चिट्ठसि त एस ण देवाणुप्पिया! अह इह हव्वमागए। सदिसाहि ण देवाणुप्पिया! किं करेमि? किं दलयामि? किं पयच्छामि? किं वा ते हियइच्छिय?

तए ण से अभयकुमारे त पुव्वसगइय देव अतलिक्खपडिवन्न पासित्ता हट्ठतुट्ठे पोसह पारेइ, पारित्ता करयलसपरिग्गहिय अजलि कट्टु एव वयासी—

शका—क्या आधुनिक टेनीवीजन और विक्रिया शक्ति में कोई समानता है ? क्या मानव की वैज्ञानिक दौड़ देव गति से होड़ कर सकती है ?

समाधान—आज का मानव विज्ञान के बल पर चाहे जितनी दौड़-भाग क्या न करे, वह देव के समान कार्य-क्षमता प्राप्त नहीं कर सकता। यदि आज मनुष्य चन्द्रतल पर पहुँच गया तो क्या बड़ी बात है! चन्द्रमा तो तिर्छेलोक मे ही है।

जैनशास्त्रा के अनुसार मध्यलोक १८०० योजन का है। इस समतल भूमि से ६०० योजन ऊपर तक और ६०० योजन नीचे तक इसका विस्तार है। ७६० योजन की ऊचाई पर तारा मण्डल है। तारा मण्डल से दस योजन ऊपर सूर्यविमान है। सूर्यविमान से ८० योजन ऊपर चन्द्रमा है। चन्द्रमा से चार योजन ऊपर नक्षत्र हैं। नक्षत्रों से चार योजन ऊपर ग्रह, उनसे चार योजन ऊपर बुध, उससे तीन योजन ऊपर शुक्र, उससे तीन योजन की ऊचाई पर मगल और मगल से तीन योजन ऊपर शनि का तारा है।

चार हजार कोस का एक योजन माना गया है। शनि विमान की ऊची ध्वजा पर्यन्त मध्यलोक माना गया है।

वह देवता स्वर्ग से तुरन्त चल पड़ा। *मार्ग में इतने द्वीप-समुद्र आए कि उनकी संख्या का पार नहीं।*

जनदर्शन के अनुसार मध्यलोक मे असंख्य द्वीप और असख्य सागर हैं। जहाँ हमारा निवास है, वह जम्बूद्वीप कहलाता है। यह द्वीप इन सब के मध्य म है। इसे चारों ओर से घेरे हुए लवण समुद्र है। लवण समुद्र को वेष्टित करके धातकी खण्ड नामक द्वीप स्थित है।[1]

---

१ एक बार पाँच पाण्डवों की रानी द्रौपदी को पद्मोत्तर राजा देवता के द्वारा उठवाकर धातकी खण्ड म लाया था। फिर श्रीकृष्ण जी और ५ पाण्डव जाकर युद्ध म विजय प्राप्त कर द्रौपदी को वापस ले आए। वह यही धातकी खण्ड है।

धातकी खण्ड के चारो ओर कालोदधि समुद्र है। उसके बाद पुष्कर द्वीप है। यो एक द्वीप और एक समुद्र के क्रम से असख्य द्वीप और समुद्र हैं। सभी द्वीप और समुद्र चूडी की तरह गोलाकार हैं। उनका विस्तार दुगुना दुगुना होता चला गया है। उन सबके अन्त मे स्वयभूरमण द्वीप और स्वयभूरमण समुद्र है। इस अतिम समुद्र से ११२१ योजन की दूरी से अलोक आरम्भ हो जाता है। इन द्वीप-समुद्रो मे से अनेको को पार करके देव राजगृह नगर मे अभय कुमार के निकट आया। (१५)

**मूलपाठ**—तए ए से देवे अतलिक्खपडिवन्ने दसद्धवण्णाइ सखिखिणियाइ पवरवत्थाइ परिहिए एक्को ताव एसो गमो, अण्णो वि गमो—

ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए सीहाए उद्धुयाए जइणीए छेयाए दिव्वाए देवगईए जेणामेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे जेणामेव दाहिणद्धभरहे रायगिहे नयरे पोसहसालाए अभये कुमारे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अतलिक्खपडिवन्ने दसद्धवण्णाइ सखिखिणियाइ पवरवत्थाइ परिहिए अभय कुमार एव वयासी—

अहण्ण देवाणुप्पिया! पुव्वसगइए सोहम्मकप्पवासी देवे महिड्ढिए, जण्ण तुम पोसहसालाए अट्ठमभत्त पगिण्हित्ताग मम मणसि करेमाणे चिट्ठसि त एस ए देवाणुप्पिया! अह इह हव्वमागए। सदिसाहि ए देवाणुप्पिया! कि करेमि? कि दलयामि? कि पयच्छामि? कि वा ते हियइच्छिय?

तए ए से अभयकुमारे त पुव्वसगइय देव अतलिक्खपडिवन्न पासित्ता हट्ठतुट्ठे पोसह पारेइ, पारित्ता करयल-सपरिग्गहिय अजलि कट्टु एव वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवे अकालडोहले पाउब्भूए धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, तहेव पुव्वगमेणं जाव विणिज्जति। तण्णं तुमं देवाणुप्पिया ! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवं अकालडोहलं विणेहि।

तए णं से देवे अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ० अभयकुमारं एवं वयासी—

तुमण्णं देवाणुप्पिया ! सुणिव्वुय-वीसत्थे अच्छाहि, अहण्णं तव चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवं दोहलं विणेमि त्ति कट्टु अभयस्स कुमारस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता उत्तरपुरत्थिमेणं वेभारपव्वएणं वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निस्सरइ। जाव दोच्चंपि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता खिप्पामेव सगज्जियं सविज्जुयं सफुसियं तं पंचवण्णमेहणिणाओवसोहियं दिव्वपाउससिरिं विउव्वेइ, विउव्वित्ता जेणेव अभय कुमारे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभय कुमारं एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए तव पियट्ठयाए सगज्जिया सविज्जुया सफुसिया दिव्वा पाउससिरी विउव्विया। तं विणेउ णं देवाणुप्पिया ! तव चुल्लमाउया धारिणी देवी अयमेयारूवं अकालडोहलं।

तए णं से अभयकुमारे तस्स पुव्वसंगइयस्स देवस्स सोहम्मकप्पवासिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे सयाओ भवणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता

जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० अजलि कट्टु एव वयासी—

एव खलु ताओ ! मम पुव्वसगइएण सोहम्मकप्प-वासिणा देवेण खिप्पामेव सगज्जिया सविज्जुया पचवण्णमेह-णिणाओवसोहिया दिव्वा पाउससिरी विउव्विया, त विणेउ ण मम चुल्लमाउया धारिणी देवी अकालदोहल ।

तए ण से सेणिए राया अभयस्स कुमारस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! रायगिह नयर सिघाडग-गतियचउक्क चच्चर० आसित्तसित्त जाव सुगधवरगधिय गधवट्टिभूय करेह य कारवेह य । करित्ता य कारावित्ता य मम एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह ।

तए ण ते कोडु बियपुरिसा जाव पच्चप्पिणति ।

तए ण से सेणिए राया दोच्च पि कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! हयगयरहजोहपवरकलिय चउरगिणि सेन्न सन्नाहेह, सेयणग च गधहत्थि परिकप्पेह । तेवि तहेव जाव पच्चप्पिणति ।

तए ण से सेणिए राया जेणेव धारिणी देवी तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणि देवि एव वयासी—

एव खलु देवाणुप्पिए ! सगज्जिया जाव पाउससिरी पाउब्भूया, तुम देवाणुप्पिए ! एय अकाल दोहल विणेहि । (१६)

मूलार्थ—तत्पश्चात् दस के आधे अर्थात् पाँच वर्ण के तथा घुंघरू वाले उत्तम वस्त्रों को धारण किया हुआ वह देव आकाश में स्थित होकर अभयकुमार से इस प्रकार बोला—

यह एक प्रकार का गम-पाठ है। इसके स्थान पर दूसरा भी पाठ है। वह इस प्रकार है—

वह देव उत्कृष्ट, त्वरावाली, कायिक चपलता वाली, अति उत्कर्ष के कारण चण्ड, भयानक, दृढ़ता के कारण सिंह जैसी, गर्व की प्रचुरता के कारण उद्धृत, शत्रु को जीतने वाली होने से जय करने वाली, छेक अर्थात् निपुणता वाली एवं दिव्य देवगति से जहाँ जम्बूद्वीप था, भारतवर्ष था और जहाँ दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र था, जहाँ राजगृह नगर था और जहा पौषधशाला में अभयकुमार था, वहीं आया है। आकर आकाश में स्थित होकर पाँच वर्ण के तथा घुंघरू वाले उत्तम वस्त्रों को धारण किए हुए देव अभयकुमार से इस प्रकार कहने लगा—

हे देवानुप्रिय ! मैं तुम्हारे पूर्वभव का मित्र, सौधर्म-कल्पवासी महान् ऋद्धि का धारक देव हूँ। क्योंकि तुम पौषधशाला में अष्टम भक्त तप अंगीकार करके मुझे मन में स्मरण कर रहे हो इस कारण हे देवानुप्रिय ! मैं यहाँ शीघ्र आया हूँ। देवानुप्रिय ! बताओ, तुम्हारा क्या इष्ट कार्य करूँ ? तुम्हें क्या दूँ ? तुम्हारे किसी सम्बन्धी को क्या दूँ ? तुम्हारा मनोवाञ्छित क्या है ?

तब अभयकुमार ने आकाश में स्थित पूर्वभव के मित्र को देखा। देखकर वह हर्षित और सन्तुष्ट हुआ। पौषध का पारण किया अर्थात् उसे पूर्ण किया। फिर दोनों हाथ मस्तक पर जोड़कर उसने इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! मेरी छोटी माता धारिणी देवी को इस प्रकार का अकाल दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताएँ धन्य हैं— यावत् मैं भी अपने दोहद को पूर्ण करूँ, इत्यादि सारा कथन पूर्ववत् यहाँ समझ

लेना चाहिए। तो हे देवानुप्रिय ! तुम मेरी छोटी माता धारिणी देवी के इस प्रकार के दोहद को पूण कर दो।

पश्चात् वह देव अभयकुमार के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट होकर अभयकुमार से बोला—देवानुप्रिय ! तुम निश्चिन्त रहो और विश्वास रक्खो। मैं तुम्हारी लघु माता धारिणी देवी के इस प्रकार के दोहद की पूर्ति कर देता हूँ।

ऐसा कह कर देव अभयकुमार के पास से निकलता है। निकल कर उत्तर-पूव दिशा मे वभारगिरि पर जाकर वैक्रिय समुद्घात करता है। समुद्घात करके सख्यात योजन का दण्ड निकालता है, यावत् दूसरी बार समुद्घात करता है। वह गजना से युक्त, विजली से युक्त और जलविन्दुओ से युक्त पाँच वण वाले मेघो की ध्वनि से शोभित दिव्य वर्षा ऋतु की लक्ष्मी की विक्रिया करता है। विक्रिया करके जहा अभयकुमार था वहाँ आता है। आकर अभयकुमार से इस प्रकार कहता है—

देवानुप्रिय ! इस प्रकार मैंने तुम्हारी प्रीति के लिए गजनायुक्त विद्युत्-युक्त और जलविन्दु युक्त पचवर्णा प्रावृट-लक्ष्मी की विक्रिया की है। अत देवानुप्रिय ! तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी इस प्रकार के इस दोहद की पूर्ति करे।

तत्पश्चात् अभयकुमार उस सौधर्मकल्पवासी पूव-सागतिक देव से यह वात सुनकर, समझकर हृष्ट-तुष्ट होकर अपने भवन से वाहर निकलता है। निकल कर जहाँ श्रेणिक राजा है वहाँ आता है। आकर मस्तक पर दोना हाथ जोडकर इस प्रकार कहता है—

हे तात ! इस प्रकार मेरे पूवभव के मित्र सौधमकल्पवासी देव ने शीघ्र ही गजनायुक्त विद्युत्-युक्त (और जलविन्दुओ से युक्त, पाँच रगो के मेघो की ध्वनि से सुशोभित दिव्य वर्षाऋतु की विक्रिया की है। अत मेरी लघु माता धारिणी देवी अपने अकाल दोहद को पूण करे।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा अभयकुमार से यह बात सुनकर और हृदय मे धारण करके हर्षित और सन्तुष्ट हुआ। यावत् उसने कौटुम्बिक पुरुषो (सेवकों) को बुलवाया और बुलवाकर इस प्रकार कहा - देवानुप्रियो ! शीघ्र ही राजगृह नगर मे शृंगाटक (सिंघाड़े की आकृति के मार्ग), त्रिक (जहाँ तीन मार्ग मिलें), चतुष्क (चौक) और चत्वर आदि को सींचकर यावत् उत्तम सुगंध से सुवासित करके उन्हे गंध की बट्टी के समान करो। ऐसा करके मेरी आज्ञा वापिस सौंपो।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष आज्ञा का पालन करके यावत् उस आज्ञा को वापिस सौंपते हैं, अर्थात् आज्ञा के अनुसार कार्य सम्पन्न कर देने की सूचना देते हैं।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है और बुलाकर इस प्रकार कहता है—देवानुप्रियो ! शीघ्र ही अश्व सेना, गजसेना, रथसेना और पदातिसेना अर्थात् चतुरंगिणी सेना को तैयार कराओ और सेचनक नामक गन्धहस्ती को भी तैयार कराओ।

वे कौटुम्बिक पुरुष भी आज्ञा का पालन करके यावत् आज्ञा वापिस लौटाते हैं।

तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा जहाँ धारिणी देवी थी वहाँ आया। आकर धारिणी देवी से उसने इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये ! इस प्रकार गर्जना-ध्वनि से युक्त यावत् प्रावृट् की सुषमा प्रादुर्भूत हुई है, अतएव हे देवानुप्रिय ! तुम अपने दोहद की पूर्ति करो। (१६)

विशेष बोध—अभयकुमार की सेवा में सौधर्म देवलोक का वैमानिक देव आया। वह अतीव सुन्दर और बारीक वस्त्र पहने था।

प्रश्न हो सकता है कि देव ने जिन वस्त्रों को धारण किया था वे देवदूष्य सादरत थे या आगारयन ? वह उन्हें साथ लाया था, या उसने यहीं तैयार किए थे ?

देवों का मर्त्यलोक में आगमन का उल्लेख आगमों में अनेक स्थलों पर मिलता है। भगवान् के समवसरण में सभी प्रकार के देव

देवियो के समूह आया करते थे। इसके अतिरिक्त भी इन्द्र आदि भगवान् के विभिन्न कल्याणको के अवसर पर आते हैं। लौकान्तिक देव तीर्थङ्कर को दीक्षा के अवसर सबोधित करते हैं। ईशानेन्द्र का राजगृह मे आने का उल्लेख है।

प्राय सभी देवो के वस्त्रो के वणन मे अरयवरवत्थधरे' पद का प्रयोग देखा जाता है, जिसका अथ है—रजोहीन एव आकाश के समान स्वच्छ वस्त्रो को धारण करने वाले।

किन्तु इन वस्त्रो के निर्माण की चर्चा किसी आगम में नही मिलती। प्रतीत होता है कि वैक्रिय लब्धि के बल से जैसे शरीर का नव निर्माण किया जाता है वैसे ही देव वस्त्रो का भी विक्रिया से ही निर्माण कर लेते है। देवलोक मे न कपडाबाजार है, न मिल्स् हैं। विक्रियालब्धि ही उनका प्रमुख आधार है। उसीसे उनके आभूषणो की भी पूर्ति होती है, यही मानना युक्तिसगत है।

"देवा वि त नमसंति, जस्स धम्मे सया मणो।"

जिस मानव के निमल मानस मन्दिर मे निरतर धर्म की ज्योति जगमगाती रहती है, देव, दानव और मानव, सभी उसके चरणो मे मस्तक झुकाते हैं।

अभयकुमार का बौद्धिक वैभव असाधारण था। फिर भी वह बुद्धि को ही नही, धम को भी भारी महत्त्व देता है। जिस निगूढ समस्या का समाधान बुद्धि के द्वारा सभव नही हो सका उसके समाधान के लिए राजकुमार अभय ने धम का आश्रय ग्रहण किया।

बुद्धि की अपेक्षा नीति और धम की भूमिका पर आनन्द का पौधा अधिक पनपता है।

देव सयम-धम का आराधन नही करते। देवगति मे चारित्रधर्म के लिए अवकाश नही है। मगर देवो को धम और धर्माराधक अवश्य प्रिय हैं। पूवभव का परिचित होने पर भी देव हर बार मिलने नही आता है, किन्तु धर्माराधना से सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर

वह आने को तैयार होता है। अभयकुमार से देव ने कहा—तुमने धर्माराधन करके मुझे स्मरण किया है, अतएव मैं आया हूँ। अर्थात् पाप करते बुलाने पर मैं न आता।

चक्रवर्ती भी तेला की तपश्चर्या करके देवो का आह्वान करते हैं।

जो लोग यज्ञ होम या पशुबलि करके देवो का आह्वान करते हैं वे मूढ हैं। ऐसा करने से कोई उच्च श्रेणी के एव सम्यग्दृष्टि देव सन्तुष्ट या प्रसन्न नही हो सकते।

देवदर्शन होने पर अभयकुमार हर्षित हुआ और सन्तुष्ट भी हुआ, मगर उसने हाथ नही जोडे। उसने पहले पौषधव्रत का पारण किया अर्थात् उसको समाप्त किया। इसका मूल कारण यह है कि व्रती साधक व्रतावस्था मे अव्रती को वन्दन-नमस्कार नही करता।

यदि बुद्धि रूपी छलनी मे छानकर सोचा जाय तो प्रतीत होगा कि अभयकुमार व्रत की अवस्था में जो हर्षित और सन्तुष्ट हुआ, उसका कारण भी यह था कि उसने दो करण और तीन योग से प्रत्याख्यान किया था। यदि तीन करण और तीन योग से मुनि के समान प्रत्याख्यान किया होता तो वह देवदर्शन होने पर भी समभाव ही धारण करता हुए भी प्रकट न करता। वस्तुत समभाव ही सच्ची साधना की कसौटी है।

दोहदपूर्ति के लिए जैसा अभयकुमार ने कहा वैसा ही देव ने कर दिया। उसने धारिणी की इच्छा के अनुसार विक्रिया द्वारा दिव्य प्रावृट्-श्री की विकुर्वणा कर दी। देव ने अभयकुमार को इसकी सूचना दी और अभयकुमार ने अपने पिता श्रेणिक को यही सूचना दे दी। श्रेणिक ने महारानी धारिणी को सूचित किया। यह है पारस्परिक प्रेम का सहज प्रमाण।

परिवार को स्वर्ग जैसा बनाना अथवा इस भूतल पर स्वर्ग को ले आना पारिवारिक जनो के सद्विचार पर अवलम्बित है। परिवार

के सदस्य के दु ख को दूर करने का प्रयत्न करना और उसमे सहयोगी बनना, पारिवारिक सुख शान्ति एव प्रसन्नता के लिए अत्यावश्यक है।

अभयकुमार का उदाहरण सामने है। इसी प्रकार का एक उदाहरण श्रीकृष्ण का जैनागमों मे मिलता है। उन्होंने भी तेला की तपस्या करके हरिणगमेषी देव को अपनी माता की अभिलाषा की पूर्त्ति के लिए आहूत किया था।

अभयकुमार के उद्यम से श्रेणिक और धारिणी की खिन्नता दूर हो गई। परिवार मे शान्ति का सचार हुआ। (१६)

**मूलपाठ**—तए ण सा धारिणो देवो सेणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणो हट्ठतुट्ठा जेणामेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता मज्जणघर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता अतो अतेउरसि ण्हाया कयबलिकम्मा, कयकोउयमगलपायच्छित्ता, किं ते वरपायपत्तणेउर जाव आगासफलिहसमप्पभ असुय नियत्था। सेयणग गधहत्थि दुरूढा समाणी अमयमहियफेणपु जसण्णिगासाहिं सेयचामरवालवीयणीहिं वीइज्जमाणी वीइज्जमाणी सपत्थिया।

तए ण से सेणिए राया ण्हाए कयबलिकम्मे जाव ससिसरीए हत्थिखधवरगए सकोरटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण चउचामराहिं वीइज्जमाणे धारिणी देवी पिट्ठओ अणुगच्छइ।

तए ण सा धारिणी देवी सेणिएण रण्णा हत्थिखधवरगएण पिट्ठतो पिट्ठतो समणुगम्ममाणमग्गा हय-गय-रह-जोहकलियाए चाउरगिणीए सेणाए सद्धि सपरिवुडा (ए) महया भडचडगरवदपरिखित्ता सव्विड्ढीए सव्वजुईए जाव दु दुभिनिग्घोसनादितरवेण रायगिहे नयरे सिघाडग-तिग-

चउक्कचच्चर जाव महापहेसु नागरजणेण अभिनन्दिज्ज-
माणा जेणामेव वेभारगिरिपव्वए तेणामेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता वेभारगिरिकडगतडपायमूले आरामेसु य
उज्जाणेसु य काणणेसु य वणेसु य वणसडेसु य रुक्खेसु य
गुच्छेमु य गुम्मेसु य लयासु य वल्लीसु य कन्दरासु य दरीसु
य चु ढीसु य दहेसु य कच्छेसु य नदीसु य संगमेसु य
विवरएसु य अच्छमाणी य पेच्छमाणी य मज्जमाणी य
पत्ताणि य पुप्फाणि य फलाणि य पल्लवाणि य गिण्हमाणी
य माणे-माणी य अग्घमाणी य परिभु जमाणी य परिभाए-
माणी य वेभारगिरिपायमूले दोहल विणेमाणी सव्वओ
समता आहिडति ।

तए ण धारिणी देवी विणीतदोहला सपुन्नदोहला
सपन्नदोहला जाया यावि होत्था ।

तए ण सा धारिणी देवी सेयणगगधहत्थि दुरूढा समाणी
सेणिएण हत्थिखधवरगएण पिट्ठओ पिट्ठओ समणुगम्ममाण-
मग्गा हयगय जाव रहेण जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवा-
गच्छइ, उवागच्छित्ता रायगिह नगर मज्झ मज्झेण जेणामेव
सए भवणे तेणामेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता विउलाइ
माणुस्सगाइ भोगभोगाइ जाव विहरति । (१७)

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुई और जहाँ स्नानगृह था, उसी ओर आई। आकर स्नानगृह मे प्रवेश किया। प्रवेश करके अत पुर के अन्दर स्नान किया। बलिकर्म किया। कौतुक मगल और प्रायश्चित्त किया। फिर क्या किया ? वह कहते हैं—

उसने पैरो मे उत्तम नूपुर धारण किए, यावत् आकाश तथा

स्फटिक मणि के समान स्वच्छ वस्त्रो को धारण किया। वस्त्र धारण करके सेचनक नामक गधहस्ती पर आरूढ होकर अमृत-मन्थन से उत्पन्न हुए फेन के समूह के समान श्वेत चामर के वालो से वीजाती हुई वह रवाना हुई।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने धारिणी देवी का अनुगमन किया। वह स्नान किया हुआ था। उसने बलिकर्म किया था यावत् वह भी सुसज्जित होकर श्रेष्ठ गधहस्ती के स्कध पर आरूढ होकर कोरट वृक्ष के फूलो की माला वाले छत्र को धारण किए था। वह चार चामरो से वीजा जा रहा था।

श्रेष्ठ हाथी के स्कध पर बैठे हुए राजा श्रेणिक धारिणी देवी के पीछे-पीछे चले। धारिणी देवी अश्व, हाथी, रथ और योद्धाओ की चतुरगिनी सेना से परिवृत थी। उसके चारो ओर महान् सुभटों का समूह घिरा हुआ था।

इस प्रकार सम्पूर्ण समृद्धि के साथ, सम्पूर्ण द्युति के साथ यावत् दुदुभि के निर्घोष के साथ राजगृह नगर के शृगाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वर आदि मे होकर यावत् राजमार्ग मे होकर निकली।

नागरिक जनो ने उसका पुन पुन अभिनन्दन किया।

इसके पश्चात् वह जहाँ वैभारगिरि पर्वत था वहाँ पहुची। पहुँच कर वैभारगिरि के कटक तट मे और तलहटी मे, दम्पतियो के क्रीडास्थान आरामा मे, पुष्प फलो से सम्पन्न उद्यानो मे, सामान्य वृक्षो से युक्त काननो मे, नगर से दूरवर्ती वनो मे, एक जाति के वृक्षो के समूह वाले वनखण्डो मे, वृक्षो मे, वृताकी आदि के गुच्छो मे, वासो की झाडी आदि गुल्मो मे, आम्रादि लताओ मे, नागरवेल आदि की वल्लिया मे, गुफाओ मे, दरी (शृगालादि के रहने के गड्ढा मे) चुढी (विना खोदे आप बनी हुई जल की तलैया) मे, ह्रदों (तालावो) में, अल्प जल वाले कच्छों में, नदियो मे, नदियों के सगमस्थलो मे और अन्य जलाशयो मे अर्थात इन सब के आस पास

खडी होती हुई, वहाँ के दृश्यो को देखती हुई, स्नान करती हुई, पत्रो पुष्पो फलो और कौंपला का ग्रहण करती हुई, स्पश करके उनका मान करती हुई, पुष्पादि को सू घती हुई, फल आदि को भक्षण करती हुई एव दूसरो को वितरण करती हुई, वभारगिरि के समीप की भूमि पर अपना दोहद पूण करती हुई चारो ओर परिभ्रमण करने लगी।

इस प्रकार धारिणी देवी ने दोहद को दूर किया, दोहद को पूर्ण किया और दोहद को सम्पन्न किया।

तत्पश्चात सेचनक नामक गन्धहस्ती पर आरूढ धारिणी देवी राजगह नगर की ओर आई। श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर बैठे हुए राजा श्रेणिक उसके पीछे पीछे चल रहे थे। वह अश्वसेना एव हाथियो आदि की सेना से घिरी थी। इस प्रकार वह राजगह नगर के बीचोबीच हो कर जहाँ उसका अपना भवन है, वहाँ आती है। वहा आकर मनुष्य सबधी विपुल भोगती भोग हुई विचरती है। (१७)

**विशेष बोध**—धारिणी देवी बडी तैयारी के साथ अपने दोहद को सम्पन्न करने चली। उसके पीछे-पीछे मगधसम्राट श्रेणिक चले। यह वणन नारीसम्मान का एक सजीव उदाहरण प्रस्तुत करता है। प्राचीनकाल मे नारी का स्थान समाज में तनिक भी कम महत्त्व-पूण नही था। उसे अर्धांगिनी का पद प्राप्त था। कवि की भाषा मे जहाँ नारी का सम्मान होता है वहाँ देवता—दिव्य पुरुष क्रीडा करते हैं—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते
रमन्ते तत्र देवता।

श्रेणिक एक करोड और अस्सी लाख ग्रामो वाले मगध देश का अधिपति था। वह राजनीति में जैसे पारगत था वस ही धम

नीति मे भी था। वह पत्नी की छह[1] विशेषताओ से परिचित था। उसने धर्मानुकूला और क्षमाधरित्री समझकर पत्नी को आगे रक्खा।

धारिणी देवी ने अनेक प्रकार के भूप्रदेशो मे सर की। वह जिन वनप्रदेशो मे क्रीडा करने गई होगी, वे कितने सुन्दर एव नैसर्गिक सुषमा से मडित रहे होगे, यह कल्पना करना आसान नही। वास्तव में वहाँ का प्रकृतिसौन्दय असाधारण रहा होगा। देवनिर्मित उस सौन्दय का क्या ठिकाना!

रानी के द्वारा पुष्प सूघने, फल खाने, स्नान करने आदि से परिज्ञात होता है कि इस विषय में रानी की अत्यधिक आसक्ति रही होगी। प्रश्न हो सकता है कि यह आसक्ति स्वयं रानी की होगी अथवा गर्भ में आए जीव की ? दोहद का अथ है—दो हृदय। एक माता का और दूसरा गभस्थ जीव (भ्रूण) का। लगता है, इन दो में से भ्रूण की भावना ही अधिक वलवती होनी चाहिए। प्रकृति की गोद में, वनो में विचरण करने वाले हाथी का जीव धारिणी के गभ में आया था, अत वर्षाऋतु के प्राकृतिक दृश्य को देखने का दोहद उत्पन्न होना, उल्लिखित निष्कप का पोषक है। हाथी को पानी वाले वनस्थल में जाना सहज प्रिय होता है, इसी कारण यह दोहद उत्पन्न हुआ होगा। पूण सत्य तो पूण ज्ञानी ही जान सकते हैं। (१७)

मूलपाठ—तए ण से अभयकुमारे जेणामेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुव्वसगतिक देव सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिवि-सज्जेति।

---

१ कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी,
भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री,
भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुलभा॥ —नीतिशतक

तए ण से देवे सगज्जिय पचवण्णमेहोवसोहिय दिव्व पाउससिरिं पडिसाहरति, पडिसाहरित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। (१६)

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह अभयकुमार जहाँ पोषघशाला है वहाँ पहुँचता है। पहुँचकर पूर्वपरिचित देव का सत्कार-सम्मान करता है। सत्कार एव सम्मान करके उसे विदा करता है।

अभयकुमार द्वारा विदा किया हुआ वह देव गर्जना मे युक्त पचरगी मेघो से सुशोभित उस दिव्य प्रावृट-लक्ष्मी का प्रतिसहार करता है अर्थात् उसे समेट लेता है। प्रतिसहरण करके जिस दिशा से प्रकट हुआ था, उसी दिशा मे अर्थात् अपने स्थान पर चला गया। (१८)

विशेष बोध—अभयकुमार ने देव का सत्कार सम्मान करके कृतज्ञता प्रकट की और जिस उद्देश्य से उसे बुलाया था, उसकी पूर्ति होने पर उसे विदा कर दिया। वह देव के मिलन के अवसर का अन्य लाभ भी चाह सकता था। अन्य याचना भी कर सकता था। मगर राजकुमार लोभी नही था। उसने याचना करना उचित नही समझा।

हम देखते हैं कि एक रोगी को देखने के लिए डाक्टर किसी के घर आता है तो आस-पास के रोगी उसको घेर लेते हैं। उस चौथे आरे मे ऐसा नहीं था। उस समय मे प्रामाणिकता की भूमिका बहुत ठोस थी। इसी कारण देवों का आगमन भी इतना दुष्कर नही था। इस पचम काल में देवता मर्त्यलोक की तरफ आँख उठाकर भी नही देखते। कदाचित कोई देव आ जाय तो लोभी लोग उसका पिण्ड न छोडे और सैकडों प्रकार की अनुचित मागें उसके सामने पेश कर दें। वे माग भी एक दूसरी से इतनी विरोधी होगी कि देवता भी सोच विचार मे पड जाएगा कि इन सब की पूर्ति कैसे की जाए?

इस कलिकाल मे तो धम को ही देवता समझना चाहिए। वह इह-परलोक दोनो मे ही जनजीवन मे सुखशान्ति की सुधामयी मेधवर्षा करता है। (१८)

मूलपाठ—तए ण सा धारिणी देवी तसि अकाल-दोहलसि विणोयसि सम्माणियदोहला तस्स गब्भस्स अणुक-पणट्ठाए जय चिट्ठति, जय आसयति, जय सुवति, आहार पि य आहारेमाणी णाइतित्त, णातिकडुय, णातिकसाय, णातिअबिल, णातिमहुर, ज तस्स गब्भस्स हिय मिय पत्थय देसे य काले य आहार आहारेमाणी नाइचित, णाइ-सोग, णाइदेण्ण, णाइमोह, णाइभय, णाइपरित्तास, ववगयचिता-सोग-मोह-भय-परित्तासा, उउभयमाणसुहेहि भोयण च्छायण-गध-मल्ला-लकारेहि गब्भ सुहसुहेण परि-वहति। (१९)

मूलाथ—तत्पश्चात् धारिणी देवी ने अपने उस अकाल-दोहद के पूण होने पर दोहद को सम्मानित किया। वह उस गभ की अनुकम्पा के लिए (गभ को वाधा न पहुँचे इस प्रकार) यतना अर्थात् सावधानी से खडी होती, यतना से बैठती, उठती और यतना से शयन करती।

आहार करती हुई ऐसा आहार करती जो अधिक तीखा न हो, अधिक कटुक न हो, अधिक कसैला न हो, अधिक खट्टा न हो और अधिक मीठा भी न हो। देश और काल के अनुसार जो उस गर्भ के लिए हितकारक (वृद्धि एव आयुष्य आदि का कारण) हो, मित (परिमित एव इन्द्रियो को अनुकूल) हो, पथ्य (आरोग्य जनक) हो।

वह अति चिन्ता न करती, अति शोक न करती, अति दैन्य न करती, अति मोह न करती, अति भय न करती और अति त्रास नही करती। अर्थात् चिन्ता, शोक, मोह, भय और त्रास से रहित होकर

सब ऋतुओ मे सुखप्रद भोजन, वस्त्र, माला और अलकार आदि से सुखपूर्वक उस गर्भ का वहन करती है। (१६)

**विशेष बोध**—दोहद की पूर्ति करने को दोहद का सम्मान करना माना गया है। एक प्रकार से यह गर्भस्थ जीव का उपकार करता है।

जगत् मे उपकार करने वालो की अपेक्षा उपकार को उपकार के रूप मे स्वीकार करने वाले कम मिलेंगे और उपकार के बदले प्रत्युपकार करने वाले तो और भी कम मिलेंगे। किन्तु जो उपकार करके उसके बदले कृतज्ञता की अपेक्षा नही रखता और प्रत्युपकार की कामना नही करता अर्थात जो निराकाक्ष भाव से, कर्त्तव्य समझ कर पर का उपकार करता है, वही उत्तम पुरुष है।

देवी धारिणी का दोहद अकालिक अर्थात् मौसिम के विरुद्ध होने के कारण ऐसा था कि उसकी पूर्ति होना अत्यन्त कठिन था। फिर भी पुण्य जिसके पल्ले होता है, उसकी सभी कामनाएँ सफल हो जाती हैं। धारिणीदेवी पुण्यशालिनी महिला थी, अतएव उसका मनोरथ पूर्ण हो सका।

रानी धारिणी नारीसमाज मे तप और त्याग की मूर्ति है। शक्ति और शोभा बढ़ाने वाली है।

जैसे पनिहारी अपने मस्तक पर रक्खे जल-घट का ध्यान रखती है और मुनिजन अपनी साधना का ध्यान रखते हैं, उसी प्रकार विवेकशील माताएँ नौ मास पर्यन्त गर्भ का ध्यान रखती हैं। वे रात-दिन यह सोचती हैं कि मैं अपने अगजात को सुखी बनाए रक्खूँ और किसी प्रकार का कष्ट न होने दूँ।

प्रकृति का यह विधान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि गर्भस्थित शिशु माता के आहार मे से अपने लिए आहार ग्रहण करता है किन्तु मल मूत्र नहीं करता है। भगवती सूत्र में कहा गया है कि गर्भस्थ जीव

आहार तो करता है परन्तु निहार नही करता। वह उतना ही आहार लेता है जितना पचा सके। वह भी रस रूप मे लेता है जिससे मल-मूत्र आदि खलभाग बनता ही नही है।

माता के खान पान का गर्भ पर प्रभाव पडता है। क्योकि माता द्वारा किये गये आहार का रस ही गर्भ का जीव ग्रहण करता है, अतएव माता को अधिक तीखा, कटुक, कसैला, खटटा, मीठा आहार नही करना चाहिए। धारिणीदेवी ने इस तथ्य को समझा था और हित, मित एव पथ्य आहार ही किया था।

भगवती सूत्र मे यह उल्लेख भी मिलता है कि जब माता सोती है तब गर्भ का जीव भी सोता है और जब माता जागती है तब गर्भ का जीव भी जागता है। अतएव माता को निद्रा एव जागरण के विषय मे भी सावधान रहना पडता है।

अहो आश्चर्य ! उस दुनिया को आज हम भूल गए हैं। जब हम विचार के पखो से उस दुनिया मे (गर्भ की स्थिति) मे पहुँचते हैं तो विस्मय-विमुग्ध हो जाते हैं और इस दुनिया को भूल जाते हैं।

माता का सन्तति पर कितना उपकार है ! इसीलिए शास्त्र भी उन्हें तीर्थरूप कहते हैं। वास्तव मे माता के उपकार का बदला चुकाना सरल नही, अत्यन्त कठिन है। (१६)

**मूलपाठ—तए ण सा धारिणी देवी नवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण अद्धट्ठमाणराइंदियाण विइक्कताण अद्ध-रत्तकालसमयसि सुकुमालपाणिपाय जाव सव्वगसुदरग दारय पयाया।**

**तए ण ताओ अगपडियारियाओ धारिणि देवि नवण्ह मासाण जाव दारय पयाय पासति, पासित्ता सिग्घ तुरिय चवल वेइय जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छन्ति उवा-गच्छित्ता सेणिय राय जएण विजएण वद्धावेंति, वद्धावेत्ता**

करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी—

एव खलु देवाणुप्पिया ! धारिणी देवी नवण्ह मासाण जाव दारय पयाया। त ण अम्हे देवाणुप्पियाण पिय निवेएमो। पिय भे भवउ।

तए ण से सेणिए राया तासि अगपडियारियाण अतिए एवमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० ताओ अगपडियारियाओ महुरेहि वयणेहिं विपुलेण य पुप्फ-गध-मल्ला-लकारेण सक्कारेति सम्माणेति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता मत्थय-धोयाओ करेति, पुत्ताणुपुत्तिय वित्ति कप्पेति, कप्पित्ता पडिविसज्जेति।

तए ण से सेणिए राया कोडु बियपुरिसे सद्दावेति, सद्दावित्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! रायगिह नयर आसित्त जाव परिगीय करेह, करित्ता चारगपरिसोहण करेह, करित्ता माणुप्पमाणवद्धण करेह, एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह, जाव पच्चप्पिणति।

तए ण से सेणिए राया अट्ठारस सेणीप्पसेणीओ सद्दावेति, सद्दावित्ता एव वयासी—

गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! रायगिहे नयरे अब्भि-तरबाहिरिए उस्सुक्क उक्कर अभडप्पवेस अदडिमकुदडिम अधरिम अधारणिज्ज अणुद्धयमुइग अमिलायमल्लदाम गणियावरणाडइज्जकलिय अणेगतालायराणुचरित पमुइय-पक्कीलियाभिराम जहारिह ठिइवडिय दसदिवसिय करेह। करित्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह।

ते वि करेंति, करित्ता तहेव पच्चप्पिणति।

तए ण से सणिए राया बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने, सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य जाएहि य दाएहि य भागेहि य दलयमाणे-दलयमाणे पडिच्छियमाणे-पडिच्छिय-माणे एव च ण विहरति ।

तए ण तस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जातकम्म करेत्ति, करित्ता बितियदिवसे जागरिय करेत्ति, करित्ता ततियदिवसे चन्दसूरदसणिय करेत्ति, करित्ता एवामेव निव्वत्ते असुइजातकम्मकरणे सपत्ते बारसाहदिवसे विपुल असण पाण खाइम साइम उवक्खडावेत्ति, उवक्खडावित्ता मित्त-णाइ-णियग-सयण-सबधि-परिजण बल च बहवे गणणायग-दडणायग जाव आमतेति ।

तओ पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय० जाव सव्वालकारविभूसिया महइमहालयसि भोयणमडवसि त विपुल असण पाण खाइम साइम मित्तणाइ० गणणायग० जाव सद्धि आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभु जेमाणा एव च ण विहरइ ।

जिमियभुत्तुत्तरागया वि य ण समाणा आयता चोक्खा परमसुइभूया त मित्तणाइनियगसयणसबधिपरिजण० गणनायग० विपुलेण पुप्फगधमल्लालकारेण सक्कारेंति सम्माणेंति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता एव वयासी—

जम्हा ण अम्ह इमस्स दारगस्स गब्भत्थस्स चेव समाणस्स अकालमेहलेसु दोहले पाउब्भूए, त होउ ण अम्ह दारए मेहे नामेण मेहकुमारे ।

तस्स दारगस्स अयमेयारूवे गोण्ण गुणनिप्फण्ण नामधेज्ज करेति । (२०)

मूलार्थ तत्पश्चात् धारिणीदेवी ने नौ मास परिपूर्ण हो जाने पर और साढे सात दिवस बीत जाने पर अर्धरात्रि के समय अत्यन्त कोमल हाथो-पैरो वाले यावत् सर्वाङ्गसुन्दर शिशु का प्रसव किया।

तब दासिया धारिणीदेवी को नौ माम पूर्ण हुए यावत् पुत्र उत्पन्न हुआ देखती हैं। देखकर हर्ष के कारण शीघ्र, मन से त्वरा वाली काय से चपलतायुक्त एव वेगयुक्त गति से वे दासिया राजा श्रेणिक के पास पहुचती ह। पहुँच कर राजा श्रेणिक को 'जय हो' 'विजय हो' शब्द कहकर बधाई देती हैं। बधाकर दोनों हाथ जोड कर एव मस्तक पर आवर्त्त न करके, अजलि करके इस प्रकार कहती हैं—

देवानुप्रिय ! धारिणी देवी ने नौ मास पूर्ण होने पर यावत् पुत्र का प्रसव किया है। सो हम (आप) देवानुप्रिय को प्रिय (समाचार) निवेदन करती हैं। आपका प्रिय हो।

तत्पश्चात् राजा श्रेणिक उन दासियो से यह अर्थ सुनकर और हृदय मे धारण करके हृष्ट-तुष्ट हुआ। उसने उन दासिया का मधुर वचनो से तथा विपुल पुष्प, गन्ध, माला और अलकारो से सत्कार सम्मान किया। सत्कार-सम्मान करके उन्हे मस्तक धौत किया अर्थात् दासीपन से मुक्त कर दिया। उन्हें ऐसी आजीविका दी, जो उनके पुत्र पौत्र तक चलती रहे। इस प्रकार विपुल आजीविका देकर उन्हें विदा किया।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाता है और बुलवा कर इस प्रकार आदेश देता है—

देवानुप्रियो ! शीघ्र ही राजगृह नगर मे सुगधित जल छिडको यावत् सर्वत्र (मगल) गान कराओ। कैदियों को कारागार से मुक्त करो। तोल-नाप की वृद्धि करो। यह सब करके आज्ञा वापिस

लौटाओ। यावत् वे कौटुम्बिक पुरुष राजाज्ञा के अनुसार काय करके आज्ञा वापिस सौंपते हैं।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा कुंभकार आदि जातिरूप अठारह श्रेणियो को और उनके उपविभागरूप अठारह प्रश्रेणियो को बुलवाता है। बुलवा कर उनसे इस प्रकार कहता है—देवानुप्रियो ! तुम जाओ और राजगृह नगर के भीतर और बाहर दस दिन की स्थिति-पतिका (कुलपरम्परा के अनुसार होने वाली पुत्रजन्मोत्सव की विशिष्ट रीति) कराओ। वह इस प्रकार—दस दिनो तक शुल्क (चुंगी) लेना बन्द किया जाय। कुटुम्बियो-किसानो आदि के घर मे वेगार लेने आदि के लिए राजपुरुषो का प्रवेश रोक दिया जाय। दण्ड (अपराध के अनुसार लिया जाने वाला द्रव्य-जुर्माना) एव कुदड (अल्प दण्ड—वडा अपराध करने पर भी लिया जाने वाला थोडा द्रव्य) न लिया जाय। किसी को ऋणी न रहने दिया जाय अर्थात् राजा की ओर से सवका ऋण चुका दिया जाय। किसी देनदार को पकडा न जाय। ऐसी घोषणा कर दो। तथा सवत्र मृदग आदि वाद्य बजवाओ। चारो ओर विकसित ताजा फूलो की मालाएं लटकाओ। गणिकाएँ जिनमे प्रमुख हैं, ऐसे पात्रो से नाटक कर-वाओ। अनेक तालाचरो (प्रेक्षाकारियो) से नाटक करवाओ। ऐसा करो कि लोग हर्षित होकर क्रीडा करें।

इस प्रकार यथायोग्य दस दिन की स्थितिपतिका करो, कराओ और मेरी यह आज्ञा मुझे वापिस लौटाओ।

राजा श्रेणिक का यह आदेश सुनकर वे इसी प्रकार करते हैं और राजाज्ञा वापिस लौटाते हैं।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा बाहर की उपस्थान शाला मे पूर्व की की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हुआ और सैकडो, हजारो और लाखो के द्रव्य से याग (पूजन) किया, और दान दिया।

अपनी आय में से अमुक भाग दिया और प्राप्त होने वाले द्रव्य को ग्रहण करता हुआ विचरने लगा।

तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने प्रथम दिन जातकर्म (नाल का काटना आदि) किया। दूसरे दिन जागरिका (रात्रि जागरणा) की। तीसरे दिन चन्द्र-सूर्य का दर्शन कराया। इस प्रकार अशुचि जातकर्म की क्रिया सम्पन्न हुई। फिर बारहवां दिन आया तो विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन तैयार करवाया। तैयार करवा कर मित्रो, बन्धु आदि ज्ञातिजनों पुत्र आदि निजक जनो, काका आदि स्वजनो, श्वसुर आदि सबधी जनो, दास आदि परिजनो, सेना, बहुत से गणनायक तथा दण्डनायक आदि को आमन्त्रित किया।

तत्पश्चात् स्नान करके, बलिकर्म करके, मषि तिलक आदि कौतुक करके यावत् समस्त अलकारो से विभूषित हुए। फिर विशाल भोजनमडप मे उस अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन का मित्र ज्ञाति आदि तथा गणनायक आदि के साथ आस्वादन किया, विशेष रूप से आस्वादन किया परस्पर विभाजन किया और परिभोग किया।

इस प्रकार भोजन करने के पश्चात् शुद्ध जल से आचमन किया। हाथ-मुख धोकर स्वच्छ हुए। परम शुचि हुए। फिर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सबधी, परिजन आदि का तथा गणनायक आदि का विपुल वस्त्र, गध, माला और अलकार आदि से सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार-सम्मान करके इस प्रकार कहा—

क्योकि हमारा यह पुत्र जब गर्भ मे स्थित था तब इस (इसकी माता को) अकालिक मेघ सबधी दोहद हुआ था, अतएव हमारे इस पुत्र का नाम मेघकुमार होना चाहिए।

इस प्रकार माता पिता ने इस प्रकार का गौण अर्थात् गुणनिष्पन्न नाम रक्खा। (२०)

विशेष बोध राजा श्रेणिक के पास पहुँच कर दासियो ने उसे बधाई दी। पुत्र जन्म की बधाई सुनकर राजा को अत्यत प्रमोद हुआ। उसने दासियो को इतना पारितोषिक दिया कि खच करते-करते सात पीढियो तक भी समाप्त न हो। उन्हे दासीपन के बन्धन से मुक्त कर दिया। अब वे दासी नही रही।

एक पुत्र के जन्म की खुशी मे इतना धन इनाम मे दे दिया तो अन्य प्रसगो पर राजा कितना दान देता होगा, यह कल्पना करना कठिन नही। उस काल मे श्रीमन्तो मे ऐसी उदारता थी। इसी कारण उस समय वगसघष नही था, सधन-निधन का विवाद नही था। विना कानून के स्वेच्छा-स्वीकृत समाजवाद था। यही कारण है कि तत्कालीन समाज मे न समाजवाद के नारे लगाए जाते थे और न साम्यवाद के।

ऐसे उन्नत समाज मे दास-दासीप्रथा किस प्रकार सहन कर ली जाती थी, यह आश्चय का विषय है।

जन्मोत्सव के सिलसिले मे अठारह श्रेणियो और उपश्रेणियो को बुलवाया गया। मूल पाठ मे 'सेणिप्पसेणिओ' शब्द है जिसका अथ है श्रेणिया और प्रश्रेणिया।[1]

दस दिनो तक जन्मोत्सव मनाने की घोषणा की गई। यह लौकिक परम्परा के अनुसार सूतक का समय है। आज भी दस दिन का ही सूतक मनाया जाता है। सूतक के दिनो मे सन्त-सतिया भी उस घर से आहार पानी नही ग्रहण करते। दसवा दिन दसोटन कहलाता है।

---

1 पण्डित शोभाचन्द्र जी ने कुम्भार आदि १८ जातियो को बुलवाया, ऐसा अथ किया है। उस समय आज की तरह जातिया नही थी पर जातिशब्द समूह का वाचक है अतएव १८ प्रकार के व्यवसायो का समूह ऐसा जाति का अथ हो सकता है। प्रश्रेणियाँ, श्रेणियो के अन्तगत उपसमूह हैं।

मेघकुमार के जन्म की खुशी मे राजा ने दस दिन चुंगी वसूल करना बन्द करा दिया। अन्यान्य सुविधाएँ भी प्रजा को प्रदान की। ऋण-वसूली बद कर दी। आज भी इस प्रकार के अनेक काय किये जाते हैं।

जब तीथकर का जन्म होता है तो नरक के जीवो को भी क्षणिक शाति मिलती है। जन्मोत्सव मनाने के लिए ६४ इन्द्र आते हैं। यह सब पुण्यराशि का ही प्रशस्त परिणाम है।

मेघकुमार तीथकर के समान तो नही, किंतु प्रबल पुण्य अर्जित करके आया था। इसी कारण उसके जन्म के उपलक्ष मे अनेक प्राणियो को शान्ति प्राप्त हुई।

पुण्यहीन जीव जब किसी दरिद्र घर मे जन्म लेता है तो माता को गुड का पानी भी दुलभ होता है। कदाचित् उस घर मे जन्म-सूचक थाली बजाने वाला भी नही मिलता। इस प्रकार पुण्य और पाप का परिणाम प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है।

तीसरे दिन सूय-चन्द्र के दशन कराये जाते हैं। परभव से आए जीव को दुनिया का सबसे बडा प्रकाशपुज दिखाकर यह आशा की जाती है कि—हे पुत्र! तू चन्द्र-सूय की तरह दीर्घायु बन कर चमकना।

तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने प्रीतिभोज देकर यह आदश स्थापित किया कि प्रसन्नता के समय सम्बद्ध व्यक्तियो को स्मरण करना चाहिए और प्रमोद को भी बाँट कर उपभोग करना चाहिए। (२०)

मूलपाठ—तए ण से मेहकुमारे पचधाइपरिग्गहिए, त जहा खीरधाईए १, मडणधाईए २, मज्जणधाईए ३, कीलावणधाईए ४, अकधाईए ५, अन्नाहि य बहूहि खुज्जाहि चिलाइयाहि वामणि-वडभि-बब्बरि-बउसि-जोणियाहि पल्हविय—ईसिणिय—धोरुगिणि—लासिय—लउसिय—दमिलि—

सिहलि-आरबि-पुलिदि-पक्खणि बहलि-मुरडिय-सबरि-पार-सीहि णाणादेसीहि विदेसपरिमडियाहि इगित-चितिय-पत्थियवियाणियाहि सदेसनेवत्थगहियवेसाहि निउण कुसलाहि विणीयाहि चेडियाचक्कवाल-वरिसधर-क चुइअ महयरगवन्द-परिक्खित्ते हत्थाओ हत्थ सहरिज्जमाणे अकाओ अक परिभु जमाणे परिगिज्जमाणे चालिज्जमाणे उवलालिज्ज-माणे रम्मसि मणिकोट्टिमतलसि परिभिज्जमाणे२ णिव्वाय-णिव्वाघायसि गिरिकदरमल्लीणेव चपगपायवे मुह सुहेण वड्ढइ ।

तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेण नामकरण च पज्जेमण च एव चकमण च चोलोवणय च महया महया इड्ढी-सक्कारसमुदएण करिसु ।

तए ण त मेहकुमार अम्मापियरो सातिरेगट्ठवासजायग चेव गब्भट्ठमे वासे सोहणसि तिहिकरण-मुहुत्तसि कलायरि-यस्स उवणेति ।

तए ण से कलायरिए मेह कुमार लेहाइयाओ गणित-प्पहाणाओ सउणरुतपज्जवसाणाओ बावत्तरि कलाओ सुत्तओ अ अत्थओ य करणओ य सेहावेति सिक्खावेति । तजहा—

(१) लेह (२) गणिय (३) रूव (४) नट्ट (५) गीय (६) वाइय (७) सरगय (८) पोक्खरगय (९) समताल (१०) जूय (११) जणवाय (१२) पासय (१३) अट्ठावय (१४) पोरेवच्च (१५) दगमट्टिय (१६) अन्नविहि (१७) पाणविहि (१८) वत्थविहि (१९) विलेवणविहि (२०)

सयणविहिं (२१) अज्ज (२२) पहेलिय (२३) मागहिय (२४) गाह (२५) गीइय (२६) सिलोय (२७) हिरण्णजुत्ति (२८) सुवण्णजुत्ति (२९) चुण्णजुत्ति (३०) आभरणविहि (३१) तरुणोपरिकम्म (३२) इत्थिलक्खण (३३) पुरिस-लक्खण (३४) हयलक्खण (३५) गयलक्खण (३६) गोणलक्खण (३७) कुक्कुडलक्खण (३८) छत्तलक्खण (३९) दडलक्खण (४०) असिलक्खण (४१) मणिलक्खण (४२) कागणिलक्खण (४३) वत्थुविज्ज (४४) खधारमाण (४५) नगरमाण (४६) वूह (४७) पडिवूह (४८) चार (४९) पडिचार (५०) चक्कवूह (५१) गरलवूह (५२) सगडवूह (५३) जुद्ध (५४) निजुद्ध (५५) जुद्धातिजुद्ध (५६) अट्ठिजुद्ध (५७) मुट्ठिजुद्ध (५८) बाहुजुद्ध (५९) लयाजुद्ध (६०) ईसत्थ (६१) छरुप्पवाय (६२) धणुव्वेय (६३) हिरण्णपाग (६४) सुवण्णपाग (६५) सुत्तखेट (६६) वट्टखेड (६७) नालिकाखेड (६८) पत्तच्छेज्ज (६९) कडगच्छेज्ज (७०) सजीव (७१) निज्जीव (७२) सउणरुअमिति । (२१)

मूलार्थ—तत्पश्चात् मेघकुमार पाच धायो द्वारा ग्रहण किया गया अर्थात् पाच धायें उसका पालन-पोषण करने लगी । व इस प्रकार—(१) क्षीरधात्री-दूध पिलाने वाली धाय (२) मडनधात्री—वस्त्राभूषण पहनाने वाली धाय (३) मज्जनधात्री—स्नान कराने वाली धाय (४) क्रीडापनधात्री—खेल खिलाने वाली धाय और (५) अकधात्री—गोद मे खिलाने वाली धाय ।

इनके अतिरिक्त वह मेघकुमार अन्याय कुब्जा (कुबडी), चिलातिका—चिरात किरात नामक अनार्य देश में उत्पन्न, वामन

(बौनी), वडभी (बड़े पेट वाली), बबरी (बबर देश मे उत्पन्न), बकुश देश की, यौतक देश की, पल्लविक देश की, ईसनिक घोरुकिन एव ल्हासक देश की, लकुश देश की, द्रविड देश की, सिंहल देश की, पुलिंद देश की, पक्कण देश की, बहल देश की, मुरुड देश की, शबर देश की पारस देश की, इस प्रकार नाना देशों की, जो विदेश-अपने देश से भिन्न राजगृह को सुशोभित करने वाली, इंगित (मुखादि की चेष्टा) चिन्तित (मानसिक विचार) और प्रार्थित (अभिलषित) को जानने वाली, अपने अपने देश के वेश को धारण करने वाली, निपुणो मे भी अतिनिपुण, तथा विनीता दासियों के द्वारा और स्वदेशीय दासियों के द्वारा, वर्षधरो (प्रयोग द्वारा नपुंसक बनाये हुए पुरुषो), कंचुकियो और महत्तरको (अन्त पुर की चिन्ता करने वालो) के समुदाय से घिरा हुआ रहने लगा।

वह एक के हाथ से दूसरे के हाथ में जाता, एक की गोद से दूसरे की गोद मे जाता। गा-गा कर बहलाया जाता, उंगली पकड कर चलाया जाता, क्रीडा आदि से लालन-पालन किया जाता एव रमणीय मणिजटित फर्श पर चलाया जाता हुआ वायुरहित और व्याघातरहित गिरि-गुफा में स्थित चम्पकवृक्ष के समान सुखपूर्वक बढने लगा।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने अनुक्रम से नामकरण, पालने मे सुलाना, पैरो से चलाना, चोटी रखना आदि संस्कार बडी ऋद्धि और सत्कारपूर्वक किये।

तत्पश्चात् कुछ अधिक आठ वर्ष हुए अर्थात् गर्भ से आठ वर्ष की आयु मे मेघकुमार को माता-पिता ने शुभ तिथि, करण और मुहूर्त मे कलाचार्य के पास भेजा।

तत्पश्चात् कलाचार्य ने मेघकुमार को गणित जिनमे प्रधान है, ऐसे लेख से लेकर शकुनिरुत (पक्षियो की बोली पहचानना) पर्यन्त

वहत्तर कलाए सूत्र से, अर्थ से और प्रयोग से सिद्ध करवाई तथा सिखलाई । वे इस प्रकार है—

(१) लेखन (२) गणित (३) रूप-परिवर्त्त न (४) नाट्य (५) गायन (६) वाद्य वजाना (७) स्वर जानना (८) वाद्य सुधारना (६) समान ताल देना (१०) जूआ खेलना (११) लोगा के साथ वाद-विवाद करना (१२) पासों से खेलना (१३) चौपड खेलना (१४) नगर रक्षा करना (१५) जल और मिट्टी के सयोग से वस्तु का निर्माण करना (१६) धान्य निपजाना (१७) नया पानी उत्पन्न करना, पानी शुद्ध करना, गम करना (१८) नवीन वस्त्र बनाना, रगना, सीना और पहनना (१६) विलेपन की वस्तुएँ पहचानना, तैयार करना, लेपन करना (२०) शयन विधि—शय्या बनाना एव शयन करने की विधि जानना (२१) आर्या छन्द को पहचानना और बनाना (२२) पहेलियो को बूझना एव निर्माण करना (२३) मागधिका मगध देश की भाषा म गाथा बनाना (२४) प्राकृत भाषा मे गाथा बनाना (२५) गीति रचना (२६) श्लोक (अनुष्टुप) बनाना (२७) चादी बनाना (२८) स्वण बनाना (२६) चूर्ण-गुलाल अबीर आदि बनाना और उनका उपयोग करना (३०) आभूषण घडना, पहनना आदि (३१) तरुणी की सेवा करना (३२) स्त्री के शुभाशुभ लक्षण पहचानना (३३) पुरुष के लक्षण जानना (३४) अश्व के लक्षण जानना (३५) हाथी के लक्षण जानना (३६) गाय-वल के लक्षण जानना (३७) मुर्गा के लक्षण जानना (३८) छत्र के लक्षण जानना (३६) दड लक्षण जानना (४० खडग लक्षण जानना (४१) मणियो के लक्षण जानना (४२) काकिणी रत्न के लक्षण जानना (४३) वास्तुविद्या—मकान दुकान आदि इमारतों की विद्या (४४) सेना के पडाव का प्रमाण आदि जानना (४५) नवीन नगर बसाने आदि की कला (४६) व्यूह-मोर्चा बनाना (४७) विरोधी के व्यूह के सामने अपनी सेना का मोर्चा रचना (४८) सैन्य सचालन करना (४६) प्रतिचार-शत्रु सेना के समक्ष अपनी सेना का चलाना

(५०) चक्रव्यूह-चाक के आकार मे मोर्चा बनाना (५१) गरुड के आकार का व्यूह बनाना (५२) शकटव्यूह रचना (५३) सामान्य युद्ध करना (५४) विशेष युद्ध करना (५५) अत्यन्त विशेष युद्ध करना (५६) अट्ठि (यष्टि या अस्थि) से युद्ध करना (५७) मुष्टि युद्ध करना (५८) बाहु युद्ध करना (५९) लता-युद्ध करना (६०) बहुत को थोडा और थोडे को बहुत दिखलाना (६१) खड्ग की मूठ आदि बनाना (६२) धनुष बाण सबधी कौशल (६३) चादी का पाक बनाना (६४) स्वर्ण पाक बनाना (६५) सूत्र का छेदन करना (६६) खेत जोतना (६७) कमल के नाल का छेदन करना (६८) पत्र-छेदन करना (६९) कटक कुडल आदि का छेदन करना (७०) मृत (मूर्छित) को जीवित करना (७१) जीवित को मृत (मृततुल्य) करना और (७२) काक तथा घूक आदि पक्षियो की बोली पहचानना। (२१)

**विशेष बोध**—एक करोड और अस्सी लाख गावो के अधिपति अर्थात् विशाल मगध के महीपति सम्राट श्रेणिक के पुत्र मेघकुमार को प्राप्त साधनो का यहा उल्लेख किया गया है। यह उल्लेख कितना बोधप्रद है! प्रबल पुण्य से माता-पिता अच्छे मिलते हैं और पुण्यशाली माता पिता को पुण्यवान् पुत्र की प्राप्ति होती है।

एक पुण्यहीन भिखारिन माता के उदर से पुण्यहीन सन्तान जन्म लेती है। यद्यपि यह सर्वदेशीय व्याप्ति नही है, कभी गरीब माता की कूख से भाग्यशाली पुत्र भी जन्म ग्रहण करता है और कदाचित् श्रीमन्त एव पुण्यवती माता का पुत्र भाग्यहीन भी हो जाता है। मेघकुमार के माता पिता पुण्यशाली थे और मेघकुमार स्वय भी प्रकृष्ट पुण्य लेकर आया था। अतएव उसे सब प्रकार की अनुकूल सामग्री प्राप्त हुई। पाच धाय उसका लालन-पालन करती हैं। उनके अतिरिक्त अनेकानेक दास-दासिया का जमघट उसकी सेवा मे सदा सन्निहित और सन्नद्ध रहता है।

गिरि-गुफा के चम्पक वृक्ष के समान वह विना किसी विघ्न वाधा के वृद्धिगत होने लगा। यहा नन्दन वन या गुलाव वाग के पादप की उपमा नही दी गई। वन के वृक्षों की अपेक्षा गिरि-गुफा का वृक्ष अधिक सुरक्षित रहता है। वन के वृक्ष को दाह का खतरा रहता है, गुफा के वृक्ष को यह खतरा भी नही रहता। वन का वृक्ष आंधी-तूफान से उखड सकता है, गुफा का वृक्ष उससे प्रभावित नही होता।

मेघकुमार की आयु एव नीरोगता आदि प्रवल पुण्य की गुफा से सुरक्षित थी।

उसका नामकरण सस्कार, पालने मे पोढाने का सस्कार आदि सभी सस्कार अनुक्रम से योजनापूर्वक वडे ठाठ से किए गए। राजा के यहा किस वस्तु की कमी थी! और फिर मेघकुमार परिवार का लाडला था।

आज पाच वर्ष की वय मे वालक को पाठशाला मे भेज दिया जाता है। उस समय आठ वर्ष की उम्र मे उसे कलाचार्य के पास भेज दिया जाता था। आठ वर्ष की उम्र में उस युग मे शिक्षा का आरम्भ होता था।

मेघकुमार के पाठ्यक्रम म ७२ कलाओ का उल्लेख किया गया है। अन्य कथाएँ भी यही सूचित करती हैं। ये कलाए सूत्र, अर्थ और प्रयोग द्वारा सिखलाई जाती थी। कलाओ के नामोल्लेख से सहज ही जाना जा सकता है कि इनके अन्तर्गत सभी जीवनोपयोगी ज्ञान समाविष्ट हो जाता था। अगर विस्तार से इनका ज्ञान प्राप्त किया जाय तो वह जीवननिर्वाह के लिए पर्याप्त होने के साथ देश की सुरक्षा के लिए भी पर्याप्त था।

कला कला के लिए ही नही, जीवन के लिए उपयोगी होनी चाहिए। कलात्मक जीवन ही मौलिक जीवन है।

उल्लिखित कलाओ मे जूआ जैसी कलाए भी सम्मिलित हैं, यह देखकर आश्चय हो सकता है, पर जान पडता है कि तत्कालीन समाज मे यह भी एक मनवहलाव का साधन था। (२१)

मूलपाठ—तए ण से कलायरिए मेह कुमार लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओं सउणिरुअपज्जवसाणाओ वावत्तरिकलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहावेति सिक्खावेति, सेहावित्ता सिक्खावित्ता अम्मापिऊण उवणेति।

तए ण मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो त कलायरिय महुरेहि वयणेहि विपुलेण वत्थगधमल्लालकारेण सक्कारेति सम्माणेंति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विपुल जीवियारिह पीइदाण दलयति, दलइत्ता पडिविसज्जेन्ति। (२२)

मूलाथ—तत्पश्चात् वह कलाचाय मेघकुमार को गणित प्रधान लेखन मे लेकर शकुनिरुत पयन्त बहत्तर कलाए सूत्र (मूल पाठ) से, अथ से और प्रयोग से सिद्ध कराता है तथा सिखलाता है। सिद्ध करवाकर तथा सिखलाकर माता-पिता के पास ले जाता है।

तव मेघकुमार के माता पिता ने कलाचार्य का मधुर वचनो से तथा विपुल वस्त्र, गध, माला और अलकारो से सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार-सम्मान करके जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर उसे विदा किया॥ (२२)

मूलपाठ—तए ण मेहे कुमारे वावत्तरिकलापडिए णवगसुत्तपडिवोहए अट्ठारसविहिप्पगारदेसीभासाविसारए गीइरई गधव्वनट्टकुसले हयजोही गयजोही रहजोही वाहुजोही वाहुपमद्दी अल भोगसमत्थे साहसिए वियालचारी जाए यावि होत्था।

हुए होंगे। आठ वर्ष की उम्र होने पर शिक्षा प्रारम्भ हुई और नवांग के जागृत होने तक वह चलती रही।

दो कान, दो नयन, दो नासिकाएं, जीभ, त्वचा एवं मन, ये नौ अंग यहाँ विवक्षित हैं।[1] ये अंग बाल्यकाल में सुप्त-से रहते हैं। यौवनावस्था का प्रारम्भ होते ही उसी प्रकार जागृत हो जाते हैं जैसे पुंगी बजाने से नागराज अपने फन को फुफकार मारता हुआ ऊपर उठाता है। मेघकुमार के ये सब अंग सचेतन हो गए।

श्रेणिक ने अपनी भावी पुत्रवधुओं के लिए आठ भवन बनवाए और उन भवनों के मध्य में मेघकुमार के लिए एक अतिविशाल एवं मनोहर भवन बनवाया। इन भवनों की बनावट इतनी भव्य थी कि आजका ताजमहल, दिल्ली का लाल किला एवं बम्बई की मरिन लाइन की इमारतें भी उनके सामने तुच्छ-सी प्रतीत होती हैं। मेघकुमार के इन नौ भवनों का वर्णन पढ़ने से लगता है कि वे आज की इन इमारतों से कई गुणा सुन्दर रहे होंगे। मगर आज उनके खण्डहर भी कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते! यह कालचक्र का प्रभाव है! फिर भी इस वर्णन से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में भवन-निर्माणकला अत्यन्त उन्नत अवस्था में थी।

अनुभव बतलाता है कि पूर्वापेक्षया बाद के भवनों में सुविधाएं अधिकाधिक बढ़ती जाती हैं, किन्तु मजबूती और वैभव, जो प्राचीन इमारतों में था, वह आज नहीं। आज के भवन अपेक्षाकृत कमजोर होते हैं। (२३)

**मूलपाठ—तए णं तस्स मेहकुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं सोहणंसि तिहि-करण-णक्खत्त-मुहुत्तंसि सरिसियाणं**

---

१ 'नवांगानि—द्वे द्वे श्रोत्रे नयने नासिके जिह्वा एका त्वगेका मनश्चैकं, सुप्तानीव सुप्तानि—बाल्यादव्यक्तचेतनानि, प्रतिबोधितानि—यौवनेन व्यक्त-चेतनावन्ति कृतानि यस्य स।"

—अभयदेवटीका

सरिसव्वयाण सरिसत्तयाण सरिसलावण्णरूवजोव्वणगुणोव-
वेयाण सरिसएहिन्तो रायकुलेहिन्तो आणिअल्लियाण
पसाहणट्ठ गविहववहुओवयणमगलसुजपियाहि अट्ठहि रायवर-
कण्णाहि सद्धि एगदिवसेण पाणि गिण्हाविसु।

तए ण तस्स मेहस्स अम्मापियरो इम एयारूव पीइदाण
दलयइ—अट्ठ हिरण्णकोडीओ, अट्ठ सुवण्णकोडीओ, गाहाणु-
सारेण भाणियव्व जाव पेसणकारियाओ। अन्न च विपुल
धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-सख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-
सतसारसावतेज्ज, अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ
पकाम दाउ, पकाम भोत्तु, पकाम परिभाएउ।

तए ण से कुमारे एगमेगाए भारियाए एगमेग हिरण्ण-
कोडिं दलयति, एगमेग सुवन्नकोडिं दलयति, जाव एगमेग
पेसणकारिं दलयति, अन्न च विपुल धणकणग० जाव
परिभाएउ दलयति।

तए ण से मेहे कुमारे उप्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहिं
मुइगमत्थएहिं वरतरुणिसपउत्तेहिं बत्तीसइबद्धएहिं नाडएहिं
उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे उवलालिज्ज-
माणे सद्द-फरिस-रूव-गधविउले माणुस्सए काममोगे पच्चणु-
भवमाणे विहरति। (२४)

मूलार्थ—तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने मेघकुमार का
शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त मे, शरीरपरिमाण से सदृश,
समान उम्र वाली समान त्वचा (कान्ति) वाली, समान लावण्य वाली
समान रूप (आकृति) वाली, समान यौवन और गुणा वाली तथा
अपने कुल के समान राजकुलो से लाई हुई आठ श्रेष्ठ राजकन्याओं
के साथ एक ही दिन, एक ही साथ, आठो अगो मे अलकार धारण

करने वाली सुहागिन स्त्रियों द्वारा किए हुए मगलगान एव दधि अक्षत आदि मागलिक पदार्थों के प्रयोग द्वारा पाणिग्रहण करवाया।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने इस प्रकार प्रीतिदान दिया—आठ करोड हिरण्य (चादी), आठ करोड सुवर्ण आदि गाथा नुसार समझ लेना चाहिए। यावत आठ-आठ प्रेक्षणकारिणी (नाटक करने वाली) अथवा पेषणकारिणी (पीसने वाली) तथा और भी विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शख, मू गा, रक्तरत्न (लाल) आदि उत्तम सारभूत द्रव्य दिया, जो सात पीढ़ी दान देने के लिए, भोगने के लिए उपयोग करने के लिए और बटवारा करके देने के लिए पर्याप्त था।

तत्पश्चात् उस मेघकुमार ने प्रत्येक पत्नी को एक एक करोड हिरण्य दिया, एक-एक करोड स्वर्ण दिया, यावत् एक-एक प्रेक्षण-कारिणी या पेषणकारिणी दी। इसके अतिरिक्त अन्य विपुल धन, कनक आदि दिया। जो यावत् दान देने, भोगोपभोग करने और बँटवारा करने के लिए सात पीढियो तक पर्याप्त था।

तत्पश्चात् मेघकुमार श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर रहा हुआ, मानो मृदगो के मुख फूट रहे हो, इस प्रकार उत्तम स्त्रियों द्वारा किए हुए बत्तीस बद्ध नाटको द्वारा गायन किया जाता हुआ तथा क्रीडा करता हुआ, मनोज्ञ शब्द स्पर्श, रस, रूप और गध की विपुलता वाले मनुष्य सबधी कामभोगो को भोगता हुआ रहने लगा। (२४)

**विशेष बोध**—मेघकुमार युवावस्था मे पहु चे। शारीरिक सामर्थ्य जब विकसित हो गया तो आठ राजकन्याओ के साथ उनका विवाह कर दिया गया।

सूत्र के अगले उल्लेख से जान पडता है कि ये कन्याए विभिन्न स्थानो से लाकर एकत्र की गई थी। मेघकुमार को उनसे विवाह करने के लिए आठ स्थानो पर दूल्हा बनकर नही जाना पडा। अन्य

कथानक भी इस तथ्य को प्रमाणित करते है कि उस समय कन्या वर के यहाँ लाई जाती थी। अरिष्टनेमि इस नियम के अपवाद थे।

मेघकुमार का सम्बन्ध जिन कन्याओ के साथ हुआ, वे सदृश राज कलो से लाई गई थी। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि सदृश कुलो मे विवाह सम्बन्ध होने से पति पत्नी के सस्कारो मे समानता की अधिक सभावना रहती है और इससे दाम्पत्यजीवन सुख-शान्तिमय व्यतीत होता है। सस्कारो मे जहाँ विरूपता होती है वहा गृहस्थ-जीवन मे मतभेद उत्पन्न होते हैं और कालान्तर मे वे कलह का रूप धारण कर लेते हैं। ऐसी स्थिति मे अन्य कोई भी सुख-सामग्री सुख-शान्ति नही प्रदान कर सकती। राजा श्रेणिक ने मेघकुमार के लिए कन्याओ का चुनाव करते समय इस तथ्य को ध्यान मे रक्खा है।

वे कन्याए समान वय एव समान रूप-लावण्य आदि से अलकृत थी। उनके शरीर की ऊचाई भी मेघकुमार के शरीर की ऊचाई के बराबर थी। उनमें मधुरभाषित्व आदि अनेक गुण विद्यमान थे।[1]

बहुपत्नीप्रथा उस समय प्रचलित थी। भारत मे ही नही, अन्य देशो मे भी प्राचीनकाल मे यह प्रथा थी। मगर भ० ऋषभदेव से पूर्व युगलिककाल मे यह प्रथा नही थी। उस समय एक पुरुष और एक स्त्री का ही युगल होता था। सभव है प्रारम्भ मे स्त्रिया की सख्या पुरुषो की सख्या से अधिक होने के कारण इस प्रथा को अपनाना पडा हो और फिर यह रिवाज बन गया हो और फिर अनेक पत्निया का होना प्रतिष्ठा की कसौटी माना जाने लगा हो। जो भी

---

१ सदृशोनां—शरीरप्रमाणतो मेघकुमारापेक्षया परस्परतो वा, सदृग् वयसा—समानकालकृतावस्थाविशेषाणाम्, सदृक्त्वचां—सदृशच्छवीनां, सदृशलावण्यरूपयौवनगुणैरुपेतानां तत्र लावण्य मनोज्ञता, रूपम् आकृति, यौवन युवता, गुणा प्रियभाषित्वादय ।

—अभयदेव-टीका

हो, बीच मे तो एक लाख ९२ हजार पत्निया के होने का भी उल्लेख मिलता है।[1]

चक्रवर्त्ती का एक लाख ९२ हजार रानियों का परिवार होता है। उसमे एक सबसे बडी रानी होती है जो श्रीदेवी कहलाती है। श्रीदेवी सन्तान प्रसव नही करती। वह सदा युवती-सी रहती है।

वासुदेव की १६ हजार रानियाँ होती हैं। शेष ३२ या ८ के साथ विवाह करने वाले सामान्य हैं।

श्रेणिक ने पत्रवधुओ के निमित्त मेघकुमार को प्रीतिदान दिया। वह प्रीतिदान मेघकुमार ने अपनी सब पत्नियो को वरावर-वरावर बाँट दिया। इस प्रीतिदान मे एक एक स्वणकोटि, एक-एक हिरण्य कोटि के साथ गृहस्थी के योग्य सभी सामान था, यहाँ तक कि एक-एक पिसनहारी भी थी। यह उनकी स्वाधीनतापूवक सुख-सुविधा के लिए था। भवन उनके पृथक-पथक् वन ही चुके थे।

मेघकुमार भोगी भवरा वन गया। मगर यौवन की वह आंधी थोडे समय की ही थी।

यौवनकाल जीवन का सर्वोत्तम समय है। बाल्यावस्था मे मस्ती एव निश्चिन्तता होती है तो युवावस्था मे उन्माद होता है। उन्माद की इस अवस्था मे मनुष्य कभी ऐसी भूलें भी कर बैठता है जिनका स्मरण करके वृद्धावस्था मे उसे पश्चात्ताप करना पडता है। किन्तु मेघकुमार इसका अपवाद था। वह ऐसे सस्कारा से सम्पन्न था कि समय रहते सावधान हो गया। यौवन का रग उस पर चढा अवश्य, परन्तु वह दीर्घकाल स्थायी नही वन सका। (२४)

---

१ एक लाख ने बाणु हजारो,
 ज्यारे राण्यों रो परिवारो भी ॥

मूलपाठ—ते ण कालेण ते ण समएण समणे भगव महावीरे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे सुह-सुहेण विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नगरे गुणसिलए चेइए जाव विहरति ।

तए ण से रायगिहे नयरे सिंघाडग० महया वहुजणसद्दे ति वा जाव वहवे उग्गा भोगा जाव रायगिहस्स नगरस्स मज्झमज्झेण एगदिर्सि एगाभिमुहा निग्गच्छति ।

इम च ण मेहे कुमारे उप्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइगमत्थएहि जाव माणुस्सए कामभोगे भु जमाणे रायमग्ग च आलोएमाणे आलोएमाणे एव च ण विहरति ।

तए ण से मेहे कुमारे ते वहवे उग्गे भोगे जाव एगदिसाभिमुहे पासति, पासित्ता कचुइज्जपुरिस सद्दावेति, सद्दावित्ता एव वयासी—किं ण भो देवाणुप्पिया ! अज्ज रायगिहे नगरे इदमहेति वा, खदमहेति वा, एव रुद्द-सिव-वेसमण-नाग-जक्ख-भूय-नई - तलाय - रुक्ख - चेतिय—पव्वय उज्जाण-गिरिजत्ताई वा ? जओ ण वहवे उग्गा भोगा जाव एगदिर्सि एगाभिमुहा णिग्गच्छति ?

तए ण से कचुइज्जपुरिसे समणस्स भगवओ महावीरस्स गहियागमणपवित्तीए मेह कुमार एव वयासी—नो खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज रायगिहे नगरे इदमहेति वा जाव गिरिजत्ताओ वा, ज ण एए उग्गा जाव एगदिर्सि एगाभिमुहा निग्गच्छति, एव खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगव महावीरे आइगरे तित्थयरे इहमागते, इह सपत्ते, इह समोसढे इह चेव रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए महापडि० जाव विहरति । [२५]

मूलार्थ—उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रम से चलते हुए, गाव से दूसरे गाव जाते हुए, सुखे-सुखे विहार करते हुए, जहा राज गृह नगर था और जहां गुणसिलक नामक चैत्य था, यावत् वहीं आकर ठहरते हैं।

तत्पश्चात् राजगृह नगर मे शृगाटक-सिघाडे के आकार के माग आदि मे बहुत लोगो का शोर होने लगा। यावत् बहुतेरे उग्र कुल के, भोग कुल के, इत्यादि सभी लोग यावत् राजगृह नगर के मध्य भाग म होकर एक ही दिशा मे एक ही ओर मुख करके निकलने लगे।

उस समय मेघकुमार अपने प्रासाद पर था। मानो मृदगो का मुख फूट रहा हो, इस प्रकार गायन किया जा रहा था अर्थात् गाने-बजाने में मस्त था। यावत् मनुष्यसबधी कामभोग भोग रहा था और राजमाग का अवलोकन करता-करता विचर रहा था।

तत्पश्चात् वह मेघकुमार उन बहुतेरे उग्रकुलीन भोगकुलीन यावत् लोगो को एक ही दिशा मे मुख किये जाते देखता है। देखकर कचुकी पुरुप को बुलाता है और बुलाकर इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रिय ! क्या आज राजगृह नगर मे इन्द्रमहोत्सव है ? स्कद (कार्तिकेय का महोत्सव है ? या रुद्र, शिव, वैश्रमण (कुबेर), नाग, यक्ष, भूत, नदी, तडाग, वृक्ष, चैत्य, पवत उद्यान या गिरि की यात्रा है ? जिससे बहुत-से उग्रकुल तथा भोग कुल आदि के सब लोग एक ही दिशा मे और एक ही ओर मुख करके निकल रहे हैं।

तब उस कचुकी पुरुप ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी के आगमन का वृत्तान्त जानकर मेघकुमार को इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! आज राजगृह नगर में इन्द्रमहोत्सव यावत् गिरि-यात्रा आदि नही है कि जिसके निमित्त यह उग्रकुल के, भोगकुल के तथा अन्य सब लोग एक ही दिशा मे एकाभिमुख होकर जा रहे

हैं। परन्तु देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर धर्मतीर्थ की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले यहाँ आए हैं, पधार चुके हैं, समवसृत हुए हैं और इसी राजगृह नगर में, गुणशील चैत्य में यथायोग्य अवग्रह की याचना करके यावत् विचर रहे हैं। (२५)

मूलपाठ—तए ण से मेहे कचुइज्जपुरिसस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे कोडुवियपुरिसे सद्दावेति, सद्दावित्ता एव वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घट आसरह जुत्तामेव उवट्ठवेह।

तहत्ति उवणेन्ति।

तए ण से मेहे ण्हाए जाव सव्वालकारविभूसिए चाउग्घट आसरह दुरूढे समाणे सकोरटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण महया भडचडगरविदपरियालसपरिवुडे -रायगिहस्स नगरस्स मज्झमज्झेण निग्गच्छति, निग्गच्छित्ता जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स छत्तातिछत्त पडागातिपडाग विज्जाहर-चारणे जभए य देवे ओवयमाणे उप्पयमाणे पासति, पासित्ता चाउग्घटाओ आसरहाओ पच्चोरुहति, पच्चोरुहित्ता समण भगव महावीर पचविहेण अभिगमण अभिगच्छति, तजहा—

१ सचित्ताण दव्वाण विउसरणयाए
२ अचित्ताण दव्वाण अविउसरणयाए
३ एगसाडिय—उत्तरासगकरणण
४ चक्खुप्फासे अजलिपग्गहेण
५ मणसो एगत्तीकरणण।

माने जाते हैं किन्तु यहाँ दोनों का तात्पर्य भिन्न-भिन्न है। काल का अथ है चौथा आरा और समय का अथ है—वह वष, मास, दिन या मुहूर्त आदि कालविभाग, जब भगवान् राजगृह मे पधारे थे।

जैसे आजकल सवत् के साथ मिति लिखने का या सन् के साथ मास दिवस लिखने का रिवाज है, वैसे ही उस समय सूत्रों मे काल और समय लिखने की प्रथा थी।

चौथा आरा ४२ हजार वष कम एक कोडाकोडी सागरोपम का माना गया है। भगवान् ऋषभदेव के बाद २३ तीथकर इसी आरे में हुए हैं। भगवान् महावीर चौबीसवें तीथकर थे।

'तेण कालेण तेण समएण' यह सामान्य पाठ है और अनक स्थलों पर आता है। इसका सामान्य अथ सवत्र उल्लिखित ही समझना चाहिए किन्तु घटना के अनुसार उसका विशेष अथ पृथक्-पृथक कहना चाहिए।

प्रत्येक घटना और अन्तघटना का कोई काल और काल विभाग होना निश्चित है किन्तु उसके वणन मे उन सब का उल्लेख होना सम्भव नहीं है। तथापि 'तेण कालेण तेण समएण' कहकर उस कमी की पूर्ति कर दी गई है।

दीनदयाल प्रभु महावीर जब विहार करते तब माग के प्रत्येक ग्राम नगर को घमलाभ देते। प्राय किसी भी ग्राम को छोडकर आगे नहीं निकलते। आज भी पैदल विचरण करने वाले साधुओं को ग्रामानुग्राम विचरना पडता है। पद-यात्रा की यह भी एक विशिष्टता है।

आज की भाति प्राचीन काल मे वर्षावास या शेषकाल के लिए श्रावकों द्वारा पहले से प्रायना करने की प्रथा थी, ऐसा उल्लेख कहीं दृष्टिगोचर नही होता। तीर्थंकर हो या अन्य साधु विचरते-विचरते जहाँ अनुकूलता देखते, चौमासा कर लेते थे। नियमानुसार शेष काल भी इसी प्रकार व्यतीत करते थे।

प्राचीन कथानकों से यह भी ध्वनित होता है कि सन्तजन अकस्मात आते और अकस्मात ही विहार कर जाते थे। उनके गमनागमन का समय पूर्व निर्धारित नही होता था। अगर होता भी हो, तो भी गृहस्थो को उसका पता नही चलता था। अनेक कथाओ मे उद्यानपाल द्वारा राजा को मुनि-आगमन की सूचना मिलने का उल्लेख है तो कई जगह उनके आगमन के पश्चात् उमडती हुई भीड को देखकर पता चलने का वर्णन आता है। किसी भी जगह के सघ को मुनि-आगमन से पूर्व उनके आने की सूचना मिलने का वर्णन शास्त्रो मे नही है। आधुनिक काल मे यह प्रथाए प्रचलित हैं।

राजगृह नगर के बाहर प्रभु का पदार्पण हो गया। वे गुणशिलक या गुणशील नामक चैत्य मे पधार गए। जनता को यह समाचार विदित हुआ तो चारो ओर से भगवान् की सुधामयी धर्मदेशना सुनने के लिए वह उमड पडी।

मेघकुमार अपनी आठ पत्निया के साथ विलासमय जीवन का अनुभव कर रहा था! मृदंगों की आवाज मे रास-लीला चल रही थी।

देव, दानव मानव और पशु पक्षी, सभी विषय-वासना मे ग्रस्त होते हैं, सभी भोगो का सेवन करते हैं। किन्तु मानव की यह विशेषता है कि वह वासना के जाल को छिन्न भिन्न कर सकता है। अनेक सत्वशाली महामानव ऐसे हुए हैं जिन्होंने वासना पर विजय प्राप्त करके धर्माचरण किया और अन्त मे मुक्ति प्राप्त की। उन्ही महामानवो मे मेघकुमार भी थे।

महल मे बैठे मेघकुमार ने जनसमूह को एक ही ओर जाते देखा। तब उसके मन मे आया कि आज कोई विशिष्ट प्रसग होना चाहिए। सही जानकारी प्राप्त करने के लिए उसने कचुकी से पूछा। तब उसने बतलाया कि श्रमण भगवान् महावीर का यहाँ पदार्पण हुआ है।

यह हर्ष-समाचार सुनते ही मेघकुमार भगवान् की सेवा में पहुचने को तैयार हुआ।

भगवान् की धर्मदेशना श्रवण करने के लिए प्रस्थान करने से पूर्व उसने स्नान किया और आभरण धारण किये। फूल-माला वाले छत्र को धारण किया। यह एक लोकाचार है जिसका धर्म के साथ सम्बन्ध नहीं है। स्नान करना धर्म होता तो मुनियों के लिए आजीवन अस्नानव्रत क्यों बतलाया जाता ?

पूरी तैयारी के साथ मेघकुमार दर्शनार्थ गया। निकट पहुचने पर पांच अभिगमों का पालन किया। अन्य कथानकों में भी इन अभिगमों के पालन का उल्लेख मिलता है। जैनसघ की यह धार्मिक सस्कृति है, सभ्यता है।

प्राचीन काल में तीन बार प्रदक्षिणा करने की प्रणाली थी। सम्मान-बहुमान प्रदर्शित करना, इसका उद्देश्य था। आजकल तीन बार हाथ घुमाकर ही प्रदक्षिणा समझ ली जाती है।

मेघकुमार यथोचित विनय भक्ति प्रकट करके जिनवाणी सुनने के लिए अपने योग्य स्थान पर बैठ गया।

राजा हो या रक, वीतराग समान भाव से सबको समान उपदेश देते हैं।[1] भगवान ने मेघकुमार को और उस समय उपस्थित जन-समूह को धर्मदेशना दी। धर्मदेशना में श्रुतधर्म और चारित्रधर्म का कथन किया। श्रुत है ज्ञान और चारित्र है आचरण। ज्ञान क्रिया के समीचीन सयोग से ही सिद्धि प्राप्त होती है।

बन्धन क्या है ? बन्धन से मुक्ति पाने का उपाय क्या है ? वास्तविक सुख और दु ख का स्वरूप क्या है ? इन प्रश्नों पर विचार करके समाधान पाना ही धर्मकथाश्रवण का सार है।

---

१ जहा पुन्नस्स कत्थइ, तहा तुच्छस्स कत्थइ।

—आचारांग, प्र० श्रु०

दुख की अनुभूति ही वास्तव मे दु ख है। इसी कारण शास्त्रकार उसे 'असाता वेदन' कहते हैं। जो दु खो का कारण समझ गया और उससे मुक्त होने का उपाय जान गया, उसका दु खभार कम हो जाता है। भगवत्कथा मे उपाय मिलता है। दु ख का स्वरूप उससे समझा जाता है।

जम्मदुक्ख, जरादुक्ख,
रोगाणि मरणाणि य।

मेघकुमार ने इन दु खो को समझा।

धमदेशना यहाँ सक्षेप मे वतला दी गई है। विस्तारपूवक समझने के लिए औपपातिक सूत्र देखना चाहिए। (२५-२६)

मूलपाठ—तए ण से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्म सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे, समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

सद्दहामि ण भते ! णिग्गथ पावयण, एव पत्तयामि ण, रोएमि ण, अब्भुट्ठेमि ण भते ! णिग्गथ पावयण। एवमेय भते ! तहमेय भते ! अवितहमेय भते ! इच्छियमेय पडिच्छियमेय भते ! इच्छियपडिच्छियमेय भते ! से जहेव त तुब्भे वदह। ज नवर देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि, तओ पच्छा मु डे भवित्ता ण पव्वइस्सामि।

अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेह।

तए ण से मेहे कुमारे समण भगव महावीर वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता जेणामेव चाउग्घटे आसरहे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घट आसरह दुरूहइ, दुरूहित्ता महया भडचडगरपहकरेण रायगिहस्स

नयरस्स मज्झमज्झेण जेणेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घटाओ आसरहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणामेव अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊण पायवडण करेइ, करित्ता एव वयासी—

एव खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे णिसते । से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।

तए ण तस्स मेहस्स अम्मापियरो एव वयासी—धन्नो सि तुम जाया ! सपुन्नो सि तुम जाया ! कयत्थो सि तुम जाया ! ज ण तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे णिसते, से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।

तए ण से मेहे कुमारे अम्मापियरो दोच्चपि तच्चपि एव वयासी—एव खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे निसते । से वि य ण धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए । त इच्छामि ण अम्मयाओ ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए मुडे भवित्ता ण अगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए ।

तए ण सा धारिणी देवी तमणिट्ठ अकत अप्पिय अमणुन्न अमणाम असुयपुव्व फरस गिर सोच्चा णिसम्म इमेण एयारूवेण मणोमाणसिएण महया पुत्तदुक्खेण अभिभूया समाणी सेयागयरोमकूवपगलतविलीणगाया सोयभरपवेवियगी णित्तेया दीणविमणवयणा करयलमलियव्व कमलमाला तक्खणओलुग्गदुब्बलसरीरा

लावन्नसुन्ननिच्छायगयसिरीया पसिढिलभूसणपडतखुम्मिय-सचुन्नियधवलवलयपब्भट्ठउत्तरिज्जा सूमालविकिन्नकेसहत्था मुच्छावसणट्ठचेयगरुई परसुनियत्तव्व चपगलया निव्वत्त-महिमव्व इदलट्ठी विमुक्कसधिबधणा कोट्टिमतलसि सव्वगेहि घसत्ति पडिया ।

तए ण सा धारिणी देवी ससभमतुरिय कचणभिगार-मुहविणिग्गयसीयलजलविमलधाराए परिसिंचमाणा निव्वा-वियगायलट्ठी उक्खेवणतालविंट - वीयणगजणियवाएण सफुसिएण अतेउरपरिजणेण आसासिया समाणी मुत्तावलि-सन्निगासपवडतअसुधाराहिं सिंचमाणी पओहरे कलुण-विमणदीना रोयमाणी कदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी मेह कुमार एव वयासी । (२७)

मूलार्थ—तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के पास से मेघकुमार ने धम श्रवण करके और उसे हृदय मे धारण करके, हर्षित और सन्तुष्ट होकर भगवान् महावीर को तीन वार दाहिनी ओर से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, उसे सर्वोत्तम स्वीकार करता हूँ। मैं उस पर प्रतीति करता हूँ। मुझे निर्ग्रन्थ-प्रवचन रुचता है, अर्थात् जिन शासन के अनुसार आचरण करने की मैं अभिलाषा करता हूँ। भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को अगीकार करना चाहता हूँ। भगवन् ! यह ऐसा ही है (जैसा आप कहते हैं।) यह उसी प्रकार का है, अर्थात् सत्य है। भगवन् ! मैंने इसकी इच्छा की है, पुन पुन इच्छा की है। भगवन् ! यह इच्छित और पुन पुन इच्छित है। यह वैसा ही है जैसा आप फरमाते हैं। विशेष बात यह

है कि, हे देवानुप्रिय ! मैं अपने माता पिता की आज्ञा ले लू, तत्पश्चात् मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करूगा।

तत्पश्चात् मेघकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर का वन्दन किया, अर्थात् उनकी स्तुति की और नमस्कार किया। स्तवन-नमस्कार करके जहाँ चार घण्टा वाला अश्वरथ था वहाँ आया। आकर चार घटा वाले अश्वरथ पर आरूढ हुआ। आरूढ होकर महान् सुभटों और विपुल समूह वाले परिवार के साथ राजगृह के बीचों बीच होकर जहाँ अपना भवन था, वहाँ आया। आकर चार घटा वाले अश्वरथ से उतरा। उतर कर जहा उसके माता-पिता थे, वहा पहु चा। पहु च कर माता-पिता के पैरा मे प्रणाम किया। प्रणाम करके इस प्रकार कहा— हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर के समीप धम श्रवण किया है और मैंने उस धम की इच्छा की है, वार-वार इच्छा की है। वह मुझे रुचा है।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता इस प्रकार बोले—पुत्र ! तुम धन्य हो। पुत्र तुम पूरे पुण्यवान् हो। हे पुत्र ! तुम कृताय हो कि तुमने श्रमण भगवान् महावीर के निकट धमश्रवण किया है और वह धर्म भी तुम्हे इष्ट, पुन पुन इष्ट और रुचिकर हुआ है।

तत्पश्चात वह मेघकुमार माता पिता से दूसरी बार और तीसरी बार इस प्रकार कहने लगा—हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर से धम श्रवण किया है। उस धम की मैंने इच्छा की है। बार-बार इच्छा की है। वह मुझे रुचिकर हुआ है। अतएव हे माता पिता ! मैं आपकी अनुमति पाकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप मुण्डित होकर, गृहवास त्यागकर अनगारिता की प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।

तत्पश्चात् धारिणीदवी उस अनिष्ट अप्रिय, अमनोज्ञ (अप्रशस्त) और अमनाम (मन को न रुचने वाली), पहले कभी न सुनी हुई कठोर वाणी को सुनकर और हृदय में धारण करके, इस प्रकार मन

ही मन मे रहे हुए महान् पुत्रवियोग के दु ख से पीडित हुई। उसके रोमकूपो मे पसीना आने से अगो से पसीना झरने लगा। शोक की अधिकता से उसके अग कापने लगे। वह निस्तेज हो गई। दीन और विमनस्क हो गई। हथेली से मली हुई कमल की माला के समान हो गई। 'मैं प्रव्रज्या अगीकार करना चाहता हूँ' यह शब्द सुनने के क्षण मे ही वह दु खी और दुवल हो गई। वह लावण्यरहित हो गई, कान्तिहीन हो गई, श्रीविहीन हो गई। शरीर दुवल होने से उसके पहने हुए अलकार अत्यन्त ढीले हो गए। हाथो मे पहने हुए उत्तम वलय खिसक कर भूमि पर जा पडे और चूर-चूर हो गए। उसका उत्तरीय वस्त्र खिसक गया। सुकुमार केशपाश विखर गया। मूर्च्छा के वश होने से चित्त नष्ट होने के कारण शरीर भारी हो गया। परशु से काटी हुई चम्पकलता के समान तथा महोत्सव सम्पन्न हो जाने के पश्चात् इन्द्रध्वज के समान (शोभाहीन) प्रतीत होने लगी। उसके शरीर के जोड ढीले पड गए। ऐसी वह धारिणी देवी सव अगो से धस्—धडाम से पृथ्वीतल (फर्श) पर गिर पडी।

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी सभ्रम के साथ शीघ्रता से स्वण-कलश के मुख से निकली हुई शीतल जल की निर्मल धारा से सिंचित की गई। अतएव उसका शरीर शीतल हो गया। उत्क्षेपक (एक प्रकार के वास के पखे) तथा वीजनक (जिसकी डडी अन्दर से पकडी जाय, ऐसे वास के पखे) से उत्पन्न हुए तथा जलकणो से युक्त वायु से अन्त:-पुर के परिजना द्वारा उसे आश्वासन दिया गया। तव धारिणी देवी मोतियो की लडी के समान अश्रुधारा से अपने स्तनो को सीचने-भिगोने लगी। वह दयनीय, विमनस्क और दीन हो गई। वह रुदन करती हुई, क्रन्दन करती हुई, पसीना एव लार टपकाती हुई हृदय मे शोक करती हुई और विलाप करती हुई मेघकुमार से इस प्रकार कहने लगी।(२८)

विशेष बोध—मेघकुमार वीतराग प्रभु की वाणी सुनकर अपूर्व आनन्द का अनुभव करने लगा। उसकी अन्तरात्मा दिव्य ज्योति से झलमला उठी। पर्युपासना के पश्चात् उसने प्रभु के समक्ष जो निवेदन किया, वह उसके हृदय की ध्वनि थी। हृदय सत्य भगवान का घर है। उस घर का द्वार बन्द करके बोलना ही झूठ है। सन्तो का हृदय सदा और सबके लिए खुला रहता है। इसी कारण मेघ का चित्त अनायास ही भगवान की ओर आकृष्ट हो गया।

मेघ ने कहा—प्रभो ! मैं माता-पिता की आज्ञा प्राप्त करके संयम ग्रहण करूंगा।

अधिकृत जनों की आज्ञा प्राप्त किये बिना कोई व्यवहार शुद्ध नही कहलाता और साधना भी शुद्ध नही होती। आज्ञा मे आशीर्वाद की खुशबू रह, तभी साधना मे मधुर फलो का प्रादुर्भाव होता है।

भगवान् ने मेघकुमार को उत्तर मे कहा—अहा—सुह " ।

सामान्य आत्मा लोभी हो सकता है किन्तु महात्मा लोभी नहीं होते। परमात्मा के निकट तो लोभ फटक भी नही सकता। इसी कारण प्रभु ने उत्तर दिया—जैसे सुख हो वैसा करो। अभिप्राय यह है कि यदि संयम मे सुख समझा है, उसमें रुचि उत्पन्न हुई है तो, संयम ग्रहण कर सकते हो।

सच्चा सुख संयम मे ही है, असंयम मे नहीं। असंयम मे जो सुख प्रतीत होता है वह सुखाभास है। विषयवासनाओं के उदयकाल में सुखाभास रहता है। विलासमय जीवन का सुख भविष्य मे दुःख के रूप में परिणत हो जाता है।

मेघकुमार ने जिन-देशना श्रवण करके संसार के स्वरूप को यथार्थ रूप मे समझ लिया है, इस कारण उन्हें संयम मे ही सुख जान पड रहा है। भगवान् से यही उन्होंने निवेदन किया है।

यथाविधि वन्दना-नमस्कार करके मेघ जिस मार्ग से गए थे,

उसी मार्ग से लौटे और माता-पिता के भवन में पहुँचे। माता-पिता के चरणों मे प्रणिपात करके बोले आज मैंने श्रमण भगवान् महावीर का उपदेश सुना और वह मुझे अति प्रिय लगा है। रुचिकर हुआ है। इच्छा होती है कि बार-बार वह उपदेश सुनूँ।

मेघकुमार की आत्मा शुद्ध उपादान है। उसे प्रभुवाणी का श्रवण-रूप निमित्त मिला। उपादान शुद्ध होने पर निमित्त कथंचित् अशुद्ध हो, तो भी लाभप्रद हो जाता है। जैसे—गजसुकुमार की आत्मा शुद्ध उपादान होने से सोमिल विप्र—जैसा अशुद्ध निमित्त मिलने पर भी वह कार्यसाधक हो गया, गजसुकुमार को सिद्धि प्राप्त हो गई।

उपादान अशुद्ध हो और निमित्त भी अशुद्ध मिल जाय तो अनर्थ हो जाता है। श्रेणिक अन्तिम समय मे अपने पुत्र कोणिक का निमित्त पाकर नरक का अतिथि बना।

उपादान अशुद्ध हो और उसे शुभ निमित्त मिले तो भी कोई लाभ नही होता। गोशाला को भी वीतराग भगवान् की सगति मिली थी, फिर भी वह जीवन पर्यन्त उन्मार्गी रहा।

उपादान शुद्ध होने पर भी निमित्त कारण मिले बिना फल की उत्पत्ति नही होती। अवन्ध्या विधवा पुत्र को जन्म देने की योग्यता होने पर भी निमित्त के अभाव मे पुत्र का प्रसव नही कर सकती।

कुमार मेघ की बात सुनकर माता-पिता अतीव आनन्दित हुए, क्योंकि वे स्वय धर्मात्मा थे। भगवान् महावीर के भक्त थे। धर्मात्मा को धर्म प्रिय लगता है और अधर्मी को अधर्म ही सुहाता है। दोनों अपने स्वभाव मे दृढ होते हैं। अनादि काल से ऐसा होता आ रहा है और अनन्त काल तक यही क्रम चालू रहेगा।

माता पिता जब मेघ के धर्मश्रवण की सराहना कर चुके तो उसने कहा मैं आपकी अनुमति लेकर सयम अगीकार करना चाहता हूँ।

विशेष बोध—मेघकुमार वीतराग प्रभु की वाणी सुनकर अपूर्व आनन्द का अनुभव करने लगा। उसकी अन्तरात्मा दिव्य ज्योति मे झलमला उठी। पर्युपासना के पश्चात् उसने प्रभु के समक्ष जो निवेदन किया, वह उसके हृदय की ध्वनि थी। हृदय सत्य भगवान का घर है। उस घर का द्वार बन्द करके बोलना ही झूठ है। सन्त का हृदय सदा और सबके लिए खुला रहता है। इसी कारण मेघ का चित्त अनायास ही भगवान की ओर आकृष्ट हो गया।

मेघ ने कहा—प्रभो! मैं माता पिता की आज्ञा प्राप्त करके सयम ग्रहण करूंगा।

अधिकृत जनो की आज्ञा प्राप्त किये विना कोई व्यवहार शुद्ध नही कहलाता और साधना भी शुद्ध नही होती। आज्ञा मे आशीर्वाद की खुशबू रह, तभी साधना मे मधुर फलो का प्रादुर्भाव होता है।

भगवान् ने मेघकुमार को उत्तर मे कहा—अहा—सुहं ~।

सामान्य आत्मा लोभी हो सकता है किन्तु महात्मा लोभी नहीं होते। परमात्मा के निकट तो लोभ फटक भी नही सकता। इसी कारण प्रभु ने उत्तर दिया—जैसे सुख हो वैसा करो। अभिप्राय यह है कि यदि सयम मे सुख समझा है, उसमे रुचि उत्पन्न हुई है तो, सयम ग्रहण कर सकते हो।

सच्चा सुख संयम मे ही है, असंयम मे नहीं। असयम मे जो सुख प्रतीत होता है वह सुखाभास है। विषयवासनाओ के उदयकाल मे सुखाभास रहता है। विलासमय जीवन का सुख भविष्य में दुःख के रूप मे परिणत हो जाता है।

मेघकुमार ने जिन-देशना श्रवण करके संसार के स्वरूप को यथार्थ रूप मे समझ लिया है इस कारण उन्हे सयम मे ही सुख जान पड रहा है। भगवान् से यही उन्होने निवेदन किया है।

यथाविधि वन्दना-नमस्कार करके मेघ जिस मार्ग से गए थे,

उसी माग से लौटे और माता-पिता के भवन मे पहुँचे। माता-पिता के चरणों मे प्रणिपात करके बोले आज मैने श्रमण भगवान् महावीर का उपदेश सुना और वह मुझे अति प्रिय लगा है। रुचिकर हुआ है। इच्छा होती है कि बार-बार वह उपदेश सुनूँ।

मेघकुमार की आत्मा शुद्ध उपादान है। उसे प्रभुवाणी का श्रवण-रूप निमित्त मिला। उपादान शुद्ध होने पर निमित्त कथचित् अशुद्ध हो, तो भी लाभप्रद हो जाता है। जैसे—गजसुकुमार की आत्मा शुद्ध उपादान होने से सोमिल विप्र—जैसा अशुद्ध निमित्त मिलने पर भी वह कायसाधक हो गया, गजसुकुमार को सिद्धि प्राप्त हो गई।

उपादान अशुद्ध हो और निमित्त भी अशुद्ध मिल जाय तो अनर्थ हो जाता है। श्रेणिक अन्तिम समय मे अपने पुत्र कोणिक का निमित्त पाकर नरक का अतिथि बना।

उपादान अशुद्ध हो और उसे शुभ निमित्त मिले तो भी कोई लाभ नही होता। गोशाला को भी वीतराग भगवान् की सगति मिली थी, फिर भी वह जीवन पयन्त उन्मार्गी रहा।

उपादान शुद्ध होने पर भी निमित्त कारण मिले बिना फल की उत्पत्ति नही होती। अवन्ध्या विधवा पुत्र को जन्म देने की योग्यता होने पर भी निमित्त के अभाव मे पुत्र का प्रसव नही कर सकती।

कुमार मेघ की बात सुनकर माता-पिता अतीव आनन्दित हुए, क्योकि वे स्वय धर्मात्मा थे। भगवान महावीर के भक्त थे। धर्मात्मा को धम प्रिय लगता है और अधर्मी को अधम ही सुहाता है। दोनो अपने स्वभाव मे दृढ होते हैं। अनादि काल से ऐसा होता आ रहा है और अनन्त काल तक यही क्रम चालू रहेगा।

माता पिता जब मेघ के धमश्रवण की सराहना कर चुके तो उसने कहा मैं आपकी अनुमति लेकर सयम अगीकार करना चाहता हूँ।

वास्तविक वैराग्य उत्पन्न होने पर सासारिक बन्धनो के धागे टूटने लगते हैं। मोह माया के जाल मे सच्चा वैराग्य उलझता नही। वह ससार-सम्बन्ध से दूर-दूर हटता जाता है।

मोह की लीला देखो! धारिणी देवी एक क्षण पहले पुत्र के धर्मश्रवण की बात सुनकर धन्य-धन्य कह रही थी, किन्तु पुत्र ने जब सयम ग्रहण करने की आज्ञा मागी तो उनको इतना गहरा आघात लगा कि अपने को सभाल न सकी। पुत्र की ममता के समक्ष धर्म, जो पहले उपादेय लग रहा था, हेय-सा प्रतीत होने लगा। वास्तव मे मोह विवेक का प्रबल शत्रु है। जहाँ मोह का प्रसार होता है वहाँ विवेक को स्थान नही रहता।

यही कारण है कि मेघकुमार की सयम ग्रहण करने की इच्छा ज्ञात होते ही पुत्रवियोग की कल्पना से वह सहसा मूर्च्छित हो गई। पसीने से सारा शरीर तर हो गया। कितना कोमल हृदय!

शिथिल और अचेत तन में जब फिर से मूर्च्छा आई तो आंसू बहाने लगी। दीनतापूर्वक क्रन्दन करने लगी। आकुल-व्याकुल हो गई। आसुओ से कचुकी भीग गई। दु:ख से छाती भर गई। पुत्र के सम्मुख देखती हुई माता धारिणी ने पुत्र से जो कुछ कहा, उसे सूत्रकार ने आगे बतलाया है। (२८)।

मूलपाठ—तुम सि ण जाया! अम्ह एगे पुत्ते इट्ठे कते पिये मणुन्ने मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मुए बहुमए अणुमए भडकरडगसमाणे रयणे रयणभूए जीवियउस्सासए हिययाण-दजणणे उबरपुप्फ व दुल्लभे सवणयाए, किमग पुण पास-णयाए? णो खलु जाया! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्प-ओग सहित्तए। त भु जाहि ताव जाया! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वय जीवामो। तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहि परिणयवए वड्ढियकुल-वसततुकज्जमि निरा-

वयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए मु डिए भवित्ता-आगाराओ अणगारिय पव्वइस्ससि ।

तए ण से मेहे कुमारे अम्मापिऊहिं एव वुत्ते समाणे अम्मापियर एव वयासी—

तहेव ण त अम्मयाओ ! जहेव ण तुम्हे मम एव वदह-'तुमसि ण जाया ! अम्ह एगे पुत्ते, त चेव जाव निरावयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि'—एव खलु अम्मयाओ ! माणुस्सए भवे अधुवे अणियए असासए वसणसउवद्दवाभिभूते विज्जुलयाचचले अणिच्चे जजबुब्बुय-समाणे कुसग्गजल-बिंदुसन्निभे सझब्भरागसरिसे सुविण-दसणोवमे सडणपडणविद्धसणधम्मे पच्छा पुर च ण अवस्स-विप्पजहणिज्जे । से के ण जाणइ अम्मयाओ ! के पुव्वि गमणाए ? के पच्छा गमणाए ? त इच्छामि ण अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए ।

तए ण त मेह कुमार अम्मापियरो एव वयासी—

इमाओ ते जाया ! सरिसियाओ सरिसत्तयाओ सरि-सव्वयाओ सरिसलावन्नरूवजोव्वणगुणोववेयाओ सरि-सेहिंतो रायकुलेहिंतो आणियल्लियाओ भारियाओ । त भु जाहि ण जाया ! एताहि सद्धि विपुले माणुस्सए काम-भोगे । तओ पच्छा भुत्तभोगे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि ।

तए ण से मेहे कुमारे अम्मापियर एव वयासी—तहेव ण अम्मयाओ ! ज ण तुब्भे मम एव वयह—'इमाओ ते जाया ! सरिसियाओ जाव समणस्स भगवओ महावीरस्स

पव्वइस्ससि'—एव खलु अम्मयाओ ! माणुस्सगा कामभोगा असुई असासया वतासवा पित्तासवा खेलासवा सुक्कासवा सोणियासवा दुरुस्सासनीसासा दुरुवमुत्तपुरीसपूय-बहुपडि-पुन्ना उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाणगवतपित्तसुक्क-सोणितसभवा अधुवा अणियया असासया सडणपडणविद्ध-सणधम्मा पच्छा पुर च ण अवस्सविप्पजहणिज्जा । से के ण अम्मयाओ ! जाणति के पुव्वि गमणाए ? के पच्छा गम-णाए ? त इच्छामि ण अम्मयाओ ! जाव पव्वइत्तए ।

तए ण त मेह कुमार अम्मापियरो एव वयासी—

इमे ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहु हिरण्ण य, सुवण्ण य, कसे य, दूसे य, मणिमोत्तिए य, सख-सिल-प्पवाल-रत्त-रयण-सतसारसावतिज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ पगाम दाउ, पगाम भोत्तु, पगाम परिभाएउ, त अणुहोहि ताव जाव जाया ! विपुल माणुस्सग इड्ढिसक्कारसमुदय, तओ पच्छा अणुभूयकल्लाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए पव्वइस्ससि ।

तए ण से मेहे कुमारे अम्मापियर एव वयासी—

तहेव ण अम्मयाओ ! ज ण त वदह—'इम ते जाया ! अज्जग पज्जग- पिउपज्जगागए जाव तओ पच्छा अणुभू-यकल्लाणे पव्वइस्ससि'—एव खलु अम्मयाओ ! हिरण्णे य सुवण्णे य जाव सावतेज्जे अग्गिसाहिए चोरसाहिए राय-साहिए दाइयसाहिए मच्चुसाहिए, अग्गिसामन्ने जाव मच्चुसामन्ने, सडणपडणविद्धसणधम्मे पच्छा पुर च ण अवस्सविप्पजहणिज्जे । से के ण जाणइ अम्मयाओ ! के जाव गमणाए ? त इच्छामि ण जाय पव्वइत्तए । (२६)

मूलाथ—हे पुत्र ! तू हमारा इकलौता बेटा है। तू हमे इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मणाम है तथा धैय और विश्वास का स्थान है। काय करने मे सम्मत है, बहुत कार्यों मे वहुत माना हुआ है और काय करने के पश्चात् भी अनुमत है। आभूषणो की पेटी के समान है। मनुष्य जाति मे उत्तम होने के कारण रत्न है, रत्नरूप है। जीवन के उच्छ्वास के समान है। हमारे हृदय मे आनन्द उत्पन्न करने वाला है। गूलर के फूल के समान तेरा नामश्रवण भी दुलभ है तो फिर दशन की तो बात ही क्या है !

हे पुत्र ! हम क्षण भर के लिए भी तेरा वियोग नही सहन करना चाहते। अतएव हे पुत्र ! जब तक हम जीवित हैं तब तक मनुष्य-सम्बन्धी विपुल कामभोगो का भोगो। जब हम कालगत हो जाएँ और तू परिपक्व उम्र का हो जाय—तेरी युवावस्था पूर्ण हो जाय, जब सासारिक कार्यों की अपेक्षा न रहे, उस समय तू श्रमण भगवान् महावीर क पास मुण्डित होकर, गृहस्थी का त्याग करके प्रव्रज्या अंगीकार कर लेना।

तत्पश्चात्—माता पिता के द्वारा इस प्रकार कहने पर मेघकुमार ने माता पिता से इस प्रकार कहा—

हे माता पिता ! आप मुझसे यह जो कहते हैं कि—हे पुत्र ! तू हमारा इकलौता पुत्र है, इत्यादि सब पूर्ववत् कह लेना चाहिए, यावत् सासारिक कार्यों से निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप प्रव्रजित होना, सो ठीक है परन्तु माता-पिता ! यह मनुष्यभव ध्रुव नही है, अर्थात् सूर्योदय के समान नियत समय पर पुन पुन प्राप्त होने वाला नही है, नियत नही है, अर्थात् इस जीवन मे उलट-फेर होते रहते हैं आशाश्वत है अर्थात् क्षणविनश्वर है, सैकड़ों सकटो एव उपद्रवा से व्याप्त है, विजली की चमक के समान चचल है, अनित्य है जल के बुलबुले के समान है, दूब की नोक पर लटकने वाले जलविन्दु के समान है सन्ध्यासमय मे वादलो के सदृश है,

पव्वइस्ससि'—एव खलु अम्मयाओ ! माणुस्सगा कामभोगा असुई असासया वतासवा पित्तासवा खेलासवा सुक्कासवा सोणियासवा दुरुस्सासनीसासा दुरूवमुत्तपुरीसपूय-बहुपडि-पुन्ना उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाणगवतपित्तसुक्क-सोणितसभवा अधुवा अणियया असासया सडणपडणविद्ध-सणधम्मा पच्छा पुर च ण अवस्सविप्पजहणिज्जा । से के ण अम्मयाओ ! जाणति के पुव्वि गमणाए ? के पच्छा गम-णाए ? त इच्छामि ण अम्मयाओ ! जाव पव्वइत्तए ।

तए ण त मेह कुमार अम्मापियरो एव वयासी—

इमे ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहु हिरण्ण य, सुवण्ण य, कसे य, दूसे य, मणिमोत्तिए य, सख-सिल-प्पवाल-रत्त-रयण-सतसारसावतिज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ पगाम दाउ, पगाम भोत्तु, पगाम परिभाएउ, त अणुहोहि ताव जाव जाया ! विपुल माणुस्सग इड्ढिसक्कारसमुदय, तओ पच्छा अणुभूयकल्लाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए पव्वइस्ससि ।

तए ण से मेहे कुमारे अम्मापियर एव वयासी—

तहेव ण अम्मयाओ ! ज ण त वदह—'इम ते जाया ! अज्जग पज्जग- पिउपज्जगागए जाव तओ पच्छा अणुभू-यकल्लाणे पव्वइस्ससि'—एव खलु अम्मयाओ ! हिरण्णे य सुवण्णे य जाव सावतेज्जे अग्गिसाहिए चोरसाहिए राय-साहिए दाइयसाहिए मच्चुसाहिए, अग्गिसामन्ने जाव मच्चुसामन्ने, सडणपडणविद्धसणधम्मे पच्छा पुर च ण अवस्सविप्पजहणिज्जे । से के ण जाणइ अम्मयाओ ! के जाव गमणाए ? त इच्छामि ण जाव पव्वइत्तए । (२६)

मूलार्थ—हे पुत्र ! तू हमारा इकलौता बेटा है। तू हमे इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मणाम है तथा धैर्य और विश्वास का स्थान है। कार्य करने मे सम्मत है, बहुत कार्यों मे बहुत माना हुआ है और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है। आभूषणो की पेटी के समान है। मनुष्य जाति मे उत्तम होने के कारण रत्न है, रत्नरूप है। जीवन के उच्छ्वास के समान है। हमारे हृदय मे आनन्द उत्पन्न करने वाला है। गूलर के फूल के समान तेरा नामश्रवण भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन की तो बात ही क्या है !

हे पुत्र ! हम क्षण भर के लिए भी तेरा वियोग नही सहन करना चाहते। अतएव हे पुत्र ! जब तक हम जीवित हैं तब तक मनुष्य-सम्बन्धी विपुल कामभोगो को भोगो। जब हम कालगत हो जाएँ और तू परिपक्व उम्र का हो जाय—तेरी युवावस्था पूर्ण हो जाय, जब सासारिक कार्यों की अपेक्षा न रहे, उस समय तू श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित होकर, गृहस्थी का त्याग करके प्रव्रज्या अगीकार कर लेना।

तत्पश्चात्—माता पिता के द्वारा इस प्रकार कहने पर मेघकुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—

हे माता पिता ! आप मुझसे यह जो कहते हैं कि—हे पुत्र ! तू हमारा इकलौता पुत्र है इत्यादि सब पूर्ववत् कह लेना चाहिए, यावत् सांसारिक कार्यों से निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप प्रव्रजित होना, सो ठीक है, परन्तु माता-पिता ! यह मनुष्यभव ध्रुव नहीं है, अर्थात् सूर्योदय के समान नियत समय पर पुन पुन प्राप्त होने वाला नही है, नियत नही है, अर्थात् इस जीवन मे उलट-फेर होते रहते हैं, अशाश्वत है अर्थात् क्षणविनश्वर है, सैकडो संकटो एव उपद्रवो मे व्याप्त है, बिजली की चमक के समान चचल है, अनित्य है, जल के बुलबुले के समान है, दूब की नोक पर लटकने वाले जलबिन्दु के समान है सन्ध्यासमय मे बादलो के सदृश है,

स्वप्नदर्शन के समान है—अभी है और अभी नहीं है, कुष्ठ आदि से सड़ने, तलवार आदि से कटने और क्षीण होने के स्वभाव वाला है तथा आगे या पीछे अवश्य ही त्याग करने योग्य है। हे माता पिता! कौन जानता है कि पहले कौन जाएगा (मरेगा) और कौन पीछे जाएगा? अतएव हे माता-पिता! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके श्रमण भगवान् महावीर के निकट यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।

तत्पश्चात् माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—

हे पुत्र! ये तुम्हारी भार्याएं समान शरीर वाली, समान त्वचा वाली, समान वय वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन और गुणों से युक्त हैं तथा समान राजकुलो से लाई हुई हैं। अतएव हे पुत्र! इनके साथ विपुल मनुष्यसम्बन्धी भोग भोगो। तदनन्तर भुक्तभोगी होकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप यावत् दीक्षा लेना।

तब मेघकुमार ने माता पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता! आप मुझे यह जो कहते हैं कि—'हे पुत्र, तेरी ये भार्याएं समान शरीर वाली हैं, इत्यादि, यावत् इनके साथ भोग भोगकर (बाद मे) श्रमण भगवान् महावीर के समीप दीक्षा ले लेना', सो ठीक है, किन्तु हे माता-पिता! मनुष्यों के यह कामभोग अर्थात् कामभोग के आधारभूत मनुष्यो के ये शरीर अशुचि हैं, अशाश्वत हैं, वमन को झराने वाले, पित्त को झराने वाले, कफ को झराने वाले, शुक्र को झराने वाले तथा शोणित को झराने वाले हैं, गंदे उच्छ्वास-निश्वास वाले हैं खराब मूत्र मल और पीव से परिपूर्ण हैं। मल, मूत्र, कफ, नासिकामल, वमन, पित्त शुक्र और शोणित से उत्पन्न होने वाले हैं। ये ध्रुव नहीं, नियत नहीं, शाश्वत नहीं हैं। सड़ने, पड़ने और विध्वस्त होने के स्वभाव वाले हैं और पहले या पीछे अवश्य ही त्याग करने योग्य हैं। हे माता पिता! कौन जानता है कि पहले कौन

जाएगा और पीछे कौन जाएगा ? अतएव हे माता पिता ! मैं अभी दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ ।

तत्पश्चात् माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा – हे पुत्र ! तुम्हारे पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह से आया हुआ यह बहुत सा हिरण्य, स्वण, कासा, दूष्य, मणि, मोती, शख, सिला, मू गा, लाल रत्न आदि सारभूत द्रव्य विद्यमान है। यह इतना है कि सात पीढियो तक भी समाप्त न हो। इसका तुम खूब दान करो, स्वय भोग करो और बटवारा करो। हे पुत्र ! यह जितना मनुष्य-सम्बधी ऋद्धि-सत्कार का समुदाय है उतना सब तुम भोगो। उसके बाद अनुभूत कल्याण होकर तुम श्रमण भगवान् महावीर के समीप दीक्षा ग्रहण कर लेना।

तब मेघकुमार ने माता-पिता से कहा—हे माता-पिता ! आप जो कहते हैं सो ठीक है कि—'हे पुत्र ! दादा पडदादा और पिता के पडदादा से आया हुआ यावत् उत्तम द्रव्य है, इसे भोगो और फिर अनुभूतकल्याण होकर दीक्षा ले लेना, परन्तु हे माता-पिता ! यह हिरण्य, सुवण यावत् स्वापतेय (द्रव्य) सब अग्निसाध्य है—इसे आग भस्म कर सकती है चोर चुरा सकता है, राजा अपहरण कर सकता है, हिस्सेदार बँटवारा करा सकता है और मृत्यु आने पर वह अपना नहीं रहता है। इसी प्रकार यह द्रव्य अग्नि के लिए समान है, अर्थात् द्रव्य जैसे उसके स्वामी का है उसी प्रकार अग्नि का भी है और इसी तरह चोर, राजा, भागीदार और मृत्यु के लिए भी सामान्य है। यह सडने, पडने और विध्वस्त होने के स्वभाव वाला है। (मरण के) पश्चात् या पहले अवश्य त्याग करने योग्य है। हे माता पिता ! किसे ज्ञात है कि पहले कौन जाएगा और पीछे कौन जाएगा ? अतएव मैं यावत् दीक्षा अगीकार करना चाहता हूँ ॥ (२९)

विशेष बोध—माता-पिता और पुत्र का यह सवाद वस्तुत राग

और वैराग्य का संवाद है। जीव की परिणतियां कितनी विचित्र होती हैं और उन परिणतियों के कारण विचार की दिशाएं कितनी विभिन्न हो जाती हैं, यह समझने के लिए यह संवाद बहुत सहायक है।

मोह कामभोगों के पंक में फंसाना चाहता है, वैराग्य उससे दूर भागने की प्रेरणा देता है।

माता-पिता एक के बाद दूसरे प्रलोभन का जाल फैलाते हैं मगर मेघकुमार उन सब को छिन्न-भिन्न करता जाता है। भगवान् महावीर की देशना ने उसकी दृष्टि बदल दी है। उसकी विचारधारा ने एक नयी ही दिशा पकड़ ली है। उसका वस्तुस्वरूप को समझने का ढंग बाहरी नहीं रहा, भीतरी हो गया है। उसकी दृष्टि मर्म तक पहुंचने लगी है। वह यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाकर अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर रहा है।

माता-पिता ने कहा—पुत्र! तुम हमारे नयनों का तारा है, जीवन का एक मात्र सहारा है, तू हमारा कलेजा है। तू ही हमारा सब कुछ है। रत्न है, रत्न के समान है।

रत्न' का अर्थ साधारण जन हीरा मोती समझते हैं। किन्तु उसका वास्तविक अर्थ है—उत्तम। जो वस्तु अपनी जाति में उत्कृष्ट होती है, वह उसमें 'रत्न' कहलाती है। श्रेष्ठतम नारी को नारीरत्न एवं श्रेष्ठतम पुरुष को पुरुषरत्न कहा जाता है। भारत में श्रेष्ठतम समझे जाने वाले को भारत सरकार 'भारतरत्न' की उपाधि से विभूषित करती है।

अगर इस अर्थ को बराबर ध्यान में रक्खा जाय तो अनेक स्थलों पर आने वाले रत्नों के कथन से भ्रान्ति न हो।

मेघकुमार को उसके माता ने इसी अर्थ में रत्न कहा है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह कोई निर्जीव पदार्थ है। मानवजाति में श्रेष्ठ

होने के कारण वह रत्न है और पुत्रों मे उत्तम होने से वह पुत्र-रत्न है।

मेघकुमार को उदुम्बर पुष्प की भी उपमा दी गई है। ऊमर का वृक्ष प्रसिद्ध है। अजीर के फल जैसे उसके फल लगते हैं। किन्तु कहा जाता है कि उसके फूल होते ही नही। इस वृक्ष मे फल बहुत होते हैं और प्राय सदा लगे रहते हैं। सभी ऋतुओ मे पुराने फल पकते और गिरते रहते हैं और नये-नये पैदा होते रहते हैं। सभवत इसी कारण ऊमर वृक्ष के सदा सूतक माना जाता है। सार यह कि फलो की बहुतायत होने पर भी फूलो का दिखाई न देना, इस वृक्ष की विशेषता है। इसी विशेषता के कारण मेघकुमार को गूलर के पुष्प की उपमा दी गई है, जिसका दृष्टिगोचर होना कठिन होता है।

मेघकुमार की माता कहती है—बेटा! हमारे जीवित रहते सयम नही अगीकार करना। हम तुझे एक क्षण भर के लिए भी अलग नही होने देना चाहते।

ज्ञानियो का कथन है कि जब तक जरा घेरा न डाले, व्याधि न सतावे, इन्द्रिया क्षीण न हो, शरीर सशक्त और सुदृढ हो, तब तक धर्माराधना करलो।[1] बुढापे मे क्या बन पाएगा?

किन्तु मोहग्रस्त माता-पिता इससे उलटा ही कहते हैं—तू अभी दीक्षित न हो, भोग विलास करते-करते जब तेरा शरीर थक जाय, इन्द्रिया बेकाम हो जाए और जीवन मे जब सन्ध्या फूट पड़े, तब धर्माचरण करना।

---

१ जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ।
जाविन्दिया न हायन्ति, ताव धम्मं समायरे।

—दशव० अ० ८

हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थप्रवचन सत्य (सत्पुरुषो के लिए हितकारी) है, अनुत्तर (सर्वोत्तम) है, कैवलिक (सर्वज्ञकथित अथवा अद्वितीय) है, प्रतिपूर्ण अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने वाले गुणा से परिपूर्ण है, नैयायक अर्थात् न्याययुक्त या मोक्ष की ओर ले जाता है, सशुद्ध अर्थात् सर्वथा निर्दोष है, शल्यकर्त्तन अर्थात माया आदि शल्यो का विनाश करने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्ति का माग (पापो के नाश का उपाय) है, निर्याण (सिद्धि क्षेत्र) का माग है, निर्वाण का माग है और समस्त दु खा का पूर्णरूपेण नष्ट करने का माग है।

जैसे सप अपने भक्ष्य को ग्रहण करने मे निश्चल दृष्टि रखता है, उसी प्रकार इस प्रवचन मे दृष्टि निश्चल रखनी पडती है। यह छुरा के समान एक धार वाला है, अर्थात् इसमे दूसरी धार के समान अपवाद रूप क्रियाओ का अभाव है। इस प्रवचन के अनु-सार चलना लोहे के जौ चबाना है। यह रेत के कवल के समान स्वादहीन है—विषयसुख से रहित है। इसका पालन करना गगा नामक महानदी के पूर मे सामने तैरने के समान कठिन है। भुजाआ से महासमुद्र को पार करना है। तीखी तलवार पर आक्रमण करने के समान है। महाशिला—जैसे भारी वस्तुओ को सूत्र मे बाधने के समान है। तलवार की धार पर चलने के समान है।

हे पुत्र ! निग्रन्थ श्रमणो को आधाकर्मी, औद्देशिक, क्रीतकृत (खरीद कर बनाया हुआ), स्थापित (साधु के लिए रख छोडा हुआ), रचित (मोदक आदि के चूर्ण को पुन साधु के लिए मोदक रूप मे तैयार किया हुआ), दुर्भिक्षभक्त (साधु के निमित्त दुर्भिक्ष के समय बनाया गया भोजन), कान्तारभक्त (साधु के लिए अरण्य मे बनाया भोजन), वर्दलिकाभक्त (वर्षा के समय उपाश्रय मे आकर बनाया भोजन), ग्लानभक्त (रुग्ण गृहस्थ नीरोग होने की कामना से दे, वह भोजन), आदि दूषित आहार ग्रहण करना नही कल्पता है।

इसी प्रकार मूल का भोजन, कन्द का भोजन, फल का भोजन, शालि आदि बीजो का भोजन और हरित का भोजन करना भी नही कल्पता है।

इसके अतिरिक्त, हे पुत्र! तू सुख भोगने योग्य है, दुःख सहने योग्य नही है। तू शीत को सहन करने मे समर्थ नही है। उष्ण को सहने मे समर्थ नही है। तू भूख नही सह सकता, प्यास नहीं सह सकता। वात पित्त कफ और सन्निपात के होने वाले विविध रोगो (कुष्ठ आदि) को तथा आतको (अचानक मरण उत्पन्न करने वाले शूल आदि) को, ऊचे नीचे इन्द्रिय-प्रतिकूल वचनो को, उत्पन्न हुए बाईस परीषहो और उपसर्गो को सम्यक् प्रकार सहन नही कर सकता। अतएव हे लाल! तू मनुष्यसम्बन्धी कामभोगो को भोग। बाद मे भुक्तभोगी होकर श्रमण भगवान् महावीर के निकट प्रव्रज्या अगीकार करना।

तब माता पिता के इस प्रकार कहने पर मेघकुमार ने कहा—हे माता-पिता! आप मुझे जो यह कहती हैं, सो ठीक है कि—'हे पुत्र! यह निर्ग्रन्थप्रवचन सत्य है, सर्वोत्तम है, इत्यादि पूर्वकथन यहा दोहरा लेना चाहिए—यावत बाद मे भुक्तभोगी होकर प्रव्रज्या अगीकार कर लेना— परन्तु हे माता-पिता! यह निर्ग्रन्थप्रवचन क्लीव—हीन सहनन वाले, कायर—चित्त की स्थिरता से रहित, कुत्सित, इस लोकसम्बधी विषयसुख की अभिलाषा करने वाले, परलोक के सुख की अभिलाषा न करने वाले सामान्य जन के लिए ही दुष्कर है। धीर एव दृढ़-सकल्प पुरुष को इसका पालन करना कठिन नही है। अतएव हे माता पिता! आपकी अनुमति पाकर मैं श्रमण भगवान् महावीर के समीप प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ। (३०)

**विशेष बोध**—भोग और योग का विरोध त्रैकालिक है। इनका फल भी एक दूसरे से विरोधी है—

भोगी भमइ ससारे,
अभोगी नोवलिप्पई। —उत्तराध्ययन सूत्र,

विकारी और व्यसनी का ससार अर्थात् जन्म मरण बढता है, जब कि सयममय एव त्यागमय जीवन निमल बनता है। मेघ इस बात को समझ गया था। फिर वह भोगमय जीवन को कैसे अगीकार किये रहता ?

मेघ का मत बदलने के लिए उसके माता-पिता ने कोई कसर बाकी नही रक्खी। प्रज्ञापना, सज्ञापना, विज्ञापना आदि जो भी तरीके हो सकते थे, सभी काम मे लिए। मगर मेघकुमार ने उन सब का युक्तिपूवक निरसन कर दिया। वह किसी भी प्रलोभन के पाश मे नही फसा।

निराश होकर माता-पिता ने सयम के प्रति भय उत्पन्न करने का प्रयत्न किया।

धर्मानुरागी भी जब इसप्रकार मोह-पाश मे फँसकर सयमपालन जैसे विशुद्ध धमकाय मे रोडे अटकाते हैं, तब पानी मे आग लगी समझना चाहिए। किन्तु मोह की गति अति गहन है। वह विवेक-वान् को भी अविवेकी बना देता है।

आजकल भी कई वैरागियों के सबधी जन उनको कष्ट दे-देकर दीक्षा से रोकने का प्रयत्न करते हैं। सब ऐसे नहीं होते, किन्तु ऐसे होते अवश्य हैं।

बिना सरक्षक की अनुमति प्राप्त किये दीक्षा न देना, यह जैन-परम्परा है। जो सुलभबोधि होते हैं, वे समय पर सरल भाव से अनुमति दे देते हैं, किंतु दुलभबोधि जब लडते झगडते थक जाते हैं, तब विवश होकर आज्ञा देते हैं।

यह ठीक है कि गुरु का पद कुछ सामान्य नही है। उसके लिए गहरा अनुभव, शास्त्रार्थ का तलस्पर्शी ज्ञान और विशुद्ध चारित्र अपेक्षित है। जो अपनी साधना को निर्विघ्न रूप से चालू रखकर

दूसरे की साधना मे सहायक हो सके, वही गुरु पद का अधिकारी है। आज अधिकारी अनधिकारी का विचार नही किया जाता। फिर भी जब कोई मुमुक्षु सच्चे गुरु पद के अधिकारी साधक की शरण में रह कर आत्मसाधना करना चाहता हो तो उसमे बाधक बनना उचित नही है।

श्रेणिक राजा और धारिणी रानी साधु के आचार से भलीभाति परिचित जान पडते हैं। इसी कारण वे कहते हैं—पुत्र ! निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य है, सर्वोत्कृष्ट है, अद्वितीय है, प्रतिपूर्ण है, न्यायसगत है, संशुद्ध है, सब कुछ है, परन्तु उसका पालन करना बहुत कठिन है। मानो लोहे के चने चबाना है।

आधाकर्मी, औद्देशिक, क्रीतकृत, स्थापित, रचित, दुर्भिक्षभक्त, कान्तारभक्त, वदलिकाभक्त एव ग्लानभक्त साधु को लेना नही कल्पता।

इतनी सब जानकारी साधु के साथ समागम के बिना उस समय होना कठिन है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि श्रेणिक राजा साधु-सन्तो का भक्त था और उनकी सगति करता था। वह उत्सर्ग-अपवादनीति का ज्ञाता था।

श्रेणिक पहले जैनमार्ग का अनुयायी नही था। बौद्धधर्म पर उसकी आस्था थी। महारानी चेलना के सम्पर्क से उसने जैनधर्म को समझा और उसे अगीकार किया। फिर तो वह जैनधर्म का कट्टर अनुयायी हो गया।

हां, तो मेघकुमार के माता-पिता उसे भयभीत करने के लिए कहते हैं—क्षुधा पिपासा, शीत, उष्ण आदि परिषह बाईस हैं और समय-समय पर साधु को इन्हें सहन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त नाना प्रकार के उपसर्ग भी सहने पडते हैं। साधु के शरीर मे नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, तो उनकी पीडा भी समभाव से सहन करनी पडती है। हे पुत्र ! तू सुख मे पला, सुख मे बढा,

सुख मे रहा और अब तक सुख मे जी रहा है। तूने कभी दुःख की छाया भी नहीं देखी। तेरा मृदुल शरीर कष्टसाध्य साधुचर्या का निर्वाह किस प्रकार करेगा ?

मेघकुमार शान्ति के साथ माता-पिता के कथन को सुनता रहा। जब उनका कथन समाप्त हो गया तो बोला—आप स्वीकार करते हैं कि निग्रन्थ प्रवचन सत्य, सवश्रेष्ठ, और मुक्ति प्रापक है, फिर उस प्रवचन की आराधना करने से मुझे रोकते क्यो हैं ? श्रद्धाहीन और शक्तिहीन जनो के लिए ही वह दुरनुचर हो सकता है। कायर नर सयम का पालन नहीं कर सकते। सयम का आराधन करना आत्मा का मोहादि कम शत्रुओ के साथ सग्राम करना है। सग्राम के मदान से हीजडे भागते हैं, वीर पुरुष नही।

सूरा चढ़ सग्राम में, फिर पाछे मत जोय।
उतर पडो मदान मे, होनी हो सो होय॥

केशलुचन करना, भूख-प्यास सहन करना, वासनाओ का दमन करना कषायो का उपशम करना, जगत् के समस्त प्राणियो पर आत्मीयता का भाव विकसित करना, इच्छाओ के वशीभूत न होना, तपश्चर्या करना आदि कठिन अवश्य हैं, मगर शूर वीर धीर पुरुष के लिए कठिन क्या है ? ज्ञानीजन मानव जीवन की सवश्रेष्ठ सफलता सयम पालन में ही मानते हैं। सयम मे श्रद्धा और रुचि जागृत हो जाने पर एसी सुख शाति की अनुभूति होती है, जो स्वग मे देवो को भी प्राप्त नही हो सकती। अतएव माता पिता ! मुझे अनुमति प्रदान कीजिए। मैं श्रमण भगवान् महावीर के समीप प्रव्रज्या अगीकार करके सयम का पालन करना चाहता हूँ॥ (२०)

# राज्याभिषेक

मूलपाठ—तए ण त मेह कुमार अम्मापियरो जाहे नो सचाइति बहूहि विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहि य आघवणाहि य पन्नवणाहि य सन्नवणाहि य विन्नवणाहि य आघवित्तए वा, पन्नवित्तए वा, सन्नवित्तए वा, विन्नवित्तए वा, ताहे अकामए चेव मेह कुमार एव वयासी—

इच्छामो ताव जाया ! एगदिवसमवि ते रायसिरिं पासित्तए ।

तए ण सेणिए राया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! मेहस्स-कुमारस्स महत्थ महग्घ महरिह विउल रायाभिसेय उवट्ठवेह ।

तए ण ते कोडु बियपुरिसा जाव तहेव उवट्ठवेन्ति ।

तए ण सेणिए राया बहूहि गणणायगदडणायगेहि य जाव सपरिवुडे मेहकुमार अट्ठसएण सोवन्नियाण कलसाण, एव रुप्पमयाण कलसाण, सुवण्णरुप्पमयाण कलसाण, मणिमयाण कलसाण, सुवण्णमणिमयाण कल-साण, रुप्पमणिमयाण कलसाण, सुवण्ण—रुप्प मणिमयाण कलसाण, भोमेज्जाण कलसाण, सव्वोदएहि, सव्वमट्टियाहि, सव्व-पुप्फेहि, सव्वगधेहि, सव्वमल्लेहि, सव्वोसहिहि य सिद्धत्यए-हि य, सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए सव्ववलेण जाव दु दुभिनिग्घो-सणादियरवेण महया महया रायाभिसेएण अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता करयल जाव कट्टु एव वयासी—

जय जय णदा ! जय जय भद्दा ! जय णदा० ! भद्द ते, अजिय जिणेहि, जिय पालयाहि, जियमज्झे वसाहि, अजिय जिणेहि सत्तुपक्ख, जिय च पालेहि मित्तपक्ख, जाव भरहो इव मणुयाण रायगिहस्स नगरस्स अन्नेसि च बहूण गामागरनगर जाव सनिवेसाण आहेवच्च जाव विहराहि त्ति कट्टु जय-जयसद्द पउजति ।

तए ण से मेहे राया जाए महया जाव विहरइ। (३२)

तए ण तस्स मेहस्स रण्णो अम्मापियरो एव वयासी—भण जाया ! कि दलयामो ? कि पयच्छामो ! कि वा ते हियच्छिए सामत्थे (मते) ?

तए ण से मेहे राया अम्मापियरो एव वयासी—इच्छामि ण अम्मयाओ ! कुत्तियावणाओ रयहरण पडिग्गह च उवणेह, कासवय च सद्दावेह ।

तए ण से सेणिए राया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ । सद्दावेत्ता एव वयासी—गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! सिरिघराओ तिन्नि सयसहस्साइ गहाय दोहि सयसहस्सेहिं कुत्तियावणाओ रयहरण पडिग्गहग च उवणेह, सयसहस्सेण कासवय सद्दावेह ।

तए ण ते कोडु बियपुरिसा सेणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा सिरिघराओ तिन्नि सयसहस्साइ गहाय कुत्तियावणाओ दोहि सयसहस्सेहि रयहरण पडिग्गह च उवणेन्ति, सयसहस्सेण कासवय सद्दावेंति ।

तए ण से कासवए तेहि कोडु बियपुरिसेहि सद्दाविए समाणे हट्ठे जाव हियए ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-

मगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइ वत्थाइ मगलाइ पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालकियसरीरे जेणेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणिय राय करयलमजलि कट्टु एव वयासी—सदिसह ण देवाणुप्पिया ! ज मए करणिज्ज ।

तए ण से सेणिए राया कासवय एव वयासी—गच्छाहि ण तुम देवाणुप्पिया ! सुरभिणा गधोदएण णिक्के हत्थपाए पक्खालेह । सेयाए चउप्फालाए पोत्तीए मुह वधेत्ता मेहस्स कुमारस्स चउरगुलवज्जे णिक्खमण-पाउग्गे अग्गकेसे कप्पेहि । (३२)

मूलार्थ—तत्पश्चात् जब माता-पिता मेघकुमार को विषयो के अनुकूल और विषयो के प्रतिकूल बहुत-सी आख्यापना, प्रज्ञापना, सज्ञापना और विज्ञापना से समझाने, बुझाने, सबोधन करने और विज्ञप्ति करने मे समर्थ न हुए, तब इच्छा के विना भी मेघकुमार से इस प्रकार बोले—हे पुत्र ! हम एक दिन भी तुम्हारी राज्य लक्ष्मी देखना चाहते हैं, अर्थात् हमारी इच्छा है कि तुम एक दिन के लिए भी राजा बन जाओ।

तत्पश्चात् मेघकुमार माता-पिता (की इच्छा) का अनुसरण करता हुआ मौन रह गया।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों (सेवकों) को बुलवाया और बुलवा कर कहा—हे देवानुप्रियो ! मेघकुमार का महान् अर्थ वाला, बहुमूल्य एव महान् पुरुषो के योग्य राज्याभिषेक (के योग्य सामग्री) तैयार करो।

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् उसी प्रकार सब सामग्री तैयार की।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने बहुत-से गणनायको एव दण्डनायको आदि से परिवृत होकर मेघकुमार को एक सौ आठ सुवर्णकलशों से,

इसी प्रकार एक सौ आठ चादी के कलशो से, एक सौ आठ सुवण-रजत के कलशो से, एक सौ आठ मणिमय कलशा से, एक सौ आठ सुवण-मणि के कलशो से, एक सौ आठ रजत-मणि के कलशा से, एक सौ आठ सुवण-रजत-मणि के कलशो से और एक सौ आठ मिट्टी के कलशो से, (कलशो मे भरे हुए) सव (तीर्थों के) जल से, सव प्रकार की मृत्तिका से, सव प्रकार के पुष्पा से, सव प्रकार के गधा से, सव प्रकार की मालाओ से, सव प्रकार की औपधियो से तथा सरसो से उन्हे परिपूर्ण करके सव समृद्धि, द्युति तथा सव सैन्य के साथ, दुदुभि के निर्घोष की प्रतिध्वनि के शब्दो के साथ उच्चकोटि के राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषेक करके श्रेणिक राजा ने दोनो हाथ जोडकर यावत् इस प्रकार कहा—

हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे जगनन्दन (जगत् को आनन्द देने वाले) तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो। तुम न जीते हुए को जीतो और जीते हुए का पालन करो। जित-आचारवानो के मध्य मे निवास करो। नही जीते शत्रु-पक्ष को जीतो। जीते हुए मित्रपक्ष का पालन करो। यावत् मनुष्यों मे भरत चक्री की तरह राजगृह का तथा दूसरे बहुत-से ग्रामा, आकरो, नगरो यावत् सनिवेशा का आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण करो।

इस प्रकार कहकर श्रेणिक राजा ने जय-जय शब्द किया।

तत्पश्चात् मेघ राजा हो गया और पर्वतो मे महाहिमवन्त की तरह शोभा पाता हुआ विचरने लगा।

तत्पश्चात् माता-पिता ने राजा मेघ से इस प्रकार कहा—हे पुत्र ! बताओ, तुम्हारे किस अनिष्ट को दूर करें अथवा तुम्हारे इष्ट जनों को क्या दें ? तुम्हें क्या दें ? तुम्हारे चित्त मे क्या चाह-विचार है ?

तब राजा मेघ ने माता पिता से इस प्रकार कहा—हे माता पिता ! मैं चाहता हूँ कि कुत्रिकापण (जिसमें सब जगह की सब

वस्तुएं मिलती हैं उस अलौकिक दुकान) से रजोहरण और पात्र मँगवा दो और काश्यप (नापित) को बुलवा दो।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा देवानुप्रियो! तुम जाओ, श्रीगृह (भडार) से तीन लाख स्वण मोहरें लेकर दो लाख देकर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र ले आओ तथा एक लाख देकर नाई को बुला लाओ।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुप राजा श्रेणिक के ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट होकर श्रीगृह से तीन लाख मोहरें लेकर कुत्रिकापण से दो लाख से रजोहरण और पात्र लाये और एक लाख से उन्होंने नाई को बुलाया।

कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाया गया वह नाई हृष्ट-तुष्ट यावत् आनन्दितहृदय हुआ। उसने स्नान किया, बलिकम (गृहदेवता का पूजन) किया, मषी तिलक आदि कौतुक, दही-दूर्वा आदि मगल एव दुस्वप्न का निवारणरूप प्रायश्चित्त किया। साफ और राजसभा मे प्रवेश करने योग्य मागलिक और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किए। थोडे और बहुमूल्य आभूषणो से शरीर को विभूषित किया। फिर जहा श्रेणिक राजा था वहाँ आया। आकर दोनो हाथ जोडकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय! मुझे जो करना है, उसकी आज्ञा दीजिए!

तब श्रेणिक राजा ने नाई से इस प्रकार कहा - हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और सुगधित गन्धोदक से अच्छी तरह हाथ पैर धोओ। फिर चार तह वाले श्वेत वस्त्र से मुह बाधकर मेघकुमार के बाल दीक्षा के योग्य चार अगुल छोडकर काट दो। (३१-३२)

विशेषबोध—संभवत माता पिता ने सोचा—मेघ ऐसे नही मानेगा। बडे प्रलोभन मे फंसाने से उसके विचार मे परिवर्त्तन कदाचित् हो जाय! सत्ता की भूख सबको होती है। एक बार राज्य प्राप्त कर लेने पर इसका वैराग्य भाग सकता है। ऐसा न हुआ तो उसे राजा के रूप मे देखने की हमारी इच्छा पूरी हो जाएगी।

इस प्रकार विचार कर उन्होंने कहा—एक दिन के लिए ही सही, हम तुझे मगधनरेश के रूप मे देखना चाहते हैं।

मेघकुमार माता पिता की इस छोटी-सी माग को अस्वीकार न कर सका। उनके हृदय को अधिक और अनावश्यक आघात लगाना उसे अभीष्ट नही था। वह मौन रह गया।

मौन स्वीकृति लक्षणम्।

इसके मौन को माता पिता ने स्वीकृति समझ ली। तत्पश्चात् राज्याभिषेक की तैयारिया होने लगी। राजा ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलवाकर सबको यथायोग्य आदेश दिए।

सोने, चादी, मणि और मिट्टी के एक-एक सौ आठ कलश मगवाए गए। अनेक कूपो, सरोवरा, नदिया आदि का जल लाया गया। विविध लताओ, वृक्षो आदि के पुष्प मगवाए। मालाए एव औषधिया लाई गई।

यहा आठ प्रकार के कलशो का और प्रत्येक की १०८ सख्या का उल्लेख किया गया है। भारतवर्ष मे १०८ की सख्या को विशेष मान्यता मिली है। घटो के आठ प्रकार का सम्बन्ध आठ कर्मों के विनाश के साथ जोडना असगत नही है। एक सौ आठ की सख्या पच परमेष्ठी के १०८ गुणो का प्रतीक समझी जा सकती है। अरिहन्त के १२, सिद्ध के ८, आचार्य के ३६, उपाध्याय के २४ और साधु के २७ गुण मिलकर १०८ होते हैं। माला की १०८ मणिया भी इसी हेतु समझी जाती हैं।

एक-एक कर्मदारु के उन्मूलन के लिए १०८ गुणो का जाप करना इस सख्या का फलितार्थ होना सभव है।

जो भी हो, सभी कलशो मे उत्तम जल भरा गया। धूमधाम के साथ अभिषेक कार्य सम्पन्न हुआ। पुत्र राजा बना।

विरक्ति और आसक्ति का अन्तर देखिए। मेघकुमार को इच्छा न करने पर अनायास ही राज्य की प्राप्ति हुई किन्तु उसे भी उन्होंने

मन से उपादेय न समझा। उसके प्रति उनके चित्त मे लेशमात्र भी आसक्ति नही उत्पन्न हुई। और दूसरा इन्ही का भाई कूणिक था, जिसने राज्यलिप्सा के वशीभूत होकर अपने पिता श्रेणिक को भी कारागार मे ढकेल दिया। विरक्ति और आसक्ति के ये एक ही काल के और एक ही परिवार के दो दृष्टान्त नेत्र खोल देने वाले हैं।

हिमालय की उपमा तो अन्य राजाओ को भी दी गई है, मगर त्यागमय जीवन होने से मेघ के लिए बहुत फबती है।

मेघकुमार जब विधिवत राजा बन गया तो माता पिता बोले—पुत्र ! कहो तुम्हारे किस अनिष्ट को दूर करें ? तुम्ह क्या चाहिए ?

यहा सहज ही प्रश्न हो सकता है कि जब मेघ स्वय राजा बन गया और राजा के समस्त अधिकार उसे प्राप्त हो गए तो उक्त मनुहार की क्या आवश्यकता थी ? क्या वह अपने अधिकार का उपयोग नही कर सकता था !

समाधान यह है कि यहाँ मोह-दशा का वास्तविक चित्रण किया गया है। माता-पिता ने मोहावेश मे वही प्रकट किया है जो उनके दिल और दिमाग मे था।

मेघकुमार बुद्धिहीन नही था। चारो प्रकार की बुद्धि उसे प्राप्त थी। उसने भगवान् के उपदेश को हृदयगम किया था। उसकी विरक्ति गहरी और आन्तरिक थी। मोह-ममता उसके मानस से दूर हो चुकी थी। अतएव उसने उत्तर दिया—यह पद तो मैंने आपके सन्तोष के लिए स्वीकार किया है। मुझे तो सयम-जीवन अगीकार करने पर ही सन्तोष होगा। वही मेरा लक्ष्य है। अतएव उस जीवन मे उपयोगी ओघा और पात्र मेरे लिए मगवा दीजिए।

कुत्रिकापण की विशेषता पर विचार करना चाहिए। देवता उस दुकान के अधिष्ठाता होते हैं। तीनो लोको में विद्यमान वस्तु वहा मिल सकती है। देवता क्षण भर मे ले आते हैं। ऐसा विवरण

कुत्रिकापण के विषय मे मिलता है।[1] कौन इस दुकान का मालिक था और कौन किस उद्देश्य से इसे चलाता था, आदि बातो की जानकारी देने का कोई साधन उपलब्ध नही है।

यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि राजा मेघ ने उपकरण के रूप मे ओघा और पात्र मगवाने के लिए तो कहा, मगर मुहपत्ती के लिए क्यो नही कहा ? क्या उस समय मुखवस्त्रिका साधु का आवश्यक उपकरण नही था ?

इसका उत्तर यह है कि जो वस्तु घर पर तैयार नही मिल सकती, उसी को दुकान से मगवाने की आवश्यकता होती है। मुखवस्त्रिका के लिए थोडा-सा श्वेत वस्त्र चाहिए। राजघराने मे उसका मिलना कोई कठिन नही था। इसी कारण साधु-अवस्था म पहनने योग्य चोलपट्ट आदि भी वहा मे नही मगवाए गए हैं। ऐसी अति सामान्य वस्तुओ के लिए कुत्रिकापण की आवश्यकता नही थी।

(३१-३२)

मूलपाठ—तए ण से कासवए सेणिएण रण्णा एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव हियए जाव पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सुरभिणा गधोदएण हत्थपाए पक्खालेइ, पक्खालित्ता सुद्ध-वत्थेण मुह बधति, बधित्ता परेण जत्तेण मेहस्स कुमारस्स चउरगुलवज्जे निक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पेइ।

तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स माया महरिहेण हस-लक्खणेण पडसाडएण अग्गकेसे पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुरभिणा गधोदएण पक्खालेति, पक्खालित्ता सुरभिणा सरसेण गोसीसचदणेण चच्चाओ दलयति, दलइत्ता सेयाए

---

१ देवताधिष्ठितत्वन स्वग-मर्त्य-पातालसक्षणभूत्रितयसभविवस्तुसम्पादक

पोत्तीए बधेइ, बधित्ता रयणसमुग्गयंसि पक्खिवइ, पक्खि-वित्ता मजूसाए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता हार-वारिधार-सिन्धु-वार-छिन्नमुत्तावलिपगासाइ अंसूइ विणिम्मुयमाणी विणि-म्मुयमाणी, रोयमाणी रोयमाणी, कदमाणी कदमाणी, विलव-माणी विलवमाणी एव वयासी—एस ण अम्ह मेहस्स कुमारस्स अब्भुदएसु य उस्सवेसु य पसवेसु य तिहीसु य छणेसु य जन्नेसु य पव्वणीसु य अपच्छिमे दरिसणे भविस्सइ त्ति कट्टु उस्सीसामूले ठवेइ ।

तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो उत्तरा-वक्कमण सीहासण रयावेन्ति । मेह कुमार दोच्चपि तच्चपि सेय-पीएहि कलसेहि ण्हावेन्ति, ण्हावेत्ता पम्हलसुकुमालाए गधकासाइयाए गायाइ लूहेन्ति, लूहित्ता सरसेण गोसीस-चन्दणेण गायाइ अणुलिंपति, अणुलिंपित्ता नासानीसासवाय-वोज्झ जाव हसलक्खण पडसाडग नियसेन्ति, नियसेत्ता हार पिणद्धति, पिणद्धित्ता अद्धहार पिणद्धति, पिणद्धित्ता एगावलि मुत्तावलि कणगावलि रयणावलि पालब पायपलब कडगाइ तुडिगाइ केऊराइ अगयाइ दसमुद्दियाणतय कडि-सुत्तय कुडलाइ चूडामणि रयणुक्कड मउड पिणद्धति, पिणद्धित्ता दिव्व सुमणदाम पिणद्धति, पिणद्धित्ता दद्दर-मलयसुगधिए गधे पिणद्धति ।

तए ण त मेह कुमार गठिम वेढिम-पूरिम-सघाइमेण चउव्विहेण मल्लेण कप्परुक्खग पिव अलकियविभूसिय करेन्ति । (३३)

तए ण से सेणिए राया कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया !

अणेगखभसयसन्निविट्ठ लीलट्ठियसालभंजियाग ईहामिग-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्त घंटावलिमहुरमणहरसर सुभकंतदरिसणिज्ज निउणोचियमिसिमिसतमणिरयणघंटिया-जालपरिक्खित्त खभुग्गयवइरवेइया-परिगयाभिराम विज्जा-हरजमलजतजुत्त पिव अच्चीसहस्समालणीय रूवगसहस्स-कलिय भिसमाए भिब्भिसमाण चक्खुलोयणलेस्स सुहफास सस्सिरीयरूव सिग्घ तुरिय चवल वेइय पुरिससहस्सवाहिणि सीय उवट्ठवेह ।

तए ण ते कोडुवियपुरिसा हट्ठतुट्ठा जाव उवट्ठवेन्ति । तए ण से मेहे कुमारे सीय दुरूहइ, दुरूहित्ता सीहासण-वरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने ।

तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स माया ण्हाया कयबलि-कम्मा जाव अप्पमहग्घाभरणालकियसरीरा सीय दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स दाहिणे पासे भद्दासणसि निसीयति ।

तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मधाई रयहरण पडि-ग्गह च गहाय सीय दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स वामे पासे भद्दासणसि निसीयति ।

तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा सगयगय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-सलावुल्लाव-निउणजुत्तोवयारकुसला आमेलग-जमल-जुयल-वट्टिय-अब्भुन्नय-पीण-रइय-सठियपओहरा, हिम-रयय कुन्देन्दु-पगास सकोरटमल्लदामधवल आयवत्त गहाय सलील ओहारे-माणी ओहारेमाणी चिट्ठइ ।

तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स दुवे वरतरुणीओ सिंगा-रागारचारुवेसाओ जाव कुसलाओ सीय दुरुहति, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स उभओ पास नानामणि-कणग-रयणमहरिह-तवणिज्जुज्जलविचित्तदडाओ चिल्लियाओ सुहुमवरदीह-वालाओ सख कु द-दग-रयअ-महियफेणपु जसन्निगासाओ गहाय सलील ओहारेमाणीओ ओहारेमाणीओ चिट्ठ ति।

तए ण तस्स मेह कुमारस्स एगा वरतरुणी सिंगारा० जाव कुसला सीय जाव दुरुहइ, दुरुहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुरतो पुरत्थिमेंण चदप्पभवइर-वेरुलियविमलदड तालविंट गहाय चिट्ठइ।

तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स एगा वरतरुणी जाव सुरूवा सीय दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुव्वदक्खि-णेण सेय रययामय विमलसलिलपुन्न मत्तगयमहामुहाकिइ-समाण भिंगार गहाय चिट्ठइ। (३४)

मूलार्थ—तत्पश्चात वह नापित श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट तुष्ट और आनन्दित हृदय हुआ। उसने यावत् श्रेणिक राजा का आदेश स्वीकार किया। स्वीकार करके सुगधित गधोदक से हाथ पैर धोए। हाथ-पैर धोकर शुद्ध वस्त्र से मु ह बाधा। बाधकर बडी सावधानी से मेघकुमार के चार अगुल छोडकर दीक्षा के योग्य केश काटे।

तत्पश्चात् मेघकुमार की माता ने उन केशो को बहुमूल्य और हस के चित्र वाले उज्ज्वल वस्त्र मे ग्रहण किया। ग्रहण करके उन्हे सुगधित गधोदक से धोया। धोकर सरस गोशीर्ष चन्दन उन पर छिडका। छिडक कर उन्हे श्वेत वस्त्र म बाँधा। बाँधकर रत्न की डिबिया मे रखा। रखकर उस डिबिया को मजूषा मे रक्खा। फिर

जल की धार, निगु डी के फूल एव बिखरे मोतियो के समान अश्रु बहाती-बहाती, रोती-रोती, आक्रन्दन करती करती और विलाप करती-करती इस प्रकार कहने लगी—मेघकुमार के केशा का यह दशन राज्यप्राप्ति आदि अभ्युदय के अवसर पर, उत्सव के अवसर पर, प्रसव के अवसर पर, तिथियो के अवसर पर, इन्द्रमहोत्सव आदि के अवसर, नागपूजा आदि के अवसर पर तथा कार्तिकी पूर्णिमा आदि पर्वों के अवसर पर हमे अतिम दशनरूप होगा। इस प्रकार कह कर धारिणी ने वह पेटी अपने सिरहाने के नीचे रखली।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता पिता ने उत्तराभिमुख सिंहासन रखवाया। फिर मेघकुमार को दो तीन बार श्वेत और पीत अर्थात् चादी और सोने के कलशो से नहलाया। नहलाकर रुएदार और कोमल गधकषायवस्त्र से उसके अग पोंछे। पोंछकर सरस गोशीर्ष चन्दन से शरीर पर विलेपन किया। विलेपन करके नासिका के निश्वास की वायु से भी उडने योग्य अति बारीक तथा हसलक्षण वाला वस्त्र पहनाया। पहनाकर अठारह लडों का हार पहनाया, नौ लडा का अर्धहार पहनाया, फिर एकावली, मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, आलम्ब, पादप्रलम्ब (परो तक लटकने वाला आभूषण), कड, तुटिक (भुजा का आभूषण) केयूर, अगद, दसो उगलियो मे दस मुद्रिकाए, कदोरा, कुडल, चूडामणि तथा रत्नजटित मुकुट पहनाया। यह सब अलकार पहनाकर पुष्पमाला पहनाई। फिर ददर मे पकाये हुए चन्दन के सुगधित तैल की गध शरीर पर लगाई। (३२)

तत्पश्चात् मेघकुमार को सूत से गूथी हुई, पुष्प आदि से वेढी हुई, बाँस की सलाई आदि से पूरित की हुई तथा सघात से तैयार की हुई, इस तरह पाच प्रकार की मालाओ से कल्पवृक्ष के समान अलकृत और विभूषित किया।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाया और कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही एक शिविका तैयार करो, जो अनेक सैकड़ों स्तभो से बनी हो, जिसमे क्रीडा करती हुई पुतलिया बनी हो, जो ईहामृग, वृषभ, तुरग, नर, मगर, विहग, सप, किनर, रुरु (काला मृग), सरभ (अष्टापद), चमरी गाय, कुजर, वनलता, पद्मलता आदि के चित्रो से की गई रचना से युक्त हो, जिसम घटा के समूह के मधुर और मनोहर शब्द हो रहे हो, जो शुभ मनोहर और दशनीय हो। जो कुशल कलाकारो द्वारा निर्मित हो, देदीप्यमान मणियों और रत्नो के घु घुरुओ के समूह से व्याप्त हो, स्तभ पर बनी वेदिका से युक्त होने के कारण जो मनोहर दिखाई देती हो, जो चित्रित विद्याधर-युगलो से युक्त हो, चित्रित सूय की हजार किरणों से शोभित हो, इस प्रकार हजारों रूपका वाली, देदीप्यमान, अतिशय देदीप्यमान, जिसे देखते नेत्रो की तृप्ति न हो, जो सुखद स्पश वाली हो, सश्रीक स्वरूप वाली हो, शीघ्र त्वरित चपल और अतिशय चपल हो अर्थात् जिसे शीघ्रतापूर्वक ले जाया जाय और जो एक हजार पुरुषो द्वारा वहन की जाती हो।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट-तुष्ट होकर यावत् शिविका उपस्थित करते है।

तत्पश्चात् मेघकुमार शिविका पर आरूढ़ हुआ और सिंहासन के पास पहुँचकर पूव दिशा की ओर मुख करके बैठ गया।

तत्पश्चात् जो स्नान कर चुकी है, बलिकम कर चुकी है यावत अल्प और बहुमूल्य आभरणो से शरीर को अलकृत कर चुकी है, ऐसी मेघकुमार की माता उस शिविका पर आरूढ़ हुई। आरूढ होकर मेघकुमार के दाहिने पाश्व मे भद्रासन पर बैठ गई।

तत्पश्चात् मेघकुमार की धायमाता रजोहरण और पात्र लेकर शिविका पर आरूढ़ होकर मेघकुमार के बायें पाश्व मे भद्रासन पर बैठी।

तत्पश्चात् मेघकुमार के पीछे शृंगार के आगाररूप, मनोहर वेषवाली एवं सुन्दर गति हास्य वचन चेष्टा विलास संलाप उल्लाप करने में कुशल, योग्य उपचार करने में कुशल, परस्पर मिले हुए समश्रेणी मे स्थित गोलाकार ऊंचे पुष्ट प्रीतिजनक और उत्तम आकार के स्तनों वाली एक उत्तम तरुणी हिम रजत कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान आभा वाले एवं कोरंट-पुष्पों की माला से युक्त धवल छत्र को धारण करती हुई लीलापूर्वक खड़ी हुई।

तत्पश्चात् मेघकुमार के समीप शृंगार के आगार के समान सुन्दर वेष वाली यावत् उचित उपचार करने में कुशल दो श्रेष्ठ तरुणियां शिविका पर आरूढ हुई। आरूढ़ होकर मेघकुमार के दोनों पार्श्वों मे विविध प्रकार के मणि सुवर्ण रत्न एवं बहुमूल्य तपनीयमय (रक्त वर्ण सुवर्ण वाले) उज्ज्वल एवं विचित्र दंडी वाले, चमचमाते हुए पतले उत्तम और लंबे बालों वाले, शंख, कुन्दपुष्प, जलकण, रजत एवं मन्थन किये हुए अमृत के फेन के समूह सरीखे (श्वेतवर्ण) दो चामर धारण करके लीलापूर्वक वीजती-वींजती खड़ी हुई।

तत्पश्चात् मेघकुमार के समीप शृंगार के आगाररूप यावत् उचित उपचार करने में कुशल एक उत्तम तरुणी यावत् शिविका पर आरूढ हुई। आरूढ़ होकर मेघकुमार के पास पूर्व दिशा के सन्मुख चन्द्रकान्त मणि, वज्ररत्न और वैडूर्यमय निर्मल दंडी वाले पंखे को ग्रहण करके खड़ी हुई।

तत्पश्चात् मेघकुमार के समीप एक उत्तम तरुणी यावत् सुन्दर रूप वाली शिविका पर आरूढ़ हुई। आरूढ होकर मेघकुमार से पूर्व दक्षिण—आग्नेय दिशा में श्वेत, रजतमय, निर्मल जल से परिपूर्ण, मदमाते हाथी के महामुख के समान आकृति वाले भृंगार (झारी) को लेकर खड़ी हुई। (३८)

**विशेष बोध**—नाई ने शुद्ध वस्त्र से मुख बांधकर मेघकुमार के बाल काटे। मुख बांधने का हेतु यह है कि मुख से निकलने वाली

बदबू मेघकुमार को स्पर्श न करे। कदाचित् बोलना पडे तो थूक न न उचट जाय।

देखा जाता है कि उच्च स्वर से बोलने पर किसी-किसी मनुष्य के मुँह से थूक के फुहारे निकलते हैं। मुख से निकलने वाली वायु अशुद्ध और दुर्गन्धयुक्त होती है।

हम अहिंसा को लक्ष्य मे रखकर मुख पर मुहपत्ती बाधते हैं। किन्तु व्याख्यान के समय शास्त्र के पन्ने पर थूक के कण न गिर जाए, यह दृष्टिकोण भी अनुचित नही है।

वैरागी की माता ने कटे केशो को बडे ही प्यार से सुरक्षित रख लिया। इससे माता की असाधारण ममता व्यक्त होती है। महारानी धारिणी का कितना प्रगाढ प्रेम मेघकुमार के प्रति था, इस घटना से स्पष्ट हो जाता है।

वैराग्य की एक जोरदार लहर उमडी और मेघकुमार को ले गई। माता की पुत्र के प्रति जो ममता थी वह मानो केशो मे सीमित रह गई।

वैरागी के दीक्षाकालीन केश मागलिक माने जाते हैं। आज भी यह परम्परा चालू है। मोह और मागलिकता की धारणा, दोनो कारण होने से धारिणी देवी ने पुत्र के केश लेकर रत्नो की डिबिया मे रखे और उस डिबिया को फिर मजूषा मे रख लिया। इसलिए कि वार-त्यौहार के अवसर पर वे मेघकुमार का स्मारक बनेंगे।

वैरागी के केश को मगलमय समझना अनुचित नही कहा जा सकता, क्योकि वैरागी होने पर जीवन मे अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि की परिपूर्ण भावनाए ओतप्रोत हो जाती हैं। इसी हेतु उसके वस्त्रादि भी मागलिक माने जाते हैं। वास्तव में उन सब वस्तुओ से त्याग-वैराग्य का स्मरण होता है। मगर उनमे ममता धारण करना, उन्हे ममत्व का प्रतीक बना लेना उचित नही है।

धारिणी ने जो कुछ किया वह पुत्र स्नेह मे वश होकर किया है। उसके समान आज कोई वैरागी की माता या उसका निकट-सबधी ऐसा करे, यह दूसरी बात है, परन्तु कोई भी व्यक्ति बाल उठाकर ले जाय और मादलिया बनवाकर अपने बच्चे के गले मे बाँध दे, यह अन्धश्रद्धा और रूढि समझना चाहिए।

मेघकुमार केश कर्त्तन के पश्चात वस्त्राभूषण धारण करते हैं। शिविका पर सुशोभन सिंहासन पर आसीन होते हैं। राजसी ठाठ के साथ जुलूस निकलता है। फिर भगवान् की सेवा मे दीक्षा के लिए जाते हैं। आज की परम्परा के अनुसार वैरागी जुलूस के साथ दीक्षा स्थल पर जाता है और वहा पहुच कर क्षुरमुण्डन करवाता है।
सूत्रकार ने काव्यात्मक शैली से सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है।
(३३-३४)

**मूलपाठ**—*तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स पिया कोडु-वियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सरिसयाण सरिसत्तयाण सरिसव्वयाण एगाभरणगहियनिज्जोयाण कोडु वियवरतरुणाण सहस्स सद्दावेह।' जाव सद्दावेंति।*

*तए ण ते कोडु वियवरतरुणपुरिसा सेणियस्स रण्णो कोडु-वियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठा ण्हाया जाव एगा-भरणगहियनिज्जोया जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवाग-च्छति। उवागच्छित्ता सेणिय राय एव वयासी—'संदिसाहि ण देवाणुप्पिया ! ज ण अम्हेहिं करणिज्ज।'*

*तए ण से सेणिए राया त कोडु वियवरतरुणसहस्स एव वयासी—'गच्छह ण देवाणुप्पिया ! मेहस्स कुमारस्स पुरिस-सहस्सवाहिणि सीय परिवहेह।'*

तए ण त कोडु बियवरतरुणसहस्स सेणिए ण रण्णा एव वुत्त सत हट्ठ-तुट्ठ तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्स-वाहिणि सीय परिवहति ।

तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणि सीय दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठ मगलया तप्पढमयाए पुरतो अहाणुपुव्वीए सपट्ठिया । तजहा–(१) सोत्थिय (२) सिरिवच्छ (३) नदियावत्त (४) वद्धमाणग (५) भद्दासण (६) कलस (७) मच्छ (८) दप्पण जाव बहवे अत्थत्थिया जाव ताहि इट्ठाहि जाव अणवरय अभिणदता य एव वयासी—

'जय जय णदा ! जय जय भद्दा ! जय णदा । भद्द ते, अजियाइ जिणाहि इदियाइ, जिय च पालेहि समणधम्म, जियविग्घोऽवि य वसाहि त देव ! सिद्धिमज्झे । णिहणाहि रागद्दोसमल्ले तवेण धिइधणियबद्धकच्छे, मद्दाहि य अट्ठकम्मसत्तू झाणेण उत्तमेण सुक्केण अप्पमत्तो, पावय वितिमिरमणुत्तर केवल नाण, गच्छ य मोक्ख परमपय सासय च अचल हता परिग्गहचमु ण अभीओ परीसहोवसग्गाण, धम्मे ते अविग्घ भवउ त्ति कट्टु पुणो-पुणो मगल-जयजयसद्द पउ जति ।

तए ण से मेहे कुमारे रायगिहस्स नगरस्स मज्झ मज्झेण निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ । (३५-३६)

मूलार्थ—तत्पश्चात् मेघकुमार के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाया । बुलवा कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! शीघ्र ही एक

सरीखे, एक सरीखी त्वचा (कान्ति) वाले, एक सरीखी उम्र वाले तथा एक से आभूषणों से समान वेष धारण करने वाले एक सहस्र उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाओ।

यावत् उन्होंने एक हजार पुरुषों को बुलाया।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुषों के द्वारा बुलाए गए वे कौटुम्बिक तरुण पुरुष हृष्ट-तुष्ट हुए। उन्होंने स्नान किया, यावत् एक-से आभूषण पहन कर समान पोशाक पहनी। फिर जहाँ श्रेणिक राजा था वहाँ आए। आकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय! हमें जो करने योग्य है, उसके लिए आज्ञा दीजिए।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने उन एक हजार उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषों से कहा—हे देवानुप्रियो! तुम जाओ और हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमार की पालकी को वहन करो।

तत्पश्चात् वे उत्तम तरुण हजार कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट तुष्ट हुए और हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमार की शिविका को वहन करने लगे।

तत्पश्चात् पुरुषसहस्रवाहिनी शिविका पर मेघकुमार के आरूढ़ होने पर, उसके सामने, सर्वप्रथम यह आठ मंगलद्रव्य अनुक्रम से चले। वे इस प्रकार हैं—(१) स्वस्तिक (२) श्रीवत्स (३) नंद्यावर्त्त (४) वर्द्धमान (५) भद्रासन (६) कलश (७) मत्स्य और (८) दर्पण। यावत् बहुत-से धन के अर्थी (याचक) जन यावत् इष्टकान्त आदि विशेषणों वाली वाणी से यावत् निरन्तर अभिनन्दन एवं स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

"हे नन्द! जय हो, जय हो। हे भद्र! जय हो, जय हो। हे जगत् को आनन्द देने वाले! तुम्हारा कल्याण हो। तुम नहीं जीती हुई पाँच इन्द्रियों को जीतो और जीते हुए (प्राप्त किए) श्रमणधर्म का पालन करो। हे देव! विघ्नों को जीतकर सिद्धि में निवास करो।

धैर्यपूर्वक कमर कस कर तप के द्वारा राग-द्वेष रूपी मल्लो का हनन करो। प्रमादरहित होकर उत्तम शुक्लध्यान के द्वारा आठ कर्म-शत्रुओ का मदन करो। अज्ञानान्धकार से रहित सर्वोत्तम केवल-ज्ञान को प्राप्त करो। परीषहरूप सेना का हनन करके, परीषह और उपसर्ग से निर्भय होकर शाश्वत एव अचल परमपद रूप मोक्ष को प्राप्त करो। तुम्हारे धर्माराधन मे विघ्न न हो।" इस प्रकार कह कर वे पुन पुन मगलमय 'जय-जय' शब्द का प्रयोग करने लगे।

तत्पश्चात् मेघकुमार राजगृह के बीचोबीच होकर निकला। निकल कर जहा गुणशील चैत्य था, वहा आया। आकर पुरुषसहस्र-वाहिनी पालकी से नीचे उतरा। (३५-३६)

**विशेष बोध**—प्राचीन सस्कृति की एक झाकी यहा प्रस्तुत है। एक सहस्र पुरुषो द्वारा वहन की जाने वाली शिविका पर मेघकुमार आरूढ होते हैं। ये सहस्र पुरुष राजा के बेगारी नही, कौटुम्बिक पुरुष हैं। इसका अभिप्राय यह है कि इनकी आजीविका की व्यवस्था राज्य की ओर से की जाती थी। जहा राजकोष इतने अधिक व्यक्तियों के काम आता हो वहां बेकारी का क्या काम ! इस प्रकरण से और पिछले अनेक प्रकरणो से स्पष्ट ज्ञात होता है कि राजा के श्रीगृह से निर्धनो को उदारतापूर्वक धन दिया जाता था। किसी न किसी निमित्त से वह गरीबो का सहारा था। यही कारण है कि उस समय वर्गसघर्ष नहीं था। समाजवाद एव साम्यवाद के नारे नहीं लगाए जाते थे। उस समय राजा राजकोश का सरक्षक था।

शिविका को वहन करने वाले तरुण पुरुष समान समान वय, वेश और रूपरग वाले थे। इससे जुलूस की शोभा मे अपार वृद्धि हुई होगी।

जब हजार पुरुष केवल शिविका मे ही लगे थे तो साथ चलने वालो की सख्या कितनी रही होगी, यह कल्पना का ही विषय है! एक तरुण सम्राट पुत्र का गृहत्याग और भिक्षु-जीवन को अगीकार

करना भी क्या साधारण घटना थी ! कितना महान् त्याग है ! भारतीय संस्कृति की यह दिव्यता आज भी विवेकशील जनों के लिए सराहनीय है !

आठ मगलद्रव्य[1] स्वस्तिकादि मगल एव शोभा के हेतु वैरागी के आगे-आगे मानव लेकर चले ।

वैरागी अब दीक्षास्थल पर, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे पहुँच रहा है। विराट जनसमूह साथ-साथ चल रहा है। जय-जयकार की तुमुल ध्वनि से गगनमडल गूँज रहा है। बारबार जयध्वनि हो रही है। खुशियों के विविध प्रकार प्रकट हो रहे हैं। आशीर्वाद दिये जा रहे हैं, यथा—

हे नन्द ! जय हो, तुम्हारी जय हो। इन्द्रियों को जीतो। राग-द्वेष को जीतो। कर्मशत्रुओं को जीतो, आदि।

यह वर्णन जैसे विजय-यात्रा का वर्णन है। मानो कोई राजा युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहा हो ! और यह रूपक वास्तव में यथार्थ है। मेघकुमार का यह प्रस्थान ऐसे युद्ध के लिए था जो स्वय अपने साथ लडा जाता है। इस महान् युद्ध मे अपनी ही विकार-वासनाओं से जूझना पडता है। आन्तरिक रिपुओं पर विजय प्राप्त करना और उन्हे निश्शेष करना ही सर्वोत्तम विजय है। इस विजय के पश्चात् न कोई शत्रु रह जाता है और न कालान्तर मे पराजय की सभावना रह जाती है। इस विजय के फलस्वरूप किसी एक भूखण्ड का अस्थायी स्वामित्व नही मिलता, अपितु तीनों लोकों का ऐसा आधिपत्य प्राप्त होता है, जो सदा निराबाध और शाश्वत है।

मेघकुमार इसी युद्ध मे विजयी होने के लिए प्रस्थान कर रहे

---

१ मगलकानि—माङ्गल्यवस्तूनि, अष्ट स्याद् —अष्टमङ्गलकानि अष्टमगलकानि वस्तूनीति । —अभयदेवटीका

हैं। अतएव यह यात्रा अत्यन्त महिमामयी है। जनसाधारण आशी-र्वाद के शब्द कहकर अपनी शुभ कामनाए व्यक्त करते हैं।

कितना भावपूर्ण, कितना सौम्य, कितना गम्भीर रहा होगा वह पावन प्रसग! (३५-६६)

मूलपाठ—तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो मेह कुमार पुरओ कट्टु जेणामेव समणे भगव महावीरे तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेन्ति। करित्ता वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

"एस ण देवाणुप्पिया! मेहे कुमारे अम्ह एगे पुत्ते इट्ठे कते जाव जीविय ऊसासए हिययणदिजणए उबरपुप्फमिव दुल्लहे सवणयाए, किं पुण दरिसणयाए? से जहानामए उप्पलेइ वा, पउमेइ वा, कुमुदेइ वा, पके जाए जले सव-ड्ढिए नोवलिप्पइ पकरएण, नोवलिप्पइ जलरएण, एवामेव मेहे कुमारे कामेसु जाए भोगेसु सवुड्ढे, नोवलिप्पइ काम-रएण, नोवलिप्पइ भोगरएण। एस ण देवाणुप्पिया! ससार-भउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणाण, इच्छइ देवाणुप्पियाण अतिए मुडे भवित्ता आगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए।

अम्हे ण देवाणुप्पियाण सिस्सभिक्ख दलयामो। पडिच्छतु ण देवाणुप्पिया! सिस्सभिक्ख।"

तए ण से समणे भगव महावीरे मेहस्स कुमारस्स अम्मापिऊहि एव वुत्ते समाणे एयमट्ठ सम्म पडिसुणेइ।

तए ण से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतियाओ उत्तरपुरच्छिम दिसिभाग अवक्कमइ। अवक्क-मित्ता सयमेव आभरणमल्लालकार ओमुयइ।

तए ण से मेहकुमारस्स माया हसलक्खणेण पडसाडएण आभरणमल्लालकार पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिन्नमुत्तावलिप्पगासाइ अंसूणि विणिम्मुयमाणी २ रोयमाणी २, कदमाणी २, विलवमाणी २ एव वयासी—

"जइयव्व जाया ! घडियव्व जाया ! परक्कमियव्व जाया ! अस्सि च ण अट्ठे नो पमाएयव्व । अम्ह पि ण एमेव मग्गे भवउ'त्ति कट्टु मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो समण भगव महावीर वदति, नमसति, वदित्ता नमसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ।

तए ण से मेहे कुमारे सयमेव पचमुट्ठिय लोयं करेइ । करित्ता जेणामेव समणे भगव महावीरे तेणामेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ । करेत्ता वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

आलित्ते ण भते ! लोए, पलित्ते ण भते ! लोए, आलित्त-पलित्ते ण भते ! लोए जराए मरणेण य । से जहा नामए केई गाहावई आगारसि झियायमाणसि जे तत्थ भडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरुए त गहाय आयाए एगत अवक्कमइ,—एस मे णित्थारिए समाणे पच्छा पुरा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ । एवामेव मम वि एगे आयाभडे इट्ठे कते पिए मणुन्ने मणामे, एस मे णित्थारिए समाणे ससारवोच्छेयकरे भविस्सइ । त इच्छामि ण देवाणुप्पियाहि सयमेव पव्वाविय, सयमेव मुडाविय, सेहाविय, सिक्खाविय, सयमेव आयार-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-करण-जाया-मायावत्तिय धम्ममाइक्खियं ।"

तए ण समणे भगव महावीरे सयमेव पव्वावेइ, सयमेव आयार० जाव धम्ममाइक्खइ–'एव देवाणुप्पिया ! गतव्व चिट्ठियव्व णिसीयव्व तुयट्टियव्व भु जियव्व भासियव्व, एव उट्ठाय उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं सजमेण सजमियव्व, अस्सि च ण अट्ठे णो पमाएयव्व।'

तए ण से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए इम एयारूव धम्मिय उवएस णिसम्म सम्म पडिवज्जइ। तमाणाए तह गच्छइ, तह चिट्ठइ जाव उट्ठाय उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं सजमइ। (३७–३८)

मूलाथ—तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता मेघकुमार को आगे करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आते हैं। आकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन वार दक्षिण तरफ से आरम्भ करके प्रदक्षिणा करते हैं। प्रदक्षिणा करके वन्दन करते हैं, नमस्कार करते हैं। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहते हैं—

हे देवानुप्रिय ! यह मेघकुमार हमारा इकलौता पुत्र है। यह हमे इष्ट है, कान्त है, प्राण के समान और उच्छ्वास के समान है। हृदय को आनन्द प्रदान करने वाला है। गूलर के पुष्प के समान, इसका नाम श्रवण करना भी दुलभ है तो दर्शन की वात ही क्या है ? जैसे उत्पल (नील कमल), पद्म (सूर्यविकासी कमल) अथवा कुमुद (चन्द्रविकासी कमल) कीच मे उत्पन्न होता है और जल मे वृद्धि पाता है, फिर भी पक की रज से अथवा जल की रज (कण) से लिप्त नही होता, इसी प्रकार मेघकुमार कामो मे उत्पन्न हुआ और भोगो मे वृद्धि पाया है। फिर भी काम-रज से लिप्त नहीं हुआ, भोग रज से लिप्त नहीं हुआ। हे देवानुप्रिय ! यह मेघकुमार ससार के भय से उद्विग्न हुआ है और जन्म-जरा-मरण से भयभीत हुआ है। अत' देवानुप्रिय ! (आप) के समीप मु डित होकर, गृह त्याग करके साधुत्व

की प्रव्रज्या अगीकार करना चाहता है। हम देवानुप्रिय को शिष्य भिक्षा देते हैं। देवानुप्रिय ! आप शिष्यभिक्षा अगीकार कीजिए।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार के माता पिता द्वारा इस प्रकार कह जाने पर इस अर्थ (बात) को सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया।

तत्पश्चात् मेघकुमार श्रमण भगवान् महावीर के पास से उत्तर-पूव अर्थात् ईशान कोण में गया। जाकर स्वय ही आभूषण, माला, अलकार (वस्त्र) उतार डाले।

तत्पश्चात् मेघकुमार की माता ने हस के लक्षण वाले अर्थात् धवल और मृदुल वस्त्र में आभूषण, माल्य और अलकार ग्रहण किए। ग्रहण करके जल की धारा, निगुन्डी के पुष्प और टूटे हुए मुक्तावली-हार के समान अश्रु टपकाती हुई, रोती-रोती, आक्रन्दन करती करती और विलाप करती-करती इस प्रकार कहने लगी—

"हे लाल ! प्राप्त चारित्रयोग मे यतना करना। हे पुत्र ! अप्राप्त चारित्र-योग के लिए घटना करना—प्राप्त करने का प्रयत्न करना। हे पुत्र ! पराक्रम करना। सयम-साधना मे प्रमाद न करना। हमारे लिए भी यही माग हो ! अर्थात् भविष्य मे हमे भी सयम अगीकार करने का सुयोग प्राप्त हो !"

इस प्रकार कहकर मेघकुमार के माता पिता ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा मे लौट गए।

तत्पश्चात् मेघकुमार ने स्वय ही पचमुष्टिट लोच किया। लोच करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे वहा आया। आकर श्रमण भगवान् महावीर को दाहिनी ओर से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। फिर वन्दन-नमस्कार किया और कहा—

'भगवन् ! यह ससार जरा और मरण से (जरा-मरण रूप अग्नि से) आदीप्त है। भगवन् ! यह ससार प्रदीप्त है। भगवन् ! यह ससार आदीप्त-प्रदीप्त है। जैसे कोई गाथा-पति घर मे आग लग

जाने पर, उस घर मे जो अल्प भार वाली और बहुत मूल्य वाली वस्तु होती है, उसे ग्रहण करके स्वय एकान्त मे चला जाता है। वह सोचता है कि—अग्नि में जलने से बचाया हुआ यह पदाथ मेरे लिए आगे पीछे हित के लिए, सुख के लिए क्षमा (समर्थता) के लिए और भविष्य मे उपयोग के लिए होगा। इसी प्रकार मेरा भी यह एक आत्मारूपी भाड (वस्तु) है, जो मुझे इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है और अतिशय मनोहर है। इस आत्मा को मैं निकाल लू गा —जरा-मरण की अग्नि मे दग्ध होने से बचा लू गा, तो यह ससार का उच्छेद करने वाला होगा। अतएव मैं चाहता हूँ कि देवानुप्रिय, (आप) स्वय ही मुझे प्रव्रजित करें—मुनिवेष प्रदान करें, स्वय ही मुझे मुण्डित करें, स्वय ही प्रतिलेखन आदि सिखावें, स्वय ही सूत्र और अथ प्रदान करके शिक्षा दें, स्वय ही ज्ञानादिक आचार, गोचरी, विनय, वैनयिक (विनय का फल), चरणसत्तरी, करणसत्तरी, सयमयात्रा और मात्रा (भोजन का परिमाण) आदि रूप घम का प्ररूपण करे।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार को स्वय ही प्रव्रज्या प्रदान की और स्वय ही यावत् आचार-गोचर आदि घम की शिक्षा दी यथा—हे देवानुप्रिय! इस प्रकार अर्थात् पृथ्वी पर युग प्रमाण दृष्टि रखकर चलना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् निर्जीव भूमि पर खडा होना चाहिए, इस प्रकार भूमि का प्रमाजन करके बैठना चाहिए इस प्रकार सामायिक का उच्चारण करके, शरीर की प्रमाजना करके शयन करना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् वेदना आदि कारणो से निर्दोष आहार करना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् हित, मित और मधुर भाषण करना चाहिए। इस प्रकार अप्रमत्त एव सावधान होकर प्राण (विकलेन्द्रिय), भूत (वनस्पतिकाय), जीव (पचेन्द्रिय) और सत्त्व (शेष एकेन्द्रिय) की रक्षा कर सयम का पालन करना चाहिए।

हृदय को थाम कर माता कहती है—लाल ! संयम में पुरुषार्थ करना । प्रमाद न करना । मेरी भी भावना है कि समय आने पर मैं भी संयम ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ !

इसके पश्चात् माता पिता भगवान् को भावपूर्वक वन्दन नमस्कार करके चले जाते हैं । उनके लौट जाने पर मेघकुमार पंचमुष्टिक लोच करता है और फिर भगवान् के समक्ष उपस्थित होता है ।

प्रश्न किया जा सकता है कि मेघकुमार के केश तो पहले ही नापित द्वारा काटे जा चुके थे । सिर पर केश नहीं रहे थे तो फिर लुंचन किसका किया ?

उत्तर यह है कि राजा श्रेणिक ने नाई को जब केश काटने का आदेश दिया तब ये शब्द कहे थे—'चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पेहि ।' अर्थात् चार अंगुल छोड कर दीक्षा के योग्य केश काट दो ।

इससे स्पष्ट है कि लुंचन करने के लिए कुछ केश छोड दिये गए थे । उन्हीं का इस समय मेघ कुमार ने लुंचन किया । आज भी इस प्रकार की परम्परा प्रचलित है ।

मेघकुमार केशलुंचन के अनन्तर प्रभु से निवेदन करता है—नाथ ! यह संसार जन्म जरा-मरण की भीषण ज्वालाओं से प्रज्वलित हो रहा है, घोर संताप का अनुभव कर रहा है । मैं अपनी आत्मा को इस संताप से बचाना चाहता हूँ । जरा-मरण रूपी आग से बचाव का उपाय संयम है । प्रभो ! आप स्वयं मुझे दीक्षा दीजिए । ज्ञानाभ्यास कराइए । आचार गोचर समझाने का अनुग्रह कीजिए ।

प्रभु ने मेघकुमार की अभ्यर्थना अंगीकार की । स्वयं उसे दीक्षित किया । और स्वयं ही सूत्रार्थ का ज्ञान दिया [illegible] ही साधु के आचार की शिक्षा दी ।

भगवान् का और उनके अनुयायी साधु समाज का यह निश्चय है कि दीक्षा उसी को प्रदान की जानी चाहिए जो स्वय भावपूवक उसे ग्रहण करना चाहे। वलात् सयम नही दिया जा सकता और न पलवाया जा सकता है।

कोई-कोई मुनि आजकल दीक्षा देना अच्छा नही समझते। वे दीक्षा का विरोध भी करते हैं। किंतु ऐसा करना जिनशासन को हानि पहुचाना है। अयोग्य दीक्षा का समथन तो कोई नही कर सकता, किन्तु जो मनुष्य आन्तरिक वैराग्य से प्रेरित होकर, सयम के स्वरूप को समझकर अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहता है, उसकी दीक्षा का समथन अवश्य करना चाहिए।

**मूलपाठ**—ज दिवस च ण मेहे कुमारे मु डे भवित्ता आगाराओ अणगारिय पव्वइए तस्स ण दिवसस्स पच्चावर-ण्हकालसमयसि समणाण निग्गथाण अहाराइणियाए सेज्जा-सथारए जाए यावि होत्था।

तए ण समणाण निग्गथाण पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि वायणाए पुच्छणाए धम्माणुजोगचिंताए य उच्चारस्स य पासवणस्स य अइगच्छमाणाण य निग्गच्छमाणाण य अप्पे-गइया मेह कुमार हत्थेहिं सघट्टन्ति, एव पाएहिं, सीसे, पोट्टे, कायसि, अप्पेगइया ओलडेन्ति, अप्पेगइया पोलडेन्ति, अप्पेगइया पायरयरेणु गु डिय करेन्ति। एव महालिय च ण रयणि मेहेकुमारे णो सचाएइ खणमवि अच्छि निमी-लित्तए।

तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—"एव खलु अह सेणियस्स रण्णो पुत्ते, धारिणीए देवीए अत्तए मेहे जाव सवणयाए। त जया ण अह अगारमज्झे वसामि तया ण मम समणा निग्गथा

आढायति, परिजाणति, सक्कारेंति, सम्माणेंति, अट्ठाइ हेऊइ पसिणाइ कारणाइ वागरणाइ आइक्खेंति, इट्ठाहि कताहि वग्गूहि आलवेन्ति, सलवेन्ति, जप्पभिइय च ण अह मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए तप्पभिइ च ण मम समणा णो आढायन्ति जाव नो सलवन्ति। अदुत्तर च ण समणा निग्गथा राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि वायणाए पुच्छणाए जाव महालिय च ण रत्ति नो सचाएमि अच्छि निमीलित्तए। त सेय खलु मज्झ कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलते समण भगव महावीर आपुच्छित्ता पुणरवि अगारमज्झे वसित्तए"त्ति कट्टु एव सपेहेइ, सपेहित्ता अट्टदुहट्टवसट्टमाणसगए णिरयपडिरूविय च ण त रयणि खवेइ। खवित्ता कल्ल पाउप्पभायाए सुविमलाए रयणीए जाव तेयसा जलते जेणेव समणे भगव महावीरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ। करित्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता जाव पज्जुवासइ। (३६)

तए ण 'मेहा' इ समणे भगव महावीरे मेह कुमार एव वयासी—"से णूण तुम मेहा! राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि समणेहि निग्गथेहि वायणाए पुच्छणाए जाव महालिय च ण राइ णो सचाएमि मुहुत्तमवि अच्छि निमीलित्तए, तए ण तुब्म मेहा इमे एयारूवे अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था—जया ण अह अगारमज्झे वसामि तया ण मम समणा निग्गथा आढायति जाव परिजाणति, जप्पभिइ च ण मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वयामि, तप्पभिइं च ण मम समणा णो आढायति जाव नो परियाणति। अदुत्तर

च ण समणा निग्गथा राओ अप्पेगइया वायणाए जाव पायरयणु डिय करेन्ति । त सेय खलु मम कल्ल पाउप्पभायाए समण भगव महावीर आपुच्छित्ता पुणरवि अगारमज्झे आवसित्तए' त्ति एव सपेहेसि । सपेहित्ता अट्टदुहट्टवसट्ट-माणसे जाव रयणि खवेसि । खवित्ता जेणामेव अह तेणामेव हव्वमागए । से नूण मेहा ! एस अट्ठे समट्ठे ?"

"हता, अट्ठे समट्ठे ।"

"एव खलु मेहा ! तुम इओ तच्चे अईए भवग्गहणे वेयड्ढगिरिपायमूले वणयरेहिं णिव्वत्तियणामधेज्जे सेए सखदलउज्जलविमलनिम्मलदहिघणगोखीरफेणरयणियर--(दगरयरययणियर) प्पयासे सत्तुस्सेहे णवायए दसपरिणाहे सत्तगपइट्ठिए सोमे समिए सुरूवे पुरओ उदग्गे समूसियसिरे सुहासणे पिट्ठओ वराहे अइयाकुच्छि अलबकुच्छी पलवल-बोदराहरकरे धणुपट्ठागिइविसिट्ठपुट्ठे अल्लीणपमाणजुत्त-पुच्छे पडिपुन्नसुचारुकुम्मचलणे पडुरसुविसुद्धनिद्धणिरुवहय-विसतिनहे छद्दते सुमेरुप्पभे नाम हत्थिराया होत्था ।

तत्थ ण तुम मेहा ! बहूहिं हत्थीहिं हत्थिणीहि य लोट्टएहि य लोट्टियाहि य कलभेहि य कलभियाहि य सद्धि सपरिवुडे हत्थिसहस्सणायए देसए पागट्ठी पट्ठवए जूहवई वदपरियट्टए अन्नेसिं च बहूण एकल्लाण हत्थिकलभाण आहेवच्च जाव विहरसि ।

तए ण तुम मेहा ! णिच्चप्पमत्ते सइ पललिए कदप्प-रई मोहणसीले अवितण्हे कामभोगतिसिए बहूहिं हत्थीहिं य जाव सपरिवुडे वेयड्ढगिरिपायमूले गिरीसु य, दरीसु य, कुहरेसु य, कदरासु य, चिल्ललेसु य, कडएसु य, कडयपल्ल-

आढायति, परिजाणति, सक्कारेंति, सम्माणेंति, अट्ठाइ हेऊइ पसिणाइ कारणाइ वागरणाइ आइक्खेंति, इट्ठाहिं कताहिं वग्गूहिं आलवेन्ति, सलवेन्ति, जप्पभिइय च ण अह मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए तप्पभिइ च ण मम समणा णो आढायन्ति जाव नो सलवन्ति । अदुत्तर च ण समणा निग्गथा राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि वायणाए पुच्छणाए जाव महालिय च ण रत्ति नो सचाएमि अच्छि निमीलित्तए । त सेय खलु मज्झ कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलते समण भगव महावीर आपुच्छित्ता पुणरवि अगारमज्झे वसित्तए"त्ति कट्टु एव सपेहेइ, सपेहित्ता अट्टदुहट्टवसट्टमाणसगए णिरयपडिरूविय च ण त रयणि खवेइ । खवित्ता कल्ल पाउप्पभायाए सुविमलाए रयणीए जाव तेयसा जलते जेणेव समणे भगव महावीरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ । करित्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता जाव पज्जुवासइ । (३६)

तए ण 'मेहा' इ समणे भगव महावीरे मेह कुमार एव वयासी—"से णूण तुमं मेहा ! राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि समणेहिं निग्गथेहिं वायणाए पुच्छणाए जाव महालिय च ण राइ णो सचाएमि मुहुत्तमवि अच्छि निमीलित्तए, तए ण तुब्भ मेहा इमे एयारूवे अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था—जया ण अह अगारमज्झे वसामि तया ण मम समणा निग्गथा आढायति जाव परिजाणति, जप्पभिइ च ण मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वयामि, तप्पभिइं च ण मम समणा णो आढायति जाव नो परियाणति । अदुत्तर

च ण समणा निग्गथा राओ अप्पेगइया वायणाए जाव पायरयगु डिय करेन्ति । त सेय खलु मम कल्ल पाउप्पभायाए समण भगव महावीर आपुच्छित्ता पुणरवि अगारमज्झे आवसित्तए' त्ति एव सपेहेसि । सपेहित्ता अट्टदुहट्टवसट्ट-माणसे जाव रयणि खवेसि । खवित्ता जेणामेव अह तेणामेव हव्वमागए । से नूण मेहा ! एस अट्ठे समट्ठे ?"

"हता, अट्ठे समट्ठे ।"

"एव खलु मेहा ! तुम इओ तच्चे अईए भवग्गहणे वेयड्ढगिरिपायमूले वणयरेहिं णिव्वत्तियणामधेज्जे सेए सखदलउज्जलविमलनिम्मलदहिघणगोखीरफेणरयणियर–(दगरयरययणियर) प्पयासे सत्तुस्सेहे णवायए दसपरिणाहे सत्तगपइट्ठिए सोमे समिए सुरूवे पुरओ उदग्गे समूसियसिरे सुहासणे पिट्ठओ वराहे अइयाकुच्छि अलवकुच्छी पलवल-बोदराहरकरे घणुपट्ठागिइविसिट्ठपुट्ठे अल्लीणपमाणजुत्त-पुच्छे पडिपुन्नसुचारुकुम्मचलणे पडुरसुविसुद्धनिद्धणिरुवहय-विसतिनहे छद्दते सुमेरुप्पभे नाम हत्थिराया होत्था ।

तत्थ ण तुम मेहा ! बहूहिं हत्थीहिं हत्थिणीहि य लोट्टएहि य लोट्टियाहि य कलभेहि य कलभियाहि य सद्धि सपरिवुडे हत्थिसहस्सणायए देसए पागट्ठी पट्ठवए जूहवई वदपरियट्टए अन्नेसि च बहूण एकल्लाण हत्थिकलभाण आहेवच्च जाव विहरसि ।

तए ण तुम मेहा ! णिच्चप्पमत्ते सइ पललिए कदप्प-रई मोहणसीले अवितण्हे कामभोगतिसिए बहूहिं हत्थीहिं य जाव सपरिवुडे वेयड्ढगिरिपायमूले गिरीसु य, दरीसु य, कुहरेसु य, कदरासु य, चिल्ललेसु य, कडएसु य, कडयपल्ल-

लेसु य, तडीसु य, वियडेसु य, टकेसु य, कूडेसु य, सिहरेसु य, पब्भारेसु य, मचेसु य, मालेसु य, काणणेसु य, वणेसु य वणसडेसु य, वणराईसु य, नदीसु य, नदीकच्छेसु य, जूहेसु य, सगमेसु य, वावीसु य, पोक्खरिणीसु य, दीहियासु य, गुंजालियासु य, सरेसु य, सरपतियासु य, सरसरपतियासु य, वणयरेहिं दिन्नवियारे बहूहिं हत्थीहि य जाव सद्धिं सपरिवुडे बहुविहतरुपल्लवपउरपाणियतणे निब्भए निरुव्विग्गे सुहसुहेण विहरसि। (३६ ४०)

मूलार्थ—जिस दिन मेघकुमार ने मुण्डित होकर गृहवास त्याग कर चारित्र अगीकार किया, उसी दिन के सन्ध्याकाल मे, रात्निक अर्थात दीक्षापर्याय के अनुक्रम से श्रमण निग्रन्थो के शय्या-सस्तारका का विभाजन करते समय मेघकुमार का शय्या-सस्तारक द्वार के समीप हुआ।

तत्पश्चात् श्रमण निर्ग्रन्थ अर्थात् अन्य मुनि रात्रि के पहले और पिछले समय मे वाचना के लिए, पृच्छना के लिए, परावर्त्तन (श्रुत की आवृत्ति) के लिए, धर्म के व्याख्यान का चिन्तन करने के लिए, उच्चार (बडी नीति) के लिए, प्रस्रवण (लघुनीति) के लिए प्रवेश करते थे और बाहर निकलते थे। उनमे से किसी साधु के हाथ का मेघकुमार के साथ सघट्टन हुआ, इसीप्रकार किसी के पैरो से, मस्तक की, पेट की और शरीर की टक्कर हुई। कोई-कोई मेघकुमार को लाघकर निकले और किसी किसी ने दो-तीन बार लाघा। किसी-किसी ने अपने पैरो की रज से उसे भर दिया। पैरो के वेग से उडी रज से भर दिया। इस प्रकार लम्बी रात्रि मे मेघकुमार क्षणभर भी आख बन्द न कर सका।

तब मेघकुमार के मन मे इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ मैं श्रेणिक राजा का पुत्र और धारिणी देवी का आत्मज

(उदरजात) मेघ कुमार हूँ। यावत् गूलर के पुष्प के समान मेरा नाम श्रवण करना भी दुलभ है। जब मैं घर मे रहता था, तब श्रमण निग्रन्थ मेरा आदर करते थे। 'यह कुमार ऐसा है' ऐसा जानते थे, सत्कार-सम्मान करते थे। जीवादि पदार्थों को, उन्हे सिद्ध करने वाले हेतुओ को, प्रश्नो को, कारणो को और व्याकरणो (प्रश्नो के उत्तरो) को कहते थे और वार-बार कहते थे। इष्ट और मनोहर वाणी से आलाप-सलाप करते थे। किन्तु जब से मैंने मुण्डित होकर गृहवास को त्यागकर साधु दीक्षा अगीकार की है, तब से लेकर साधु मेरा आदर नही करते, यावत् सलाप नही करते। इतने पर भी वे श्रमण निर्ग्रंथ पहली और पिछली रात्रि के समय वाचना पृच्छना आदि के लिए जाते-आते मेरे सस्तारक को लाघते हैं और मैं इतनी लम्बी रात भर मे आख भी न मीच सका।

अतएव कल रात्रि के प्रभातरूप होने पर यावत् सूर्य के तेज से जाज्वल्यमान होने पर (सूर्योदय के पश्चात्) श्रमण भगवान् महावीर से आज्ञा लेकर पुन गृहवास मे वसना ही मेरे लिए अच्छा है!

मेघकुमार ने ऐसा विचार किया। विचार करके आर्तध्यान के कारण दु ख से पीडित और विकल्पयुक्त मानस को प्राप्त होकर मेघकुमार ने वह रात्रि नरक की भाति व्यतीत की। रात्रि व्यतीत करके, प्रभात होने पर, सूय जब तेज से जाज्वल्यमान होगया तब वह जहा श्रमण भगवान् महावीर थे, वहा आया। आकर तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके भगवान् को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके यावत् भगवान् की पर्युपासना करने लगा।

तत्पश्चात् 'हे मेघ' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—हे मेघ! तुम रात्रि के पहले और पिछले काल के अवसर पर, श्रमण निग्रन्थो के वाचना पृच्छना आदि के लिए आवागमन करने के कारण लम्बी

रात्रि मे थोडी देर के लिए भी आख नही मीच सके। मेघ! तव तुम्हारे मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—जव मैं गृहवास मे निवास करता था, तव श्रमण निग्रन्थ मेरा आदर करते थे, यावत् मुझे जानते थे। परन्तु जव से मैंने मुण्डित होकर गृहवास से निकल कर साधुता की दीक्षा ली है, तव से श्रमण निग्रन्थ न मेरा आदर करते हैं, न मुझे जानते हैं। इसके अतिरिक्त आते-जाते मेरा विस्तर लाघते हैं यावत् पैरों की रज से भरते हैं। अतएव मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि कल प्रभात होने पर श्रमण भगवान् महावीर से पूछ कर मैं पुन गृहवास मे वसने लगू।

तुमने इस प्रकार विचार किया है। विचार करके आतध्यान के कारण दु ख से पीडित एव सकल्प विकल्प से युक्त मानस वाले होकर यावत् रात्रि व्यतीत की है। रात्रि व्यतीत करके जहा मैं हूँ वहाँ शीघ्रतापूवक आए हो।

हे मेघ! यह अथ समर्थ है—मेरा यह कथन सत्य है?

मेघकुमार ने उत्तर दिया—जी हा, यह अथ समथ है—आपका कथन यथाथ है।

## प्रतिबोध

भगवान् वोले—हे मेघ! इससे पूव तीसरे अतीत भव मे, वैताढ्य पवत के पादमूल मे (तलहटी मे) तुम गजराज थे। वनचरा ने तुम्हारा नाम 'सुमेरुप्रभ' रक्खा था। उस सुमेरुप्रभ का वण श्वेत था। शख के दल (चूण) के समान उज्ज्वल, विमल, निमल, दही के थक्के के समान, गाय के दूध के फेन के समान (या क्षीर समुद्र के फेन के समान) और चन्द्रमा के समान (या जल कण अथवा चांदी के समूह के समान) रूप था। वह सात हाथ ऊ चा और नौ हाथ लम्बा था। मध्यभाग मे दस हाथ का परिमाण वाला था। चार पैर, सू ड, पू छ और लिंग– ये सात अग प्रतिष्ठित अर्थात् भूमि को स्पश करते थे।

सौम्य, प्रमाणोपेत अगो वाला, सुन्दर रूपवाला, आगे से ऊ चा, ऊ चे मस्तक वाला, शुभ अथवा सुखद आसन (स्कध आदि) वाला था। उसका पिछला भाग वराह (शूकर) के समान नीचे झुका हुआ था। उसकी कु ख बकरी की कु ख जैसी थी और वह छिद्रहीन थी। उसमे गड्हा नही पडा था और वह लम्बी नहीं थी। वह लम्बे उदर वाला, लबे होठ वाला और लम्बी सू ड वाला था। उसकी पीठ खीचे हुए धनुप के पृष्ठ जैसी आकृति की थी। उसके अन्य अवयव भलीभाति मिले हुए, प्रमाणयुक्त, गोल एव पुष्ट थे। पू छ चिपकी हुई तथा प्रमाणोपेत थी। पैर कछुए जैसे, परिपूण और मनोहर थे। बीसो नाखून श्वेत, निमल, चिकने और निरुपहत थे। छह दात थे।

हे मेघ! वहा तुम हाथिया, हथनियो, लोट्टका (कुमार अवस्था वाले हाथियो) लोटिटकाओ, कलभो (हाथी के बच्चा) और कलभिकाओ से परिवृत होकर एक हजार हाथियो के नायक, मागदशक, अगुवा, प्रस्थापक (काम मे लगाने वाले), यूथपति और यूथ की वृद्धि करने वाले थे। इनके अतिरिक्त बहुत से अन्य अकेले हाथी के बच्चो का आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण कर रहे थे।

हे मेघ! तुम निरन्तर प्रमादशील, सदा क्रीडापरायण, कन्दपरतिक्रीडा करने मे प्रीति वाले, मैथुनप्रिय, कामभोग से तृप्त न होने वाले और कामभोग मे तृष्णा वाले थे। बहुत-से हाथियो वगैरह से परिवृत होकर वैताढ्य पवत के पादमूल मे, पवतो मे, दरियो (विशेप प्रकार की गुफाओ) मे, कुहरा (पवता के अचला) मे, कदराओ मे, चिल्ललो (कीचड वाली तलैयो) मे कटको (पवता के तटो) मे, कटकपल्लवो (पवत की समीपवर्ती तलयो) मे, तटा मे, अटवी में, टको (विशेप प्रकार के पवतो) मे, कूटो (नीचे चौडे और ऊपर सकडे पवतो) मे, शिखरो मे, प्राग्भारो (कुछ झुके हुए पवतो के भागो) म, मचा (नदी आदि को पार करने के लिए पाटा डालकर बनाए हुए कच्चे पुलो) पर, मालों पर, काननो मे, वना (एक जाति के वृक्ष

वाले वगीचो) मे, वनखण्डो (अनेक जाति के वक्षो वाले प्रदेशा) म वन की श्रेणियो मे, नदियो मे, नदी-कच्छो (नदी के समीपवर्ती प्रदेशा) मे, यूथो (वानर आदि के निवास-स्थानों) मे, सगम स्थलो मे, चौकोर वावडियो मे, गोल या कमलो वाली वावडिया म, दीर्घिकाआ (लम्वी वावडियो) मे, गु जालिकाओ (वक्र वावडियो) मे, सरोवरों मे सरोवरों की पक्तियो मे, सरसरपक्तियो (जहा एक सर से दूसरे सर मे पानी जाने का माग वना हो ऐसे सरो की पक्तिया) मे, वनचरो द्वारा विचार (विचरण करने की छूट) जिसे दिया गया है, ऐसे तुम वहुसख्यक हाथियो आदि के साथ, नाना प्रकार के तरुपल्लवो पानी और घास का उपभोग करते हुए, निभय और उद्वेग रहित होकर सुखपूवक विचरते थे। (३९-४०)

**विशेष वोध**—मेघकुमार दीक्षा के प्रथम दिन ही घवरा गए। मानो सिर मु डाया कि ओले पडे। प्रश्न हो सकता है कि ऐसा क्यो हुआ? उनका वैराग्य वास्तविक था, आन्तरिक था। माता-पिता के वहुत समझाने पर भी और अनेक प्रकार के प्रलोभन एव भय प्रदर्शित करने पर भी वे दृढ़ रहे। फिर प्रारम्भ मे ही ऐसा क्या हुआ?

इसका उत्तर मानव-मानस की दुवलता ही समझना चाहिए। मुनि वन जाने के पश्चात् अनेक प्रकार की असुविधाए और प्रति कूलताएँ आती हैं। उन्ह समभाव से झेल लेने का मनोवल मुनि मे होना चाहिए। मेघ सम्राट् के पुत्र थे। मृदुल शय्या पर शयन करने वाले थे। जीवन मे प्रथम वार उन्ह भूशय्या पर सोना पडा। कष्ट होना स्वाभाविक था। जीवन मे यह वडा भारी परिवत्तन था। फिर मुनियों के आवागमन से भी उन्हें कष्ट हुआ। सव मिलाकर स्थिति ऐसी वन गई कि उनका चित्त अस्थिर होगया।

चाहे राजकुमार हो या कोई निधन कुल से आया हो, मुनि वन जाने पर सब वरावर होते हैं। वहाँ किसी का लिहाज नहीं किया

जाता। यह आदर्श धार्मिक साम्यवाद है। तथापि नवदीक्षित मुनि को कुछ विशेष सुविधाएँ मिलनी चाहिए। मेघ मुनि को वे सुविधाएँ नही मिली। अधिकारी मुनियो ने उन्हें उचित स्थान नही दिया।

आज भी ऐसी परम्परागत धारणा है कि नवदीक्षित मुनि की, छह मास पर्यन्त उसकी इच्छानुसार खान-पान-शयन आदि की व्यवस्था रखनी चाहिए। सभव है मेघकुमार की इस घटना के पश्चात् ही यह व्यवस्था प्रचलित हुई हो।

तथापि मेघ मुनि की सहनशीलता मे कमी अवश्य मालूम होती है, जो उनके पूर्व-जीवन को देखते हुए स्वाभाविक है। आने जाने वाले श्रमण भगवन्त हमारे जैसे प्रमादी नहीं रहे होगे। वे ईर्यासमिति का पालन करने वाले ऋषिराज थे। छद्मस्थ होने के कारण किसी की पैर की टक्कर लग जाना असभव नही, फिर भी, थोडा-सा कष्ट भी मेघ मुनि को महान् कष्ट जान पडा होगा। परीषहो और उपसर्गों को सहन करने का अभ्यास उन्हें नही था। अतएव मन ने सोचने की एक वार जो दिशा पकडी, उस पर वह आगे ही आगे बढता गया। उनके सुखशील मन ने राई जैसे उस कष्ट को पर्वत बना दिया! वास्तव मे मन वडा ही चचल और सृजन-शील है।

साधुजीवन मे जो आनन्द है, उसकी ठीक-ठीक कल्पना वही कर सकता है जिसने साधुता को जीवन मे रमा लिया हो। किसी ने यथार्थ कहा है—

> न च राजभय न वियोगभय,
> न च चौरभय न च वृत्तिभयम्।
> इहलोकसुख परलोकहित,
> श्रमणत्वमिद रमणीयतरम्॥

साधु को न राजा से भय रहता है और न किसी के वियोग का ही भय होता है। जहा सयोग होता है वही वियोग का भय रहता है। साधु सयोगमात्र का त्याग कर देता है। कुटुम्ब-परिवार, धन-

सम्पदा आदि से अपना सम्बन्ध विच्छिन्न कर लेता है। शरीर पर भी उसका ममभाव नही रहता। फिर वियोग की भीति उसके पास भी कैसे फटक सकती है! अकिंचन अनगार को चोर का भय हो नही सकता। आजीविका की उसे चिन्ता नही। भिक्षा से जीवन निर्वाह करने वाले का आजीविका का ख्याल ही नही आता। इस प्रकार साधुता इस लोक मे भी सुखकर है और परलोक मे भी हितकर है।

अगर साधु में साधुत्व के प्रति गहरी श्रद्धा, रुचि और प्रतीति है तो सौधम देवलोक से लेकर सर्वार्थ सिद्ध विमान के देवों की अपेक्षा भी वह अधिक सुख की अनुभूति करेगा।

मुनि मेघकुमार की भाँति यदि साधु जीवन में अनास्था, अरुचि और अप्रीति उत्पन्न हो जाय तो साधु जीवन नारकीय जीवन बन जाता है। मेघकुमार स्वय कहते हैं कि उन्होंने वह रात्रि इस प्रकार व्यतीत की, मानो नरक में रहकर वह समय व्यतीत किया हो। ऐसा मुनि 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट' हो जाता है। उसके गार्हस्थिक सुख तो छूट ही जाते हैं, साधुता के आनन्द को भी वह नहीं पा सकता। परिणामस्वरूप दु ख ही दु ख उसके पल्ले पडता है।

अत्यन्त सौभाग्यशाली थे मुनि मेघकुमार, जिन्हें श्रमण भगवान् महावीर गुरु के रूप मे मिले थे। भगवान् अन्तर्यामी थे। उन्होंने मेघ मुनि के मानसिक भाव जान लिए। यह भी जाना कि मेघ घर लौट जाना चाहता है किन्तु चुपचाप नहीं, छिपकर नही, मुझसे अनुमति लेकर ही जाने की इच्छा कर रहा है। वह भावना से गिरा अवश्य है परन्तु ऐसा नहीं कि उठ न सके। उसमे उज्ज्वलता के पर्याप्त अंश विद्यमान हैं।

मेघकुमार जब प्रभात होने पर भगवान् के निकट पहुंचे तो उन्होंने तत्काल उन्हें स्थिर कर दिया।

सर्वप्रथम प्रभु महावीर ने मुनि को उनके मन की बात बतलाई। फिर उनके पूर्वभव का वृत्तान्त कह सुनाया।

केवल ज्ञानी होने से भगवान् पूवभव तथा मन की बातें जानते और कह सकते हैं। इन्द्रियो और मन से होने वाले ज्ञान मे यह सामथ्य नही होता। यह ज्ञान परोक्ष होता है, क्योकि वह आत्मा से भिन्न वाह्य साधनो से उत्पन्न होता है।

आत्मप्रादुभू त ज्ञान ही प्रत्यक्ष कहलाता है। जब वह पूणता को प्राप्त होता है तो केवल ज्ञान कहा जाता है। भगवान् केवल ज्ञानी थे। इसी कारण सब भूतभाव उनके ज्ञान मे साक्षात झलकते थे। उन्होंने बतलाया कि—हे मेघ ! तुम पूवभव मे हाथी की पर्याय मे थे और वन आदि प्रदेशो मे आनन्द विलास करते फिरते थे।

इस पूववृत्तान्त का मेघ मुनि के मन पर क्या प्रभाव पडा, यह अगले सूत्रो मे स्पष्ट किया जाएगा। (३९-४०)

**मूलपाठ**—तए ण तुम मेहा ! अन्नया कयाई पाउस-वरिसारत्तसरयहेमतवसतेसु कमेण पचसु उऊसु समइक्कतेसु, गिम्हकालसमयसि जेट्ठामूलमासे, पायवघससमुट्ठिएण सुक्क-तण-पत्त-कयवर-मारुतसजोगदीविएण महाभयकरेण हुयवहेण वणदवजालासपलित्तेसु, वणतेसु, धूमाउलासु दिसासु, महावायवेगेण सघट्टिएसु छिन्नजालेसु आवयमाणेसु, पोल्लतरुसु अतो अतो झियायमाणेसु, मयकुहियविणिविट्ठ-किमियकद्दमनदीवियरग-जिण्णपाणीयतेसु वणतेसु भिगार-कदीणकदियरवेसु, खरफरुसअणिट्ठरिट्ठवाहितविद्दमग्गेसु दुमेसु, तण्हावसमुक्कपक्खपयडियजिब्भतालुयअसपुडित-तुडपक्खिसघेसु ससतेसु गिम्ह-उम्ह-उण्हवायखरफरुस-चडमारुयसुक्कतणपत्त - कयवरवाउलिभमतदित्तसभतसाव-

याउलमिगतण्हावद्धचिण्हपट्टेसु गिरिवरेसु, सवट्टिएसु तत्थमियपसवसिरीसवेसु, अवदालियवणविवरणिल्लालियग-जीहे, महततु वइयपुण्णकण्णे सकुचियथोरपीवरकरे ऊसियलगूले पीणाइयविरसरडियसद्देण फोडयतेव अवरतल, पायदद्दरएण कपयतेव मेइणितल, विणिम्मुयमाणे य सोयार, सव्वओ समता वल्लिवियाणाइ छिदमाणे, सक्खसहस्साइ तत्थ सुवहूणि पोल्लयते, विणट्ठरट्ठे व्व णरवरिन्दे, वायाइद्धे व पोए, मडलवाए व्व परिब्भमते अभिक्खण अभिक्खण लिडिणियर पमुचमाणे पमुचमाणे बहूहि हत्थीहि य जाव सद्धि दिसोदिसि विप्पलाइत्था ।

तत्थ ण तुम मेहा ! जुण्णे जराजज्जरियदेहे आउरे झझिए पिवासिए दुब्बले किलते नट्ठसुइए मूढदिसाए सयाओ जूहाओ विप्पहूणे वणदवजालापारद्धे उण्हेण य तण्हाए य छुहाए य परब्भाहारे समाणे भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे सजायभए सव्वओ समता आधावमाणे परिधावमाणे एग च ण मह सर अप्पोदय पकबहुल अतित्थेण पाणियपाए उइन्नो ।

तत्थ ण तुम मेहा ! तीरमइगए पाणिय असपत्ते अतरा चेव सेयसि विसन्ने ।

तत्थ ण तुम मेहा ! पाणिय पाइस्सामि त्ति कट्टु हत्थ पसारेसि, से वि य ते हत्थे उदग न पावेइ । तए ण तुम मेहा ! पुणरवि काय पच्चुद्धरिस्सामि त्ति कट्टु बलियतराग पकसि खुत्ते ।

तए ण तुम मेहा ! अन्नया कयाइ एगे चिरणिज्जूढे गयवरजुवाणए सयाओ जूहाओ कर-चरण-दत-मुसलप्प-

हारेहिं विप्परद्धे समाणे त चेव महद्दह पाणीय पाएउ समायरेइ ।

तए ण से कलभए तुम पासति, पासित्ता त पुव्ववेर समरइ, समरित्ता आसुरत्ते रुट्ठे चडिक्किए मिसिमिसेमाणे जेणेव तुम तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुम तिक्खेहिं दतमुसलेहिं तिक्खुत्तो पिट्ठओ उच्छुभइ, उच्छुभित्ता पुव्ववेर निज्जाएइ, निज्जाएत्ता हट्ठतुट्ठे पाणिय पिवइ, पिइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

तए ण तव मेहा ! सरीरगसि वेयणा पाउब्भवित्था उज्जला विउला तिव्वा कक्खडा जाव दुरहियासा, पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कतीए यावि विहरित्था ।

तए ण तुम मेहा ! त उज्जल जाव दुरहियास सत्तराइदिण वेयण वेदेसि, सवीस वाससय परमाउ पालइत्ता अट्टवसट्टदुहट्टे कालमासे काल किच्चा इहेव जबुद्दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे गगाए महाणईए दाहिणे कूले विझगिरिपायमूले एगेण मत्तवरगधहत्थिणा एगाए गयवरकरेणूए कुच्छिसि गयकलभए जणिए । तए ण सा गयकलभिया णवण्ह मासाण वसतमासम्मि तुम पयाया ।

तए ण तुम मेहा ! गब्भवासाओ विप्पमुक्के समाणे गयकलभए यावि होत्था, रत्तुप्पलरत्तसूमालए जासुमणारत्तपारिजत्तय - लक्खारस - सरसकुकुम-सझब्भरागवण्णे इट्ठे णियस्स जूहवइणो गणियायारकणेरुकोत्थहत्थी अणेगहत्थिसयसपरिवुडे रम्मेसु गिरिकाणणेसु सुहसुहेण विहरसि ।

मूलार्थ—तत्पश्चात् एक बार कदाचित् प्रावृट, वर्षा, शरद्, हेमन्त और वसन्त, इन पाच ऋतुओ के क्रमश व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्म ऋतु का समय आया। तब ज्येष्ठ मास मे, वृक्षा की आपस का रगड से उत्पन्न हुई तथा सूखे घास, पत्तो और कचरे से एव वायु के वेग से दीप्त हुई अत्यन्त भयानक अग्नि से उत्पन्न वन के दावानल की ज्वालाओं से वन का मध्य भाग सुलग उठा। दिशाए धुए से व्याप्त हो गई। प्रचण्ड वायुवेग से अग्नि की ज्वालाए टूट जाने लगी और चारो ओर गिरने लगी। पोले वृक्ष भीतर ही भीतर जलने लगे। वन प्रदेश के नदी नालो का जल मृत मृगादिक के शवों से सड़ने लगा—खराब होगया। उनका कीचड कीड़ो वाला होगया। उनके किनारो का पानी सूख गया। भृगारक पक्षी दीनतापूर्ण आक्रन्दन करने लगे। उत्तम वृक्षा पर स्थित काक अत्यन्त कठोर और अनिष्ट शब्द करने लगे। उन वक्षों के अग्रभाग अग्निकणों के कारण मू गे के समान लाल दिखाई देने लगे। पक्षियों के समूह प्यास से पीडित होकर पख ढीले करके, जिह्वा एव तालु को प्रकट करके तथा मु ह फाडकर सासें लेने लगे। ग्रीष्मकाल की उष्णता, सूय के ताप, अत्यन्त कठोर एव प्रचण्ड वायु तथा सूखे घास पत्ते और कचरे से युक्त बवण्डर के कारण भाग-दौड करने वाले मदोन्मत्त तथा सभ्रम वाले सिंह आदि श्वापदो के कारण श्रेष्ठ पर्वत आकुल-व्याकुल हो उठे। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो उन पवतो पर मृग-तृष्णा रूप पट्टबन्ध बधा हो। त्रास को प्राप्त मृग, वन्य पशु और सरीसृप इधर-उधर तडपने लगे।

इस भयानक अवसर पर हे मेघ ! तुम्हारा अर्थात् तुम्हारे पूवभव के सुमेरुप्रभ नामक हाथी का मुख-विवर फूट गया। जीभ का अग्रभाग बाहर निकल आया। बड़े-बड़े दोनों कान भय से स्तब्ध और व्याकुलता के कारण शब्द ग्रहण करने में तत्पर हुए। बडी और मोटी सू ड सिकुड गई। उसने पू छ ऊ ची करली। पीन (मडडा) के समान

विरस अरटि के शब्द-चीत्कार से वह आकाशतल को फोडता हुआ-सा, पैरो के आघात से पृथ्वीतल को कम्पित करता हुआ-सा, सीत्कार करता हुआ, चहु और सवत्र वेला के समूह को छेदता हुआ, त्रस्त, और वहुसख्यक सहस्रो वृक्षो को उखाडता हुआ, राज्य से भ्रष्ट हुए राजा के समान, वायु से डोलते हुए जहाज के समान और ववण्डर के समान इधर-उधर भागता हुआ और वार-वार लीडी त्यागता हुआ, वहुत-से हाथियो, हथिनियो आदि के साथ दिशाओ और विदिशाओ मे इधर उधर भागदौड करने लगा।

हे मेघ ! तुम वहा जीण, जरा-से जजरित देह वाले, व्याकुल, भूखे, प्यासे, दुवल, थके-मादे, वहिरे तथा दिङ्मूढ होकर अपने यूथ (झुड) से विछुड गए। वन के दावानल की ज्वालाओ से पराभूत हुए। गर्मी से, प्यास से, भूख से पीडित होकर भय को प्राप्त हुए, त्रस्त हुए। तुम्हारा आनन्द-रस शुष्क हो गया। इस विपत्ति से कैसे छुटकारा पाऊ, ऐसा विचार करके उद्विग्न हुए। तुम्हे पूरी तरह भय उत्पन्न हुआ। अतएव इधर-उधर दौडने और खूव दौडने लगे।

इसी समय अल्प जलवाला और कीचड की अधिकतावाला एक वडा सरोवर तुम्हे दिखाई दिया। उसमे पानी पीने के लिए विना घाट के तुम उतर गए।

हे मेघ ! वहाँ तुम किनारे से तो दूर चले गए, परन्तु पानी तक न पहुच पाए और वीच ही मे कीचड मे फस गए।

हे मेघ ! 'मैं पानी पीऊँ' एसा विचार करके वहाँ तुमने सूड फैलाई, मगर तुम्हारी सूड भी पानी न पा सकी। तव हे मेघ ! तुमने "पुन शरीर को वाहर निकालू" ऐसा विचार कर जोर मारा तो कीचड मे और गाढे फस गए।

तत्पश्चात् हे मेघ ! एकदा कदाचित् एक नौजवान श्रेष्ठ हाथी को तुमने सूड, पैरो और दात रूपी मूसला से प्रहार करके मारा था

और अपने झुंड मे से, बहुत समय पूव, निकाल दिया था। वह हाथी पानी पीने के लिए उसी महाद्रह मे उतरा।

तत्पश्चात् उस नौजवान हाथी ने तुम्हें देखा। देखते ही उसे पूव वैर का स्मरण हो आया। स्मरण होते ही उसमे क्रोध के चिह्न प्रकट हुए। उसका क्रोध बढ गया। उसने रौद्र रूप धारण किया और वह क्रोधाग्नि से जलगया। अतएव वह तुम्हारे पास आया। आकर उसने तीक्ष्ण दन्तमुसलो से तीन बार तुम्हारी पीठ बींध दी और पूर्व वैर का बदला लिया। बदला लेकर हृष्ट-तुष्ट होकर उसने पानी पीया। पानी पीकर जिस दिशा से प्रकट हुआ था—आया था, उसी दिशा मे वापिस चला गया।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुम्हारे शरीर मे वेदना उत्पन्न हुई। वह वेदना ऐसी थी कि तुम्हे तनिक भी चैन न थी। वह सम्पूण शरीर मे व्याप्त थी और तीव्र थी, अथवा त्रितुला[1] थी (मन वचन, काय को तुलना करने वाली थी अर्थात् उस वेदना म तीनों योग तन्मय हो रहे थे)। वह वेदना कठोर यावत् दुस्सह थी। उस वेदना के कारण तुम्हारा शरीर पित्तज्वर से व्याप्त होगया और शरीर में दाह उत्पन्न होगया। उस समय तुम इस हालत मे रहे।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुम उस उज्ज्वल—बेचैन बना देनेवाली यावत् दुस्सह वेदना को सात दिन-रात पयन्त भोगकर, एक सौ बीस वप की आयु भोगकर, आर्त्तध्यान के वशीभूत एव दु ख से पीडित होकर कालमास मे (मृत्यु के अवसर पर) काल करके इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे, दक्षिणार्ध भरत मे, गगा नामक महानदी के दक्षिणी किनारे पर विंध्याचल के समीप एक मदोन्मत्त श्रेष्ठ गन्धहस्ती से, एक श्रेष्ठ हथिनी की कूख में, हाथी के बच्चे के रूप म उत्पन्न हुए।

तत्पश्चात् उस हथिनी ने नौ मास पूण होने पर वसन्त मास में तुम्हे जन्म दिया।

---

१—यह अर्थ 'तिउला' पाठान्तर के अनुसार है।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम गर्भवास से मुक्त होकर गजकलभक (छोटे हाथी) भी होगए। लाल कमल के समान लाल और सुकुमार हुए। जपाकुसुम, रक्तवर्ण पारिजात नामक वृक्ष, लाख के रस, सरस कुकुम और सध्याकालीन बादलो के रग के समान रक्तवर्ण हुए। अपने यूथपति के प्रिय हुए। गणिकाओ के समान युवती हथिनियो के उदरप्रदेश मे अपनी सूड डालते हुए काम क्रीडा मे तत्पर रहने लगे।

इस प्रकार सैकडो हाथियो से परिवृत होकर तुम पवत के रमणीय काननो मे सुखपूर्वक विचरने लगे (४१)

**विशेष बोध**—कितना मगलमय वह समय था जब साक्षात् प्रभु महावीर इस धराधाम को अपने पावन चरणो से पवित्र कर रहे थे, और मनुष्य जाति को आत्मजागृति का सदेश दे रहे थे। न जाने कितने पतितो का उन्होंने उदधार किया ? कितने ही धमविमुख जनों को धर्माभिमुख बनाया !

सयमपथ से स्खलित मुनि मेघकुमार को भी प्रभु का सबल सहारा मिल गया। उन्होंने मेघकुमार के पूवभवो का उल्लेख करते हुए कहा—

मेघ ! एक समय वह था जब तू हाथी के भव मे घोर दु ख का भाजन बन गया था। दावानल से सन्तप्त होकर भागा-भागा फिर रहा था। उस समय कौन तेरा सरक्षक था ? भूख-प्यास और घबराहट से आकुल-व्याकुल हो रहा था। मुश्किल से पानी दृष्टि-गोचर हुआ और उसे पीने के लिए तू तालाब मे उतरा। मगर पानी पीने के पहले ही पक मे फस गया ! हाथी का भारी भरकम शरीर ठहरा ! उद्धार होना कठिन होगया। उस समय तेरा विशाल यूथ—तेरे साथी, कोई काम न आया। सब तरफ स निराशा ही पल्ले पडी।

तभी तेरे कर्मोदय से तेरा वैरी दूसरा युवा हाथी वहा आ पहु चा। उसने दन्तप्रहार करके वैर का बदला लिया और तेरा प्राणान्त हो गया। कोई खोज-खबर लेने वाला तक न मिला। तडफ-तडफ कर मरते समय किसी ने सहानुभूति भी प्रदर्शित नही की।

प्रभु द्वारा प्रदर्शित हाथी-भव की झाकी और विशेषत दावानल का वर्णन हृदयस्पर्शी है। जहाँ निरकुश दावानल सुलग उठे वहाँ वृक्षो, पशुओ और पक्षियो का तो लगभग सर्वनाश ही समझिए। इतिहास प्रसिद्ध अरवली के पहाडो मे इस लेखक की जन्मभूमि है। उन पहाडो मे ग्रीष्म ऋतु का तूफान लेखक की आखो देखी घटना है। जब भयकर ज्वालाएं द्रुतगति से चारो ओर फैलती हैं तो प्रलय का साक्षात् दृश्य उपस्थित हो जाता है। असख्य प्राणी उन ज्वालाओं के भक्ष्य बन जाते है।

दीक्षा लेना और देना क्या है? ससार के दु खो से उद्विग्न होकर जब कोई भव्य पुरुष किसी अनुभवी साधक की शरण मे पहु चता है और मुक्तिमार्ग की साधना में उससे पथप्रदर्शन की अपेक्षा करता है, तब वह साधक करुणा प्रेरित होकर उसे अपनी शरण मे लेता है। भव्य पुरुष कहता है—

घर मे आग लगने पर जैसे गृहस्वामी मूल्यवान् वस्तु को बाहर निकाल लेता है और असार वस्तुओं को छोड देता है, उसी प्रकार जरा-मरण की भीषण आग मे जलते हुए इस लोक म स मैं अपनी आत्मा को तारना चाहता हूँ।[1] इसके लिए आपका सहयोग चाहिए।

---

१—जहा गह पलित्तम्मि, तस्स गहस्स जा पभू।
सार-भडाणि णीणेइ, असार अवउज्झइ॥
एव लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य।
अप्पाण तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमन्निओ॥ —उत्तरा० अध्य ११

यहाँ मेघकुमार ने भी भगवान् महावीर के प्रति यही निवेदन किया था और भगवान् ने उसे सहयोग देना स्वीकार किया था। प्रस्तुत मे भगवान् का सहयोग मेघ मुनि के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। अगर भगवान् ने उसे सहायता न दी होती तो वह सयम से च्युत हुए बिना न रहते। ऐसे अवसरो पर ज्ञानी गुरु ही रक्षक होते हैं।

मेघ मुनि का यह चरित्र मानव-मन की चचलता का ज्वलन्त निदशन है। दीक्षा के समय उनके जो भाव थे और दीक्षा की प्रथम रात्रि मे जो भावना उत्पन्न हुई, उन दोनो मे प्रकाश और अधकार जितना अन्तर ह। दीक्षा के समय भगवान् के समक्ष उन्होंने कहा था—भगवन्! जरा और मृत्यु के दावानल से ससार जल रहा है, खूब जल रहा है। मैं अपने आपको (आत्मा को) इस आग मे बचाना चाहता हूँ। मेरे लिए यही कल्याणकारी है।

किन्तु जरा सा सकट आते ही मन ने अपनी गति बदल ली। वह पुन उसी आग में झुलसने के लिए मेघ मुनि को प्रेरित करने लगा। किन्तु भगवान् की धर्मशिक्षा से मन फिर समीचीन पथ पर आ गया। मन मे उठी तरग शान्त हो गई। यह गुरुकृपा का पुनीत प्रसाद समझना चाहिए। (४१)

**मूलपाठ**—तए ण तुम मेहा! उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुपत्ते जूहवइणा कालधम्मुणा सजुत्तेण त जूह सयमेव पडिवज्जसि।

तए ण तुम मेहा! वणयरेहिं निव्वत्तियनामधेज्जे जाव चउदते मेरुप्पभे हत्थिरयणे होत्था। तत्थ ण तुम मेहा! सत्तगपइट्ठिए तहेव जाव पडिरूवे।

तत्थ ण तुम मेहा! सत्तसइयस्स जूहस्स आहेवच्च जाव अभिरमेत्था।

तए ण तुम अन्नया कयाइ गिम्हकालसमयसि जेट्ठा-

मूले वणदवजालापलित्तेसु वणतेसु सुधूमाउलासु दिसासु जाव मडलवाए व्व परिब्भमन्ते भीए तत्थे जाव सजायभए बहूहिं हत्थीहि य जाव कलभियाहि य सद्धिं सपरिवुडे सव्वओ समता दिसोदिसिं विप्पलाइत्था ।

तए ण तुम मेहा ! त वणदव पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—

'कहिं ग मन्ने मए अयमेयारूवे अग्गिसभवे अणुभूयपुव्वे ?'

तए ण तव मेहा ! लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं, अज्झवसाणेण सोहणेण, सुभेण परिणामेण, तयावरणिज्जाण कम्माण खओवसमेण ईहापोहमग्गणगवेसण करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाइसरणे समुप्पज्जित्था ।

तए ण तुम मेहा ! एयमट्ठ सम्म अभिसमेसि—'एव खलु मया अईए दोच्चे भवग्गहणे इहेव जवुद्दीवे भारहे वासे वेयड्ढगिरिपायमूले जाव सुहसुहेण विहरइ । तत्थ ण महया अयमेयारूवे अग्गिसभवे समणुभूए ।'

तए ण तुम मेहा ! तस्सेव दिवसस्स पच्चावरण्हकालसमयसि नियएण जूहेण सद्धिं समन्नागए यावि होत्था । तए ण तुम अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'त सेय खलु मम इयाणि गगाए महानदीए दाहिणिल्लसि कूलसि विझगिरिपायमूले दवग्गिसजायकारणट्ठा सएण जूहेण महालय मडल घाइत्तए' त्ति कट्टु एव सपेहेसि, सपेहित्ता सुह सुहेण विहरसि ।

तए ण तुम मेहा ! अन्नया कयाइ पढमपाउससि महावुट्ठिकायसि सन्निवइयसि गगाए महाणदीए अदूरसामते

बहूहिं हत्थीहिं जाव कलभियाहि य सत्तहि हत्थिसएहिं सपरिवुडे एग मह जोयणपरिमण्डल महइमहालय मडल घाएसि । ज तत्थ तण वा पत्त वा कट्ठ वा कटए वा लया वा वल्ली वा खाणु वा रुक्खे वा खुवे वा, त सव्व तिक्खुत्तो आहुणिय आहुणिय पाएण उट्ठवेसि, हत्थेण गेण्हसि, एगते पाडेमि ।

तए ण तुम मेहा ! तस्सेव मडलस्स अदूरसामते गगाए महानईए दाहिणिल्ले कूले विझगिरिपायमूले गिरिसु य जाव विहरमि ।

तए ण तुम मेहा ! अन्नया कयाइ मज्झिमए वरिसारत्तसि महावुट्ठिकायसि सनिवइयसि जेणेव से मडले तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता तच्चपि मडलधाय करेसि, ज तत्थ तण वा जाव सुहसुहेण विहरसि । (४२)

मूलार्थ—तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम बाल्यावस्था को पार कर यौवन को प्राप्त हुए । फिर अपने यूथपति के कालधम को प्राप्त होने पर तुम स्वय ही उस यूथ को वहन करने लगे, अर्थात् यूथपति हो गए ।

तत्पश्चात् हे मेघ ! वनचरों ने तुम्हारा नाम मेरुप्रभ रक्खा । तुम चार दांतों वाले हस्तिरत्न हुए । हे मेघ ! तुम सातो अगो से भूमि को स्पर्श करने वाले आदि पूर्वोक्त विशेषणो से युक्त यावत् सुन्दर रूप वाले हुए । हे मेघ ! तुम वहा सात सौ हाथियो के यूथ का अधिपतित्व करते हुए अभिरमण करने लगे ।

तत्पश्चात् अन्यदा कदाचित् ग्रीष्मकाल के अवसर पर ज्येष्ठ मास मे वन के दावानल की ज्वालाओ से वनप्रदेश जलने लगे । दिशाए धूम से भर गई । उस समय तुम बवण्डर की तरह इधर-उधर भाग-दौड करने लगे । भयभीत हुए, व्याकुल हुए और बहुत

डर गए। तब बहुत से हाथियो यावत् तरुण हथिनियो के साथ, उनसे परिवृत होकर, चारो ओर एक दिशा से दूसरी दिशा मे भागे।

हे मेघ! उस समय उस वन के दावानल को देखकर तुम्हें इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् उत्पन्न हुआ—लगता है जैसे इस प्रकार की अग्नि की उत्पत्ति मैंने कभी पहले अनुभव की है! तत्पश्चात हे मेघ! विशुद्ध होती हुई लेश्याओ, शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम और जातिस्मरण को आवृत करने वाले कर्मों का क्षयोपशम होने से, ईहा, अपोह, मार्गण और गवेषणा करते हुए तुम्हे सज्ञी जीवा को प्राप्त होने वाला जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुमने यह अर्थ सम्यक् प्रकार से जाना कि—निश्चय ही मैं व्यतीत हुए दूसरे भव मे इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भरत क्षेत्र मे, वैताढ्यगिरि के पादमूल मे सुखपूर्वक विचरता था। वहा इस प्रकार का महान् अग्नि का सभव मैंने अनुभव किया है।

तदनन्तर हे मेघ! तुम उस भव मे उस दिन अन्तिम प्रहर तक अपने यूथ के साथ विचरण करते थे। [हे मेघ! उसके बाद काल करके दूसरे भव मे सात हाथ ऊचे यावत् जातिस्मरण से युक्त चार दात वाले हाथी हुए।]

तत्पश्चात हे मेघ! तुमने कदाचित एक बार प्रथम वर्षाकाल मे खूब वर्षा होने पर गगा महानदी के समीप बहुत से हाथियो यावत् हथिनिया से अर्थात् सात सौ हाथिया से परिवृत होकर एक योजन परिमित अत्यन्त विशाल गोल मडल बनाया। इस मडल में जो भी घास, पत्ते, काष्ठ, कांटे, लता, बेलें, ठूठ, वृक्ष या पौधे आदि थे, उन सब को तीन बार हिलाकर पैरो से उखाडा, सूड से पकडा और एक ओर ले जाकर डाल दिया।

हे मेघ! तत्पश्चात् तुम उसी मडल के समीप गगा महानदी के

दक्षिण किनारे विन्ध्याचल के पादमूल मे पवत आदि पूर्वोक्त स्थानो मे विचरण करने लगे।

तत्पश्चात् हे मेघ ! किसी अन्य समय मध्य वर्षा ऋतु मे खूब वर्षा होने पर तुम उस स्थान पर आए जहा वह मडल था। वहा आकर दूसरी बार उस मडल को ठीक तरह साफ किया। इसी प्रकार अंतिम वर्षा रात्रि मे घोर वृष्टि होने पर जहा मडल था, वहा आए। आकर तीसरी बार उस मडल को साफ किया। वहा जो भी तृण आदि थे उन सब को उखाड कर सुखपूर्वक विचरण करने लगे। (४२)

**विशेष बोध**—सवज्ञ सवदर्शी प्रभु महावीर की कितनी महान् करुणा है कि वे मेघकुमार को इतने विस्तार के साथ समझा रहे हैं। बार-बार कितना सबोधन कर रहे हैं ! धन्य हैं महामुनि मेघ कुमार, जिन्हे समय पर तरण-तारण के रूप मे साक्षात् त्रिलोकीनाथ भगवान् का सान्निध्य और अनुग्रह प्राप्त हुआ।

घर डर गुरु-डर वश-डर, डर लज्जा डर राज।<br>
एते डर मन मे रखे, तो ही सुधरे काज।

जिस मनुष्य के हृदय मे इन बातो का खयाल रहता है वह प्रथम तो कुमाग पर जाता नही, अयोग्य कृत्य करता नहीं, कदाचित् ऐसा हो जाय तो शीघ्र ही अपने को सभाल लेता है। मेघकुमार को इन बातों का खयाल था। इसी कारण वे उपदेश के पात्र भी थे।

अमृत वाणी से उपदेश करते हुए प्रभु ने मेघकुमार से कहा—हे मेघ ! तू पिछले दूसरे भव मे भी हाथी पर्याय मे था और यूथपति बना था।

सम्यग्ज्ञान, दशन और चारित्र के अभाव मे पशुपति और नृपति समान हैं।

'मेरुप्रभ' नाम मे यह परिलक्षित होता है कि यह बहुत बडा एव प्रभावशाली रहा होगा।

सात सौ हाथियो का स्वामी होना भी पूर्वाजित किसी पुण्य का प्रभाव समझना चाहिए।

मूलपाठ मे मेरुप्रभ के यूथ को सात सौ का कहा है—'सत्तसइयस्स जूहस्स आहेवच्चं जाव अभिरमेत्था।' अर्थात् मेरुप्रभ सात सौ के यूथ का स्वामित्व करता हुआ रमण करता था।

यहा सभावना यह है कि उसके यूथ मे सात सौ हथिनिया होनी चाहिएँ। वन्दर आदि के समूहो को देखने पर ज्ञात होता है कि एक समूह मे एक वन्दर होता है, शेष सब वन्दरिया। वन्दर और हाथी आदि की आदत सुनी जाती है कि नवीन सन्तति उत्पन्न होते ही यूथपति उसे देखता है। यदि वह मादा नही, नर हुआ तो उसे मार डालता है।

सीचानक हाथी की कथा प्रसिद्ध है। गर्भवती हथिनी यूथपति के इसी भय के कारण यूथ से पृथक् पीछे-पीछे रहा करती थी। उसने यूथपति को पता नहीं चलने दिया। तापसो के मठ में छिपकर माता ने सीचानक हाथी को जन्म दिया। वही सेचनक हाथी श्रेणिक राजा का प्रेमपात्र बना।

इस प्रकार हाथियो का यूथपति हाथी नही हो सकता। उनमे परस्पर सघर्ष हो जाता है। हथिनियो का यूथ हो तो ऐसी सभावना नही रहती। किन्तु प्रस्तुत शास्त्र मे ही कुछ वाक्य ऐसे हैं जिनसे यूथ मे हाथियो का होना भी प्रतीत होता है। तत्त्व केवलिगम्यम्।

हाँ, तो भगवान् मेघकुमार को सबोधन करते हुए कहते हैं—तू दूसरे भव मे भी हाथी हुआ। वहा भी आग का भय उत्पन्न हुआ।

अनादि काल से भवभ्रमण करनेवाले इस आत्मा ने असख्य वार आग का उपद्रव अनुभव किया है। परन्तु प्रसगानुसार सन्निकट होने के कारण यहा दो ही भव वतलाए गए हैं।

भय और विस्मय की स्थिति मे पाणी के अन्तरतम मे अनेक तरगें उठती हैं। ऐसी ही स्थिति मे मेरुप्रभ हाथी को जाति स्मरण ज्ञान की प्राप्ति हुई। उसने सोचा—ऐसी आग पहले भी कही देखी है। आग घू घू करके जल रही है। जो भी उसकी लपट मे आता है, भस्म हो जाता है। जान पडता है जन्म-जन्म का भूखा यम सहस्रो जिह्वाए धारण करके सभी कुछ भख रहा है, अनगिनती प्राणियो को निगल रहा है और इसी कारण उसकी ये जिह्वाए रक्तवण हो गई हैं।

उसे पहले की कुछ सुध आती है। उसी समय लेश्याओ की विशुद्धि से और अध्यवसायो की निमलता के कारण उसे जातिस्मरण उत्पन्न हो गया।

पूवजन्मो की याद आ जाना जातिस्मरण कहलाता है। यह पाच प्रकार के ज्ञानो मे से मतिज्ञान का विकसित रूप है। इसका अन्तरग कारण मतिज्ञानावरण कम का विशिष्ट क्षयोपशम एव लेश्या तथा अध्यवसाय की विशुद्धि है। वाह्य कारण अनेक प्रकार के हो सकते हैं। यहाँ पूवदृष्ट दावानल के समान दावानल को देखना उसका वाह्य कारण है।

सद्भाव की ओर उपयोग का आकृष्ट होना ईहा है। असद्भूत पदाथ का पृथक्करण अपोह है। वस्तुस्वरूप के निश्चय के अभिमुख उपयोग की प्रवृत्तिविशेष मागणा और गवेषणा है।

इस प्रकार का मतिज्ञान हाथी को हुआ। इस ज्ञान से उसने अपने पूवभव की घटना को जान लिया।

आश्चय है कि आज यह विशिष्ट मतिज्ञान मानवो को भी प्राप्त नही है। आधुनिक वैज्ञानिक भी, जो चन्द्रमा पर पहुच जाने का दावा करते हैं, यह नही जानते कि वे स्वय कौन हैं? पूव मे क्या थे? भविष्य मे क्या होंगे?

जातिस्मरण ज्ञान के फलस्वरूप वह पूर्वभव के भय का भी स्मरण करने लगा। भयभीत होकर उसने भविष्य के लिए रक्षा का उपाय किया।

वह उपाय था एक विशाल मंडल बनाना। घास फूस, पेड़ पौधे, लता-वल्लरी, जो भी एक नियत प्रदेश में था, सबको उसने उखाड़ फेंका। एक योजन गोलाकार भूमि उसने साफ कर डाली, जिससे वहां आग का उपद्रव न हो सके। (४२)

**मूलपाठ**–अह मेहा! तुम गइन्दभावम्मि वट्टमाणो कमेण नलिणिवणविवहणगरे हेमन्ते कुन्दलोद्धउद्धततुसारपउरम्मि अइक्कन्ते, अहिणवे गिम्हसमयंसि पत्ते, वियट्टमाणो वणेसु वणकरेणुविविहदिण्णकयपसवघाओ तुम उउयकुसुमकयचामरकन्नपूरपरिमण्डियाभिरामो मयवसविगसतकडतडकिलिन्नगंधमदवारिणा सुरभिजणियगंधो करेणुपरिवारिओ उउसमत्तजणियसोहो काले दिणयरकरपयंडे परिसोसियतरुवरसिहरभीमतरदंरिसणिज्जे भिंगाररवंतभेरवरवे णाणाविहपत्तकट्ठतणकयवरुद्धत पइमारुयाइद्धनहयलदुमगणे वाउलियादारुणयरे तण्हावसदोसदूसियभमन्तविविहसावयसमाउले भीमदरिसणिज्जे वट्टंते दारुणम्मि गिम्हे, मारुयवसपसरयसरियवियंभिएण अब्भहियभीमभेरवरवप्पगारेण महुधारापडियसित्त - उद्धायमाणधगधगतसद्दुद्धुएण दित्ततरसफुलिंगेण धूममालाउलेण सावयसयतकरणेण अब्भहियवणदवेण जालालोवियनिरुद्धधूमधंकारभीओ आयवालो य महंततुंबइयपुन्नकण्णो आकुंचियथोरपीवरकरो भयवसभमन्तदित्तनयणो वेगेण महामेहोव्व पवणोल्लियमहल्लरूवो जेणेव कओ पुरा दवग्गि-

भयभीयहियएण अवगयतणप्पएस-रुक्खो रुक्खोद्देसो दव-ग्गिसताणकारणट्ठाए जेणव मडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

एक्को ताव एस गमो। (४३)

मूलाय—हे मेघ! तुम गजेन्द्र पर्याय मे वर्त्त रहे थे कि अनुक्रम से कमलिनियो के वन का विनाश करने वाला, कुन्द और लोध्र के पुष्पो की समृद्धि से सम्पन्न तथा अत्यन्त हिमवाला हमन्त ऋतु व्यतीत हो गया। अभिनव ग्रीष्मकाल आ पहुचा। उस समय तुम वनो मे विचरण कर रहे थे। वहा क्रीडा करते समय वन की हथिनिया तुम्हारे ऊपर विविध प्रकार के कमलो एव पुष्पो का प्रहार करती थी। तुम उस ऋतु में उत्पन्न पुष्पों के बने चामर जैसे कण के आभूषणो से मण्डित और मनोहर थे। मद के कारण विकसित गण्डस्थलो को आर्द्र करने वाले तथा झरते हुए सुगधित मद-जल से तुम सुगधमय वन गये थे। हथिनियो से घिरे रहते थे। सव तरह से ऋतु-संवधी शोभा उत्पन्न हुई थी। उस ग्रीष्म काल मे सूय की प्रखर किरणें गिर रही थी। उस गीष्म ऋतु ने वृक्षा के शिखरो को अत्यन्त शुष्क बना दिया था। वह बडा ही भयकर प्रतीत होता था। शब्द करने वाले भृ गार नामक पक्षी भयानक शब्द करते थे। पत्र, काष्ठ तृण और कचरे को उडाने वाले प्रतिकूल पवन से आकाशतल और वृक्षो का समूह व्याप्त हो गया था। वह ववण्डरो के कारण भयावह दीख पडता था। प्यास के कारण उत्पन्न वेदनादि दोषा से दूषित हुए और इसी कारण इधर-उधर भटकते हुए श्वापदो (शिकारी जगली पशुओं) से युक्त था। देखने मे भयानक ग्रीष्म ऋतु,उत्पन्न हुए दावानल के कारण और अधिक दारुण हो गया।

वह दावानल वायु के कारण प्राप्त हुए प्रचार से फल गया और विस्मित हुआ था। उसके शब्द का प्रकार अत्यधिक भयकर था। वृक्षों से गिरने वाले मधु की धाराओं से सिंचित होने के कारण वह

अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हुआ था। धधक रहा था और शब्द के कारण उद्धत था। वह अत्यन्त देदीप्यमान, चिनगारियों से युक्त और धूम की कतार से व्याप्त था। सैकड़ों श्वापदों के प्राणों का अन्त करने वाला था। इस प्रकार तीव्रता को प्राप्त दावानल के कारण वह ग्रीष्म ऋतु अत्यन्त भयकर दिखाई देता था।

हे मेघ! तुम उस दावानल की ज्वालाओ से आच्छादित हो गए—रुक गए। इच्छानुसार जाने मे असमर्थ हो गए। धूम के कारण उत्पन्न अधकार से भयभीत हो गए। अग्नि के ताप को देखने से तुम्हारे दोनो कान अरघट्ट के तुम्ब के समान स्तब्ध रह गए। तुम्हारी मोटी और बड़ी सूड सिकुड गई। भय के कारण नेत्र इधर-उधर झाकने लगे। वेग के कारण तुम्हारा स्वरूप विस्तृत दिखाई देने लगा। पहले दावानल के भय से भीतहृदय होकर दावानल से अपनी रक्षा करने के लिए, जिस दिशा मे तृण के प्रदेश (मूल आदि) और वृक्ष हटाकर सफाचट प्रदेश बनाया था और जिधर वह मण्डल बनाया था, उधर ही जाने का तुमने विचार किया। वही जाने का निश्चय किया।

यह एक गम है अर्थात् किसी किसी आचार्य के मतानुसार इस प्रकार का पाठ है। (४३)

विशेष बोध—प्रस्तुत शास्त्र में स्थान-स्थान पर काव्यमय शैली दृष्टिगोचर होती है। यह शास्त्र व्यास-शैली मे सुनिर्मित है। इस सूत्र में प्राकृतिक वर्णन वस्तुत अत्यन्त सजीव और हृदयस्पर्शी है।

शीत के प्रकोप से कमलिनी के पत्ते नष्ट हो गए। वसन्त के प्रारम्भ मे पतझड होता है। किन्तु यह पतझड विषाद या नैराश्य का कारण नही, क्योकि उसके पश्चात् नूतन किशलय और पत्र आते हैं। विषाद तो तब होता है जब दाह पड़ने से पत्ते नष्ट हो जाते हैं। कवि कहता है—

दाह नही ऋतुराज है, सुन तरुवर, यह बात।
इनके विछुडे आएंगे, कोमल-कोमल पात॥

पुरातन के उजडे विना नूतन की सृष्टि नही होती। दातारो मे जागृति उत्पन्न करने के लिए यह कहा गया है। जैसे वृक्ष पुराने पत्ता का त्याग करते है तो उनमें नवीन नवान सुकोमल पत्ते आ जाते हैं, उसी प्रकार दातार जब दान देता है तो उसे अनेकगुणित सम्पत्ति प्राप्त होती है।

दाह के पश्चात् ऋतुराज वसन्त का आगमन हुआ। वसन्त मन-मोहक मौसिम है। उसके आने पर प्रकृति जैसे नवीन शृगार से युक्त होकर श्रीसम्पन्न बन जाती है। पुराने पत्तो जाते हैं, मगर नवीन उनका स्थान ले लेते हैं।

घर मे से स्थविर जाते हैं तो खेद तो होता है, पर नवीन उनके स्थान की पूर्ति करते रहते हैं तो वह दुख विस्मृत हो जाता है। वसन्त के समय भी यही जाना और आना होता है। आने वाले की मोहकता के कारण जाने वाले के वियोग का सन्ताप विस्मृत हो जाता है।

गजराज मेरुप्रभ सुहावने वसन्त मे मदोमत्त हुआ। काम-विकार मे ग्रस्त होकर सात सौ हथिनियो के साथ रमण करता हुआ मस्त हो गया। मगर—

चक्रवत्परिवर्त्तन्ते दुखानि च सुखानि च।

ससार मे दुख और सुख गाडी के पहिये के समान घूमत रहते हैं। सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख आता है। मेरुप्रभ ने अपन पर्याय के अनुकूल सुख का उपभोग किया तो दुख भी आकर उपस्थित हो गया।

वसन्त गया। उसके साथ ही जीवन का वसन्त भी चला। परि-ताप, सताप और उद्वेग बढ़ाने वाला ग्रीष्म का मौसिम आधमका।

भोग विलास के दिन लद गए। चारा ओर गर्मी ही गर्मी अनुभूत होने लगी। लू चलने लगी और प्राणो को झुलसाने लगी। वन के जन्तु प्यास से पीडित होकर दुखी होने लगे।

हथनिया वही थीं, पर अब वे मेरुप्रभ को वैसा आनन्द नहीं दे रही थीं। जैसे सभी के प्राण सूख रहे थे। मेरुप्रभ भी परेशान था। सुख का माग सब ओर से अवरुद्ध हो गया था।

ऐसे प्रकृतिजनित सन्ताप के अवसर पर दावानल फिर सुलग उठा। जलती आग मे घी की आहुति पड गई। यहा दावानल का वणन अत्यन्त स्वाभाविक है और पढते ही हृदय दहल उठता है।

ससार वन है! इस ससार मे भी कभी-कभी प्राकृतिक प्रकोप का दावानल सुलगता है। जैसे पूरे के पूरे वन मे दावानल नहीं फैलता, बीच मे नदी-नाला आदि आ जाने पर रुक जाता है, इसी प्रकार प्राकृतिक उपद्रव भी कही-कही होते हैं, एक साथ सवत्र नही। भरत क्षेत्र मे छह आरो का चक्र चलता है। जब छठा आरा प्रारम्भ होता है तो भरत क्षेत्र मे भी दावानल-सा उत्पन्न हो जाता है, मगर विदेह क्षेत्र में यह उपद्रव नही होता।

मरुस्थली मे अवृष्टि के कारण प्राय दुष्काल पडता है, सवत्र ऐसा नही होता।

जैसे दावानल से वन्य पशु व्याकुल और सन्तप्त हुए, उसी प्रकार ससार मे जन्म-मरण की आग मे जीव दुखी होते हैं।

दावानल के दुःख से त्राण पाने के लिए हाथी ने प्रयत्न किया—मडल बनाया तो फिर मनुष्य जसा बुद्धिमान् प्राणी जन्म मरण की आग से परित्राण पाने के लिए उचित उपाय क्या न करे? सम्यग्ज्ञान और क्रिया की साधना से ही उसे त्राण मिल सकता है।

आग की लपटो से त्रस्त होकर कोई इधर और कोई उधर भागा। यूथ बिखर गया। किसी ने किसी की चिन्ता न की। मौत

की वेला आने पर यही होता है। परिवार कहीं रह जाता है और जीव अकेला कही का कही पहु च जाता है।

मेरुप्रभ हाथी अकेला पड गया। वह उसी ओर भागा जिस ओर उसने मडल वनाया था।

मनुष्य के विवेक की सार्थकता इसी मे है कि वह भी सकट का अवसर आने से पूव ही अपने लिए ऐसा सुरक्षित स्थान वना ले जहाँ पहु च कर निर्भय वन सके। (४३)

**मूलपाठ**—तए ण तुम मेहा! अन्नया कयाइ कमेण पचसु उउसु सम-इक्कतेसु गिम्हकालसमयसि जेट्ठामूले मासे पायवसघससमुट्ठिएण जाव सवट्टिएसु मिय-पसु-पक्खि-सिरीसवेसु दिसोदिसि विप्पलायमाणेसु तेहिं वहूहिं हत्थीहि य सद्धि जेणेव मडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्थ ण अण्णे वहवे सीहा य, वग्घा य, विगया दीविया अच्छा य, रिच्छ-तरच्छा य, पारासरा य, सरभा य, सियाला विराला सुणहा, कोला, ससा, कोकतिया, चित्ता, चिल्लला पुव्वपविट्ठा अग्गिभयविद्दुया एगयओ विलधम्मेण चिट्ठ ति।

तए ण तुम मेहा! जेणेव से मडले तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता तेहिं वहुहिं सीहेहिं जाव चिल्ललएहिं य एगयओ विलधम्मेण चिट्ठसि।

तए ण तुम मेहा! पाएण गत्त कडुइस्सामि त्ति कट्टु पाए उक्खित्ते, तसि च ण अतरसि अन्नेहिं वलवतेहिं सत्तेहिं पणोलिज्जमाणे पणोलिज्जमाणे ससए अणुपविट्ठे।

तए ण तुम मेहा! गाय कडुइत्ता पुणरवि पाय पडि-निक्खमिस्सामि त्ति कट्टु त ससय अणुपविट्ठ पाससि,

पासित्ता पाणाणुकपयाए भूयाणुकपयाए जीवाणुकपयाए सत्ताणुकपयाए से पाए अतरा चेव सधारिए, नो चेव ण णिक्खित्ते।

तए ण तुम मेहा ! ताए पाणाणुकपयाए जाव सत्ताणुकपयाए ससारे परित्तीकए, मणुस्साउए निबद्धे।

तए ण से वणदवे अड्ढाइज्जाइ राइदियाइ त वण झामेइ, झामेत्ता निट्ठिए, उवरए, उवसते, विज्झाए यावि होत्था।

तए ण ते बहवे सीहा य जाव चिल्ललया य त वणदव निट्ठिय जाव विज्झाय पासति, पासित्ता अग्गिभयविप्पमुक्का तण्हाए य छुहाए य परब्भाहया समाणा तओ मण्डलाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता सव्वओ समता विप्पसरित्था।

तए ण तुम मेहा ! जुण्णे जराजज्जरियदेहे सिढिलवलियपिणिद्धगत्ते दुब्बले किलते जु जिए पिवासिए अत्थामे अबले अपरक्कमे अचकमणो वा ठाणुखडे वेगेण विप्पसरिस्सामि त्ति कट्टु पाए पसारेमाणे विज्जुहए विव रययगिरिपब्भारे धरणियलसि सव्वगेहि य सन्निवइए।

तत्थ ण तव मेहा ! सरीरगसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दाहवक्कतीए यावि विहरसि। तए ण तुम मेहा ! त उज्जल जाव दुरहियास तिन्न राइदियाइ वेयण वेदेमाणे विहरित्ता एग वाससय परमाउ पालइत्ता इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे नयरे सेणियस्स रण्णो धारिणीए देवीए कुच्छिसि कुमारत्ताए पच्चायाए।

(४४)

मूलार्थ—हे मेघ ! किसी समय पाच ऋतुए व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्म काल के अवसर पर, जेठ मास मे वृक्षो की परस्पर रगड से उत्पन्न हुए दावानल के कारण यावत् अग्नि फैल गई और मृग, पशु, पक्षी तथा सरीसृप आदि भाग दौड करने लगे। तब तुम बहुत-से हाथियो आदि के साथ जहा वह मडल था वहा जाने के लिए दौडे।

(यह दूसरा गम है, अर्थात् अन्य आचार्यो के मतानुसार पूर्वोक्त पाठ के स्थान पर यह पाठ है।)

उस मडल मे अन्य बहुत से सिंह, व्याघ्र, भेडिया, द्वीपिक, चीते, रीछ, तरच्छ, पारासर, शरभ, शृगाल, विडाल, श्वान, शूकर, खरगोश, लोमडी, चित्र और चिल्लल आदि पशु अग्नि के भय से पराभूत होकर पहले से ही आ घुसे थे और एक साथ विलधम से रहे हुए थे—अर्थात् जैसे एक विल मे बहुत-से मकोडे ठसाठस भर रहते हैं, उसी प्रकार उस मडल मे भी पूर्वोक्त जीव ठसाठस भरे थे।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम जहा मडल था वहा आए और आकर उन बहुसख्यक सिंह यावत् चिल्ललक आदि के साथ एक जगह विलधम मे ठहर गए।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने 'पैर से शरीर खुजाऊ' ऐसा सोचकर एक पैर ऊपर उठाया। इसी समय उस खाली हुई जगह मे अन्य बलवान् प्राणियो द्वारा प्रेरित—धकियाया हुआ एक शशक प्रविष्ट हो गया।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने पैर से खुजाकर सोचा कि मैं पैर नीचे रखू, परन्तु शशक को पैर की जगह मे घुसा हुआ देखा। देखकर द्वीन्द्रियादि प्राणियों की अनुकम्पा से, वनस्पतिरूप भूतो की अनुकम्पा से, पचेन्द्रिय जीवो की अनुकम्पा से तथा वनस्पति के सिवाय शेष चार स्थावर सत्त्वो की अनुकम्पा से वह पैर अधर ही रखा। नीचे नही रखा।

हे मेघ ! तब उस प्राणानुकम्पा यावत् सत्त्वानुकम्पा से तुमने संसार परीत किया और मनुष्यायु का बन्ध किया।

तत्पश्चात् वह दावानल अढाई अहोरात्रपर्यन्त उस वन को जलाकर पूर्ण हो गया, उपरत हो गया, उपशान्त हो गया और बुझ गया।

तब उन बहुत-से सिंह यावत् चिल्ललक आदि प्राणियों ने उस वन दावानल को पूरा हुआ यावत् बुझा हुआ देखा और देखकर वे अग्नि के भय से मुक्त हुए। वे प्यास एवं भूख से पीडित होते हुए उस मडल से बाहर निकले और निकलकर चहुँ ओर फैल गए।

हे मेघ ! उस समय तुम वृद्ध, जरा से जर्जरित शरीर वाले, शिथिल एवं सलो वाली चमडी से व्याप्त गात्र वाले, दुर्बल, थके हुए, भूखे-प्यासे, शारीरिक शक्ति से हीन, सहारा न होने से निर्बल, सामर्थ्य से रहित, चलने फिरने की शक्ति से रहित और ठूठ की तरह स्तब्ध रह गए। 'मैं वेग से चलूं' ऐसा विचार कर ज्यों ही पैर पसारा कि विद्युत् से आहत रजतगिरि के शिखर के समान सभी अगो से तुम धडाम से धरती पर गिर पडे।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हारे शरीर में उत्कट वेदना उत्पन्न हुई तथा दाहज्वर उत्पन्न हुआ। तुम ऐसी स्थिति मे रहे। तब हे मेघ ! तुम उस उत्कट यावत् दुस्सह वेदना को तीन रात्रि-दिवस पर्यन्त भोगते रहे। अन्त मे सौ वर्ष की आयु भोग कर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे भारतवर्ष मे, राजगृह नगर मे श्रेणिक राजा की धारिणी देवी की कुक्षि मे कुमार के रूप मे उत्पन्न हुए। (४४)

विशेष बोध—मेरुप्रभ हाथी आग से भयभीत हो पूर्वनिर्मित मडल मे चला गया। अग्नि के उत्पन्न होकर वन मे फैल जाने और उसके कारण वन्य जीवो के सन्तप्त एव त्रस्त होने का वर्णन दूसरी बार आया है।

# करुणावान हाथी
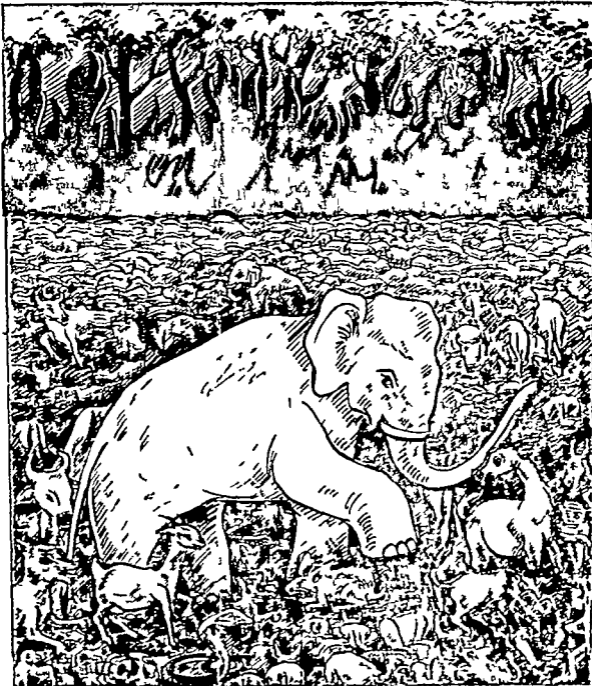
हाथी ने खुजलाने के लिए ज्यों ही पैर ऊपर उठाया नीचे एक खरगोश आ दुबका
और पैर ऊपर उठा ही रह गया। एक खरगोश की नन्ही-सी जान
बचाने के लिए उसने अपनी जान दे दी।

प्रथम पाठ विस्तार युक्त है और उसमें काव्य की शैली परिलक्षित होती है। दूसरा पाठ संक्षिप्त है और आलंकारिक वर्णन से रहित सादा है।

मूल में ही स्पष्ट कर दिया गया है—'एक्को पाव एत्थ वसो' अर्थात् यह एक पाठ है। किसी-किसी आचार्य के अनुसार इस प्रकार का पाठ है।

प्रारंभ में सूत्र लिपिबद्ध नहीं थे। मुनिजन उन्हें कण्ठस्थ रखते थे और मौखिक ही अपने शिष्यों को सिखाते थे। इस प्रकार गुरु-शिष्य परम्परा लम्बे समय तक चलती रही। बाद मे दुर्भिक्षों के कारण तथा काल के प्रभाव से स्मृति की क्षति होने से पाठो का विस्मरण हो गया। तब अनेक बार युगप्रधान आचार्य मिले और उन्होंने आगम पाठों को पुन व्यवस्थित करने का प्रयास किया। फिर भी कहीं-कहीं वे एकमत न हो पाए। इसी कारण शास्त्रो मे वाचनाभेद उपलब्ध होता है। कहीं माथुरी वाचना और कहीं नागार्जुनीय वाचना आदि का भेद दृष्टिगोचर होता है। यहाँ भी इसी वाचना-भेद का उल्लेख है। फिर भी दोनो पाठो मे जो भेद है वह शाब्दिक ही है। मूल आशय में कोई अन्तर नही है।

आगम तीर्थंकर द्वारा उपदिष्ट और गणधरो द्वारा रचित हैं। उनमे जानबूझ कर अपनी किसी मान्यता को पुष्ट करने के लिए हेर-फेर करना, किसी पाठ को निकाल देना अथवा कहीं प्रक्षिप्त कर देना उचित नहीं है। आगमो का प्रामाण्य उनके सम्पूर्ण रहने में ही है। जब जिसने जो चाहा घटा दिया या बढा दिया तो इससे आगम विश्वसनीय नहीं रह सकते। अपने विचार के अनुसार आगमपाठ बना लेने से तो वस्तुत अपना ही विचार प्रमाणभूत रहा, आगम प्रमाणभूत नहीं रहा। अतएव आगम में किसी प्रकार का परिवर्त्तन करना घोर पातक है, बडी से बडी अनैतिकता है। ऐसा करने से

लोगो की श्रद्धा किस प्रकार स्थिर रह सकती है ? आगम तो ज्यों के त्यो रहने चाहिएँ।

हाँ, तो मेरुप्रभ ने जो मडल बनाया था, उसमे दूसरे सभी प्रकार के जानवर घुस गए थे। मेरुप्रभ गया तो वह भी थोडी-सी जगह पाकर खडा हो गया। ठसाठस जानवर भरे थे। जन्म से विरोधी सिंह हिरन आदि जैसे जीव भी उस घोर सकट के समय एक स्थान पर जमा हो गए थे। वे जन्मजात विरोध को भूलकर अपनी प्राण-रक्षा के लिए ही चिंतित थे। सकट का समय आने पर वैर विस्मृत हो जाता है। ग्रीष्म का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास ने कहा है—

फणी मयूरस्य तले निषीदति।

मयूर और सर्प का विरोध प्रसिद्ध है। मयूर सर्प को मार कर खा जाता है, ऐसी प्रसिद्धि है। मगर ग्रीष्म के ताप से व्याकुल होकर सर्प भी मयूर के शरीर की छाया में आ जाता है।

यहा भी ऐसी ही स्थिति है। जगली जानवर उस मडल मे ऐसे भरे थे जैसे किसी बिल मे मकोडे भरे होते हैं। इसे शास्त्रकार ने 'बिलधर्म' से रहना कहा है।

शशक बेचारा छोटा और सुकोमल प्राणी होता है। एक शशक को ठहरने को स्थान नही मिल रहा था। धक्के खा रहा था। व्याकुल हो रहा था। मेरुप्रभ ने खाज खुजाने के लिए पैर ऊपर उठाया तो जगह खाली हुई और वह शशक उस जगह जा बैठा। वह हाथी की शरण मे जा पहुचा। बडे की छाया भी श्रेयस्कर होती है—

सेवितव्यो महावृक्ष, फलच्छायासमन्वित।
यदि दैवात्फल नास्ति, छाया केन निवार्यते॥

फल और छाया वाले विशाल वृक्ष का आश्रय लेना उचित है। कदाचित् समय अनुकूल न होने के कारण फलो की प्राप्ति न हो, तो भी छाया को कौन रोक सकता है ? वह तो मिलेगी ही।

शशक ने विशालकाय हाथी की शरण ग्रहण की। वह सुखी बन गया।

मेरुप्रभ ने शरीर खुजाकर ज्यो ही पैर नीचे रखना चाहा देखा कि शशक उस स्थान पर आ जमा है। हाथी चाहता तो पैर रख सकता था और शशक को कुचल सकता था। परन्तु वह ऐसा करुणा-हीन नही था। उसने सोचा—मैं पैर रखता हूँ तो साथी कुचल जाएगा। प्राणरक्षा के लिए यह यहा आया है तो इसके प्राणो का अन्त करना उचित नही।

इस प्रकार विचार कर हाथी ने अढाई दिन-रात्रि पर्यन्त अपना पैर ऊपर ही उठाए रखा। इस कारण पैर मे सूजन आ गई होगी। और वह अकड गया होगा। उसे बडा कष्ट हुआ, फिर भी दयालु हाथी ने अपने सुख की अपेक्षा शशक के सुख को प्रधानता दी। आखिर दावानल बुझ गया। सब भूखे प्यासे प्राणी मडल को छोडकर इधर उधर चल दिए। जगह खाली हो गई।

मेरुप्रभ हाथी ने व्यवहारत शशक की दया की, किन्तु निश्चय से तो षटकाय की ही दया की। इसी अभिप्राय से मूलपाठ मे प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व की अनुकम्पा का कथन किया गया है।

अनुकम्पा की निर्मल भावना से हाथी ने ससार को परीत किया और मनुष्यायु का बन्ध किया। न मालूम कब से चली आरही तिर्यच अवस्था से उसे छुटकारा मिल गया। अनुकम्पा उत्क्रान्ति का साधन है, यह इस कथानक मे स्पष्ट है।

हाथी का शरीर अकड गया। वह भूख-प्यास से पीडित था।

फिर भी उसके मन मे आर्त्त ध्यान उत्पन्न हुआ हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। अन्यथा वह ससार को परीत नहीं कर सकता था।

चलने का प्रयास करके भी हाथी चल नहीं सका। वह वही घड़ाम से गिर पड़ा, जैसे बिजली गिरने से किसी पर्वत का शिखर टूट कर गिर पड़ता है।

वह हाथी प्रकृति का भद्र, प्रकृति से विनीत, अमत्सरभावी और करुणावान् था। वह देह त्याग कर महारानी धारिणी के उदर मे पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। (४४)

मूलपाठ—तए ण तुम मेहा! आणुपुव्वेण गब्भवासाओ निक्खित्ते समाणे उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुपत्ते मम अतिए मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए। त जइ जाव तुम मेहा! तिरिक्खजोणियभावमुवगएण अप्पडिलद्धसम्मत्तरयणलभेण से पाए पाणाणुकपाए जाव अतरा चेव सधारिए, नो चेव ण णिक्खित्ते, किमग पुण तुम मेहा! इयाणि विपुलकुलसमुब्भवेण निरुवहय-सरीरदतलद्धपचिदिए ण एव उट्ठाणबलवीरियपुरिसगार-परक्कमसजुत्तेण मम अतिए मु डे भवित्ता अगाराओ अण-गारिय पव्वइए समाणे समणाण निग्गथाण राओ पुव्व-रत्तावरत्तकालसमयसि वायणाए जाव धम्माणुओगचिताए य उच्चारस्स वा पासवणस्स वा अइगच्छमाणाण य निग्गच्छमाणाण य हत्थसघट्टणाणिय पायसघट्टणाणि य जाव रयरेणुगु डणाणि य नो सम्म सहसि, खमसि, तिति-क्खसि, अहियासेसि ?

तए ण तस्स मेहस्स अणगारस्स, समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म सुभेहि परि-

णामेंहि, पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं, लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं, तयावरणिज्जाण कम्माण खओवसमेण ईहावूहमग्गणगवेसण करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाइसरणे समुप्पन्ने। एयमट्ठ सम्म अभिसमेइ।

तए ण से मेहे कुमारे समणेण भगवया महावीरेण सभारियपुव्वजाइसरणे दुगुणाणीयसवेगे आणदयसुपुन्नमुहे हरिसवसेण धाराहयकदबक पिव समुस्ससियरोमकूवे समण भगव महावीर वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

'अज्जप्पभिई ण भते! मम दो अच्छीणि मोत्तूण अवसेसे काए समणाण निग्गथाण निसट्ठे' त्ति कट्टु पुणरवि समण भगव महावीर वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

'इच्छामि ण भते! इयाणि सयमेव दोच्चपि पव्वाविय, सयमेव मुडाविय जाव सयमेव आयारगोयर जायामायावत्तिय धम्ममाइक्खह।'

तए ण समणे भगव महावीरे मेह कुमार सयमेव पव्वावेइ जाव जायामायावत्तिय धम्ममाइक्खइ—'एव देवाणुप्पिया! गतव्व, एव चिट्ठियव्व, एव णिसीयव्व, एव तुयट्टियव्व, एव भुजियव्व, एव भासियव्व, उट्ठाय उट्ठाय पाणाण भूयाण जीवाण सत्ताण सजमेण सजमियव्व।'

तए ण से मेहे समणस्स भगवओ महावीरस्स अयमेयारूव धम्मिय उवएस सम्म पडिच्छइ, पडिच्छित्ता तह चिट्ठइ, जाव सजमेण सजमइ।

तए ण से मेहे अणगारे जाए इरियासमिए, अणगार-वन्नओ भाणियव्वो ।

तए ण से मेहे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए एयारूवाण थेराण सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवाल-सेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाण भावेमाणे विहरइ ।

तए ण समणे भगव महावीरे रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता वहिया जणवयविहार विहरइ । (४५)

मूलार्थ—तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम अनुक्रम से गर्भवास से बाहर आए—तुम्हारा जन्म हुआ । बाल्यावस्था मे मुक्त हुए और युवावस्था को प्राप्त हुए । तब मेरे निकट मुडित होकर गृहवास से (मुक्त हो) अनगार हुए । तो हे मेघ ! जब तुम तिर्यचयोनिरूप पर्याय मे थे और जब तुम्हे सम्यक्त्व-रत्न का लाभ भी नहीं हुआ था, उस समय भी तुमने प्राणियो की अनुकम्पा से प्रेरित होकर यावत् अपना पैर अधर ही रखा था, नीचे नहीं टिकाया था । तो फिर हे मेघ ! इस जन्म मे तो तुम विशाल कुल मे जन्मे हो, तुम्हें उपघात से रहित शरीर प्राप्त हुआ है, प्राप्त पाचो इन्द्रियो का तुमने दमन किया है और उत्थान (विशिष्ट शारीरिक चेष्टा), बल (शारीरिक शक्ति), वीर्य (आत्मबल), पुरुषकार (विशेष प्रकार के अभिमान) और पराक्रम (कार्य को सिद्ध करने वाले पुरुषार्थ) से युक्त हो और मेरे समीप मुण्डित होकर, गृहवास त्याग कर अगेही बन हो ! फिर भी पहली और पिछली रात्रि के समय श्रमण निर्ग्रन्थ वाचना के लिए यावत् धर्मानुयोग के चिन्तन के लिए तथा उच्चार प्रस्रवण के लिए आते-जाते थे, उस समय तुम्हें उनके हाथ का स्पर्श हुआ, पैर का स्पर्श

हुआ, यावत् रजकणो से तुम्हारा शरीर भर गया, उसे तुम सम्यक् प्रकार से सहन न कर सके, विना क्षुब्ध हुए सहन न कर सके, अदीनभाव से तितिक्षा न कर सके और शरीर को निश्चल रखकर सहन न कर सके।

तत्पश्चात् मेघ अनगार को श्रमण भगवान् महावीर के पास से यह वृत्तान्त सुन-समझकर शुभ परिणाम के कारण, प्रशस्त अध्यवसायो से लेश्याओ की विशुद्धि होने के कारण तथा जातिस्मरण को आच्छादित करने वाले ज्ञानावरणीय कम के क्षयोपशम से, ईहा, अपोह, मागणा और गवेषणा करते हुए सज्ञी जीवो को प्राप्त होने वाला जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त होगया। उसमें मेघ मुनि ने अपना पूर्वोक्त वृत्तान्त सम्यक प्रकार से जान लिया।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा मेघकुमार को पूववृत्तात स्मरण करा दिया गया, इस कारण उसे दुगुना सवेग प्राप्त हुआ। उसका मुख आनन्द के आसुआ से परिपूण हो गया। हप के कारण मेघधारा से आहत कदम्बपुष्प की भाति उसके रोमाच विकसित होगए। उसने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—भते! आज से मैंन अपने दोनो नेत्र छोडकर शेप समस्त शरीर श्रमण निग्रन्थो को समर्पित किया।

इस प्रकार कहकर मेघकुमार ने पुन श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस भाँति कहा—भगवन्! मेरी इच्छा ह कि अब आप स्वय ही मुझ दूसरी वार प्रव्रजित करें, स्वय ही मुण्डित करे यावत् स्वय ही ज्ञानादिक आचार और गोचर-गोचरी के लिए भ्रमण, यात्रा—पिण्डविशुद्धि आदि सयमयात्रा तथा मात्रा—प्रमाणयुक्त आहार ग्रहण करना आदि श्रमणधम का उपदेश दीजिए।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार को स्वयमेव दीक्षित किया यावत् यात्रा-मात्रारूप धम का उपदेश किया कि—हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार गमन करना चाहिए, अर्थात् युगपरिमित भूमि पर दृष्टि रखकर चलना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् पृथ्वी का प्रमाजन करके खड़ा होना चाहिए, इस प्रकार भूमि का प्रमाजन करके बैठना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् शरीर और भूमि का प्रमाजन करके शयन करना चाहिए, इस प्रकार निर्दोष आहार करना चाहिए और इस प्रकार अर्थात् भाषासमितिपूवक बोलना चाहिए। सावधान रह रह कर प्राणो, भूतो, जीवा और सत्त्वो की रक्षा रूप सयम मे प्रवृत्त होना चाहिए। तात्पय यह है कि मुनि को प्रत्येक क्रिया यतना के साथ करना चाहिए।

तत्पश्चात् मेघ मुनि ने श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार के इस धार्मिक उपदेश को सम्यक प्रकार से अगीकार किया। अगीकार करके वे उसी प्रकार वर्त्ताव करने लगे, यावत् सयम मे उद्यम करने लगे।

तब मेघ ईर्यासमिति आदि से युक्त अनगार हुए। यहाँ (औपपातिक सूत्र के अनुसार) अनगार का समस्त वर्णन कहना चाहिए।

तत्पश्चात उन मेघमुनि ने श्रमण भगवान् महावीर के निकट रह कर तथाप्रकार के स्थविर मुनियो से सामायिक से प्रारम्भ करके ग्यारह अग शास्त्रों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत-से उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला आदि से तथा अर्ध मास खमण एव मासखमण आदि तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

तत्पश्चात श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर से एव गुणसिलक चैत्य से निकले। निकल कर बाहर जनपदा मे विहार करने लगे। (४५)

विशेष बोध—प्रत्येक प्राणी का गभवास उसके द्वारा उपार्जित कम के अनुसार होता है। आत्मा स्वय उन फर्मो का कर्त्ता और स्वय ही भोक्ता है। आत्मा से भिन्न कोई ऐसी शक्ति या व्यक्ति नही, जो जीव के गभवास या जन्म अथवा मरण की नियामिका हो। जीव के अपने शुभाशुभ कम ही यह फल उत्पन्न करते हैं।

अगर अन्तर में वैराग्य जागृत हो जाय, भोग रोग के समान, इन्द्रियविषय विष के समान, बन्धु-बान्धव आदि बन्धन के समान और ससार कारागार के समान प्रतिभासित होने लगे तो प्रत्येक वय दीक्षा के योग्य है। जिसने अपनी आयु के नौ वष पूरे कर लिए हो, उसमें भी विशिष्ट सस्कार होने पर दीक्षा की पात्रता आ जाती है। वस्तुत दीक्षा की योग्यता की कसौटी वय नही, विरक्ति है।

भगवान् ने मेघकुमार से कहा—तूने युवा होकर दीक्षा ग्रहण की, फिर ऐसा क्यो सोचा ? 'मम अतिए मु डे भवित्ता' यह वाक्याश अत्यन्त अथ पूण है।

किसी सामान्य साधु का शिष्य कुछ लडखडा जाय तो विस्मय की बात नही, किन्तु सवज्ञ सवदर्शी त्रिलोकीनाथ का शिष्य अगर माग से डिग जाय तो आश्चय की बात समझना चाहिए। और उस डिगने का भी कोई बहुत जबदस्त कारण नही। मुनियो के आवागमन से टक्कर हो गई और सस्तारक पर धूलिकण गिर गए। यह कोई वजनदार कारण नही कहा जा सकता।

समय पर सहनशीलता की वृत्ति न रहने पर जीवन मे क्या स्थिति उत्पन्न हो सकती है, विचारधारा किस प्रकार अवाञ्छित दिशा मे मुड जाती है यह शिक्षा यहा साकार-सोदाहरण प्रदर्शित की गई है। कायर और शूरवीर की परीक्षा ऐसे अवसर पर ही होती है।

बाधाओ पर विजय प्राप्त कर,
जो निज सत्य निभाता है।
नर से *नारायण* की पदवी,
वही जगत मे पाता है।

आपत्तिया जीवन के उत्थान मे अतीव सहायक होती हैं। उनके साथ किये जाने वाले सघष से आत्मिक शक्तियो का विकास होता है।

जिस जीवन मे विपत्तिविजय से उत्पन्न होने वाला उल्लास नही, वह जीवन नीरस है। ऐसा जीवन कदाचित् ही सफलता के उच्चतर शिखर तक पहु च पाता है। भगवान् महावीर ने परमात्म पद तक पहु चने के लिए बार-बार विपत्तिया से सघष किया। उन्हे पराजित किया। और ज्यो-ज्या उनकी विजयिनी शक्ति का विकास होता गया, वे सिद्धि के निकट और निकटतर पहु चते गए। किसी ने यथार्थ कहा है—

वसुधा का नेता कौन हुआ?
भूखण्ड-विजेता कौन हुआ?
अतुलित यश-क्रेता कौन हुआ?
जिसने न कभी आराम किया।

मेघकुमार मे सहनशीलता की जो कमी थी, उसकी पूर्ति भगवान् ने कर दी।

मेघकुमार के आत्मारूप उपादान मे मलिनता नही थी। हाथी के भव मे उसमे शुद्धि का आविर्भाव हो चुका था। वही शुद्धि अब काम आ रही है। प्रभु के निमित्त को पाकर वह पुन शीघ्र सावधान हो गया। तिलो मे तेल हो तो दबाव पडने पर बाहर निकलता है। कूप मे पानी हो तो श्रम करके निकाला जा सकता है। इसी प्रकार अन्तरग मे जागृति हो तो अनुकूल निमित्त मिलने पर वह अभिव्यक्त हो जाती है।

उपादान के शुद्ध होने से ही प्रभु का उपदेश लागू पड गया। उपदेश सुनते ही मेघकुमार उसमे तन्मय हो गया, फलत उनको चट से जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया। जातिस्मरण होने से वह स्वय समझ गया कि मैं कौन था, क्या था और किस निमित्त से क्या हो गया हूँ।

ठोकरें खाने के बाद इन्सान बनता है। कष्ट सहन करके भी धैय न छोडने से मनुष्य का मूल्य बढ़ता है।

अब मेघ कुमार पूरी तरह जागृत हो गया। पूववृत्तान्त को सुना और फिर स्वय जाना तो उसके हृदय के कपाट खुल गए। अन्तरात्मा मे ऐसी ज्योति उद्भासित हुई जो पूव मे कभी अनुभव मे नही आई थी। पश्चात्ताप के द्वारा ही उसने अपनी स्खलना का प्रमार्जन कर लिया। वह 'दुगुणाणीयसवेगे' अर्थात् दुगुने सवेग से सम्पन्न हो गया।

सवेग का अथ है—सम्यक् प्रकार का वेग। मेघकुमार जिस सवेग से प्रेरित होकर दीक्षित हुआ था, बीच मे उसमे कमी आ गई थी। उसके परिणाम की धारा अधोमुखी हो गई थी। किन्तु प्रभु के सबोधन से एव जातिस्मरण ज्ञान की प्राप्ति से वह सवेग दुगुना हो गया। उसके हृदय मे वैराग्य हिलोरें मारने लगा। आत्मकल्याण के लिए जो वेग चाहिए—तीव्रता आनी चाहिए, उसमे दुगुनी वृद्धि हो गई।

सवेग सम्यग्दशन के पाच लक्षणो म से एक लक्षण है। आत्मा मे ससार से विरक्ति होने पर मोक्षमाग पर चलने की त्वरा उत्पन्न हो जाती है, वही सवग है।

इस समय मेघकुमार की स्थिति अद्भुत थी। वह हर्पविभोर हो उठा। अपन हप को भीतर समा नहीं पा रहा है। अश्रुओ के रूप मे वह बाहर उमड आया। उसने सवेग एव हर्ष की अनिवचनीय

स्थिति मे कहा—प्रभो ! जीवदया के हेतु दोनो नेत्रो के सिवाय मेरा सारा शरीर अब मुनियो की सेवा के लिए समर्पित है। अपना जीवन मुनियों की सेवा के लिए निछावर कर दूंगा।

मुनि मेघकुमार इतना कह कर ही नही रह गए। स्खलना का जो शल्य उन्हें सता रहा था, उसका निमू लन करना आवश्यक था। अतएव वह बोले—प्रभो ! मेरा शुद्धीकरण कीजिए। प्रायश्चित्त के रूप मे फिर से नवीन दीक्षा दीजिए और साधुजीवन की शिक्षाएं देकर मुझ पर अनुग्रह कीजिए।

साधक से जब कोई छोटी या बडी विराधना हो जाती है तो उसे उसी प्रकार चैन नही पड़ती जैसे शरीर मे काटा चुभने पर क्षण भर के लिए भी शान्ति नही मिलती। वह अपनी विराधना को गुरु के समक्ष निष्कपट भाव से निवेदन करता है और उसकी शुद्धि करने के लिए गुरुद्वारा प्रदत्त दण्ड—प्रायश्चित्त को श्रद्धापूर्वक स्वीकार करता है। इसी में अपने सयम की शुद्धि मानता है और आत्मा का हित समझता है। जब वह प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि कर लेता है तभी उसको निराकुलता होती है। सच्चे साधक मुनि की यही स्थिति होती है। पर आज हम क्या देखते हैं ? आज यथोचित प्रायश्चित्त लेना अपमान समझा जाता है। विराधना का भय नही रह गया है। अब प्रायश्चित्त प्राय लिया नहीं जाता, दिया जाता है और देने पर भी उसके अमल में अनेक प्रकार के विसवाद होते हैं। सच्चे साधक के लिए यह स्थिति हितकर नही। आत्मार्थी मुनि आज भी अपनी स्खलना को सहन नहीं करते और उसकी शुद्धि कर लेने पर ही सन्तोष का अनुभव करते हैं।

मेघ मुनि ने यात्रा और मात्रा का भी ज्ञान प्राप्त किया। तप, सयम, नियम, स्वाध्याय, ध्यान, आवश्यक क्रिया आदि योगो मे जो यतना प्रवृत्ति है, वही यहां यात्रा समझना चाहिए।[1] मात्रा का अर्थ

---

१ देखो भगवती सूत्र श० १८ उ० १०

है, आहारादि का प्रमाण। साधु को आहार-पानी की मात्रा का ज्ञान भी अवश्य होना चाहिए।

वह प्रकृति से भद्र, विनीत, सरल एव क्रोध मान माया और लोभ को उपशान्त करने वाला मुनि मेघकुमार पुन सयम पथ पर आरूढ हो गया। औपपातिक सूत्र मे मुनि के गुणा का विस्तृत वणन किया गया है। उन गुणो को मुनि मेघकुमार ने धारण किया। स्थविर सन्तो से ज्ञानाभ्यास किया और वह ज्ञान तथा क्रिया मे निष्ठ बन गया।

ज्ञानाजन के लिए सेवकभाव को अगीकार करना आवश्यक है। जहा अध्येता और अध्यापक मे सेव्यसेवकभाव होता है वही ज्ञान की निमल गगा प्रवाहित होती है।

ज्ञानप्राप्ति के पश्चात् मेघ मुनि ने तपश्चर्या प्रारम्भ कर दी। तपस्या के बिना पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय नही होता। सवर के द्वारा नूतन कमबध रोक देने और तपस्या द्वारा पूवकृत कर्मों की निजरा कर देने पर ही मुक्ति का पथ प्रशस्त होता है। (४५)

मूलपाठ—तए ण से मेहे अणगारे अन्नया कयाइ समण भगव महावीर वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—इच्छामि ण भते ! तुब्भेहि अब्भणुन्नाए समाणे मासिय भिक्खुपडिम उवसपज्जित्ता ण विहरित्तए।

अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेह।

तए ण से मेहे समणेण भगवया महावीरेण अब्भणुन्नाए समाणे मासिय भिक्खुपडिम उवसपजित्ता ण विहरइ। मासिय भिक्खुपडिम अहासुत्त अहाकप्प अहामग्ग सम्म काएण फासित्ता, पालित्ता, सोहेत्ता, तीरेत्ता, किट्टेत्ता पुणरवि समण भगव महावीर वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

इच्छामि ण भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे दो-मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

जहा पढमाए अभिलावो तहा दोच्चाए तच्चाए चतुत्थाए पंचमाए छम्मासियाए सत्तमासियाए पढमसत्तराइंदियाए, दोच्चं सत्तराइंदियाए, तच्चं सत्तराइंदियाए अहोराइंदियाए वि एगराइंदियाए वि ।

तए णं से मेहे अणगारे बारस भिक्खुपडिमाओ सम्मं काएणं फासेत्ता पालेत्ता सोहेत्ता तीरेत्ता किट्टेत्ता पुणरवि वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

तए णं से मेहे अणगारे पढमं मासं चउत्थंचउत्थेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रत्तिं वीरासणेणं अवाउडएणं ।

दोच्चं मासं छट्ठंछट्ठेणं०, तच्चं मासं अट्ठमंअट्ठमेणं, चउत्थं मासं दसमंदसमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रत्तिं वीरासणेणं अवाउडएणं । पंचमं मासं दुवालसमंदुवालसमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रत्तिं वीरासणेणं अवाउडएणं ।

एवं खलु एएणं अभिलावेणं छट्ठे चोद्दसमं चोद्दसमेणं, सत्तमे सोलसमंसोलसमेणं, अट्ठमे अट्ठारसमं अट्ठारसमेणं,

नवमे वीसतिय वीसतिमेण, दसमें वावीसइम बावीसइमेण, एक्कारसमे चउवोसइम चउवीसइमेण, बारसमे छव्वीसइम छव्वीसइमेण, तेरसमे अट्ठावीसइम अट्ठावीसइमेण, चोद्दसमें तीसइम तीसइमेण, पचदसमे बत्तीसइम बत्तीसइमेण, सोलसमे मासे चउत्तीसइम चउत्तीसइमेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण दिया ठाणुक्कुडुएण सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे राइ वीरासणेण य अवाउडएण य ।

तए ण मेहे अणगारे गुणरयणसवच्छर तवोकम्म अहासुत्त जाव सम्म काएण फासेइ, पालेइ, सोहेइ, तीरेइ, किट्टेइ, अहासुत्त अहाकप्प जाव किट्टेता समण भगव महावीर वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता बहूहि छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहि मासद्धमासखमणेहि विचित्तेहि तवोकम्मेहि अप्पाण भावेमाणे विहरइ । (४६)

मूलार्थ—तत्पश्चात् उन मेघ अनगार ने किसी समय श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन् ! मैं आपकी अनुमति पाकर एक मास की मर्यादा वाली भिक्षुप्रतिमा को अगीकार करके विचरने की इच्छा करता हूँ ।'

भगवान् ने कहा – 'देवानुप्रिय ! तुम्हे जैसे सुख उपजे वैसा करो । प्रतिबन्ध अर्थात् इच्छित कार्य या विघात न करो—विलम्ब न करो ।'

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर द्वारा अनुमति पाये हुए मेघ अनगार एक मास की भिक्षुप्रतिमा अगीकार करके विचरने लगे ।

एक मास की भिक्षुप्रतिमा को सूत्र के अनुसार, कल्प (आचार) के अनुसार, मार्ग (ज्ञानादिक मार्ग या क्षयोपशमभाव) के अनुसार

सम्यक् प्रकार से काय से ग्रहण किया, निरंतर सावधान रहकर उसका पालन किया, पारणा के दिन गुरु को देकर शेष बचा भोजन करके शोभित किया अथवा अतिचारों का निवारण करके शोधित किया प्रतिमा का काल पूर्ण हो जाने पर भी किंचित् काल अधिक प्रतिमा मे रहकर तीर्ण किया, पारणा के दिन प्रतिमासबधी कार्यों का कथन करके कीर्त्तन किया। इस प्रकार समीचीन रूप से काया से स्पर्श करके पालन करके, शोभित या शोधित करके, तीर्ण करके एव कीर्त्तन करके पुन श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

भगवन्! आपकी अनुमति पाकर के मैं दो मास की भिक्षुप्रतिमा अंगीकार करके विचरना चाहता हूँ।

भगवान् ने कहा—देवानुप्रिय! जैसे सुख उपजे वैसा करो, प्रतिबन्ध मत करो।

जिस प्रकार पहली प्रतिमा का आलापक कहा है, उसी प्रकार दूसरी प्रतिमा दो मास की, तीसरी तीन मास की, चौथी चार मास की, पाचवी पाच मास की, छठी छह मास की, सातवी सात मास की, फिर पहली अर्थात् आठवी सात अहोरात्र की दूसरी अर्थात् नौवी भी सात अहोरात्र की, तीसरी अर्थात् दसमी भी सात अहो-रात्र की और ग्यारहवी तथा बारहवी एक-एक अहोरात्र की कह लेना चाहिए।

इस प्रकार मेघ अनगार ने बारह भिक्षुप्रतिमाओं का सम्यक् प्रकार से काय से स्पर्श करके पालन करके, शोधन करके, तीर्ण करके और कीर्त्तन करके पुन श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

भगवन्! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके गुणरत्नसंवत्सर नामक तपश्चरण अंगीकार करके विचरना चाहता हूँ।

भगवान् बोले—हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो, प्रतिबन्ध मत करो।

[गुणरत्नसंवत्सर नामक तप मे तेरह मास और सतरह दिन उपवास के होते हैं और तिहत्तर दिन पारणा के। इस प्रकार सोलह मास मे इस तप का अनुष्ठान किया जाता है। तपस्या का यंत्र इस प्रकार है—

| मास | तप | तपोदिन | पारणादिवस | कुलदिन |
|---|---|---|---|---|
| १ | उपवास | १५ | १५ | ३० |
| २ | बेला | २० | १० | ३० |
| ३ | तेला | २४ | ८ | ३२ |
| ४ | चौला | २४ | ६ | ३० |
| ५ | पचोला | २५ | ५ | ३० |
| ६ | छह उपवास | २४ | ४ | २८ |
| ७ | सात ,, | २१ | ३ | २४ |
| ८ | आठ ,, | २४ | ३ | २७ |
| ९ | नौ ,, | २७ | ३ | ३० |
| १० | दस ,, | ३० | ३ | ३३ |
| ११ | ग्यारह ,, | ३३ | ३ | ३६ |
| १२ | बारह ,, | २४ | २ | २६ |
| १३ | तेरह ,, | २६ | २ | २८ |
| १४ | चौदह ,, | २८ | २ | ३० |
| १५ | पन्द्रह ,, | ३० | २ | ३२ |
| १६ | सोलह ,, | ३२ | २ | ३४ |
| | | ४०७ | ७३ | ४८० |

जिस मास मे जितने दिन कम हैं, उसमे अगले मास के उतने दिन समझ लेने चाहिए। इसी प्रकार जिस मास मे अधिक हैं, उसके दिन अगले मास मे सम्मिलित कर लेने चाहिए। ]

तत्पश्चात् मेघ अनगार पहले महीने मे निरतर चतुथभक्त अर्थात् एकान्तर उपवास की तपस्या के साथ विचरने लगे। दिन मे उत्कुट (गोदोहन) आसन मे रहते और सूय के सम्मुख आतापना भूमि मे आतापना लेते। रात्रि मे प्रावरण (वस्त्र) से रहित होकर वीरासन मे स्थित रहते थे।

इसी प्रकार दूसरे महीने मे निरन्तर षष्ठभक्त तप, तीसरे महीने मे अष्टमभक्त, चौथे महीने मे दशमभक्त तप करते हुए विचरने लगे। दिन मे उत्कुट आसन में स्थित रहते। सूर्य के सम्मुख आतापनाभूमि मे आतापना लेते और रात्रि मे प्रावरण रहित होकर वीरासन से रहते।

पाचवें मास मे द्वादशम-द्वादशम (पचोले-पचोले) का निरन्तर तप करने लगे। दिन में उकडू आसन से स्थित होकर सूय के सन्मुख आतापना भूमि मे आतापना लेते और रात्रि मे प्रावरणरहित होकर वीरासन से रहते थे।

इस प्रकार इसी अलापक के साथ छठे मास मे छह-छह उपवास का, सातवें मास में सात-सात उपवास का, आठवें मास मे आठ-आठ उपवास का, नौवें मास मे नौ-नौ उपवास का, दसवें मास मे दस दस उपवास का, ग्यारहवें मास मे ग्यारह ग्यारह उपवास का, बारहवें मास मे बारह-बारह उपवास का, तेरहवें मास मे तेरह-तेरह उपवास का, चौदहवें मास मे चौदह चौदह उपवास का, पन्द्रहवें मास मे पन्द्रह पन्द्रह उपवास का और सोलहवें मास मे सोलह सोलह उपवास का निरन्तर तपश्चरण करते हुए विचरने लगे। दिन मे उकडू आसन से सूय के सम्मुख आतापनाभूमि में आतापना लेते थे और रात्रि मे प्रावरणरहित होकर वीरासन से स्थित रहते थे।

तत्पश्चात् मेघ अनगार ने गुणरत्नसवत्सर नामक तप कम सूत्र के अनुसार यावत् सम्यक् प्रकार से काय द्वारा स्पश किया, पालन किया, शोधित या शोभित किया तथा कीर्तित किया।

सूत्र के अनुसार और कल्प के अनुसार यावत् कोत्तन करके श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके वहुत-से षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त, द्वादशम भक्त, आदि तथा अधमासखमण एव मासखमण आदि विचित्र प्रकार के तप कम करके आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। (४६)

**विशेष बोध—**

नमन्ति सफला वक्षा, नमन्ति कुलजा नरा।
शुष्ककाष्ठञ्च मूर्खाश्च, न नमन्ति कदाचन ॥

मेघकुमार मुनि क्षत्रियपुत्र एव प्रतिष्ठित कुल मे उत्पन्न हुए थे। अतएव ठोकर लगने पर शीघ्र ही सभल गए। भगवान् ने उनकी भावना सुदृढ कर दी। अब वे घोर तपश्चरण के लिए उद्यत हो गए।

उत्तम जाति के काष्ठ से उत्तम फर्नीचर बनता है, अच्छे पाषाण से सुन्दर मूर्त्ति बनती है, अच्छी मृत्तिका से अच्छे पात्र बनते हैं। इसी प्रकार सत्कुल और उत्तम जाति वाले मानव प्राय धम के सुपात्र होते हैं।

इसका आशय यह नही कि धम के आचरण की योग्यता या पात्रता का सबध किसी कुल अथवा जाति के साथ है। अनेक महा-मुनि ऐसे भी हुए हैं जो जाति और कुल से हीन गिने जाते थे। फिर भी वे उत्कृष्ट सयम के पात्र बने।

उत्तम जाति और कुल की विशेषता यही है कि उसमे जन्म ध्यक्तियो को अनायास ही सुसस्कारो का लाभ मिल जाता है, क्योकि माता-पिता का प्रभाव सन्तान पर अवश्य पड़ता है। यदि

माता पिता सुसस्कृत होते हैं तो सन्तान के सुसस्कृत होने की अधिक सभावना रहती है।

मेघ मुनि पुण्यशाली थे कि उन्हे महाराज श्रेणिक जैसे पिता और धारिणी देवी जैसी माता की प्राप्ति हुई। इनके सान्निध्य से सहज ही उसमें धर्मभाव उत्पन्न होगया।

मुनि मेघ ने जब प्रतिमावहन की आज्ञा मागी तो भगवान् ने तुरन्त आज्ञा प्रदान कर दी। कहा—'अहासुख देवाणुप्पिया! मा पडिबध करेह।'

प्रतिमा एक प्रकार का तपोऽनुष्ठान है। यहा मूल या टीका में उसका विवरण नही दिया गया है। टीकाकार श्री अभयदेव सूरि ने इतना ही कहा है कि इसकी विधि अन्य ग्रथो से जान लेना चाहिए।

प्रतिमा के विषय में परम्परा यह है कि एक मास की भिक्षु-प्रतिमा मे दिन भर मे एक दात पानी की और एक दात आहार की ली जाती है। तात्पर्य यह कि पारणा के दिन गृहस्थ के घर प्रतिमा-धारी मुनि भिक्षा के लिए जाय। गृहस्थ पात्र मे पानी वहरावे तो एक ही धार मे जितना पानी पात्र मे गिरा हो उतना ही ले। एक बार धार रुक जाने के बाद दूसरी बार न ले। आहार के लिए भी इसी प्रकार समझना चाहिए। इसे एक दात (दत्ति) पानी की और एक दात आहार की कहते हैं। एक मास पर्यन्त यही क्रम चलता है।

अन्य प्रतिमाओ के सबध मे भी ऐसा ही यथायोग्य समझ लेना चाहिए।

भिक्षुप्रतिमा और गुणरत्नसवत्सर जैसे उग्र तप उस काल की विशेषता थे। इस प्रकार की तपस्या करनेवाले साधक उग्रतपस्वी या घोर तपस्वी कहलाते थे।

मेघ मुनि राजसी वैभव मे पलकर भी इस प्रकार की तपश्चर्या करने लगे। वे रात्रि मे वीरासन से स्थित रहते, दिन मे उत्कटु आसन से सूर्य के सन्मुख होकर आतापना लेते।

वीरासन मे स्थित रहना ही कितना कठिन है। कोई मनुष्य दोनो पर धरती पर टेक कर कुर्सी पर बैठे और फिर कुर्सी हटा ली जाय तो उसका जो आसन होता है, वह वीरासन कहलाता है। रात्रि भर इस आसन से रहना अत्यन्त धैर्य और साहस का काम है।

मेघकुमार मुनि साधना के पथ पर बहुत आगे बढ गए। क्योकि उन्होने समझ लिया था कि जन्म जन्मान्तर मे बद्ध कर्मो के क्षय का उपाय तपश्चर्या ही है। वे यह भी जान गए थे कि शरीर नाशवान है। लालन पालन करने पर भी वह अन्तत विशीर्ण होता ही है। तो फिर क्यो नही आत्मा की विशुद्धि के लिए इसका पूरा उपयोग कर लिया जाय! ऐसा अवसर फिर नही मिलने का।

इस प्रकार की विचारधारा से प्रेरित होकर उन्होने जो तपश्चर्या आरभ की वह साधारण जन के लिए आश्चर्यजनक है। उनकी तपश्चर्या आगम के अनुकूल एव कल्प के अनुसार थी। उसका शास्त्रकार ने जिन शब्दो मे वर्णन किया है, उससे स्पष्ट है कि वह ही धैय, उत्साह, चढ़ते परिणाम और असाधारण सहनशीलता के साथ वे तपस्या कर रहे थे। (८६)

मूलपाठ—तए ण से मेहे अणगारे तेणं उरालेणं विपुलेणं सस्सिरीएणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मगल्लेण उदग्गेण उदारएण उत्तमेणं महाणुभावेण तवोकम्मेण सुक्के भुक्खे लुक्खे निम्मसे निस्सोणिए किडि किडियाभूए अट्ठिचम्मावणद्धे किसे धमणिसतए जाए यावि होत्था।

जीवजीवेण गच्छइ, जीवजीवेण चिट्ठइ, भास भासित्ता गिलायइ, भास भासमाणे गिलायइ, भास भासिस्सामि त्ति गिलायइ।

से जहा नामए इगालसगडियाइ वा, कट्ठसगडियाइ वा, पत्तसगडियाइ वा, तिलसगडियाइ वा, एरडकट्ठसगडियाइ वा, उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्द गच्छइ, ससद्द चिट्ठइ, एवामेव मेहे अणगारे ससद्द गच्छइ, ससद्द चिट्ठइ, उवचिए तवेए, अवचिए मससोणिएण, हुयासणे इव भासरासिपरिच्छन्ने, तवेण तेएण तवतेयसिरीए अईव अईव उवसोभेमाए उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

तेण कालेण तेण समएए समणे भगव महावीरे आइगरे तित्थयरे जाव पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे, गामाणुगाम दूइज्जमुहसुहेण विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नगरे जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूव उग्गह उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ। (४७)

मूलार्थ—तत्पश्चात् वे मेघ अनगार उस उराल प्रधान, विपुल-दीर्घकालिक होने से विस्तीर्ण, सश्रीक-शोभासम्पन्न, गुरुद्वारा प्रदत्त अथवा प्रयत्नसाध्य, बहुमानपूर्वक गृहीत, कल्याणकारी, नीरोगता जनक, शिव-मुक्ति के कारणभूत, धन्य धन प्रदान करने वाले, मागल्य-पापविनाशक, उदग्र-तीव्र, उदार-निष्काम होने के कारण औदार्य वाले, उत्तम-अनानात्वकार से रहित, और महान् प्रभाव वाले तपश्चरण से शुष्क—नीरस, भूखे, रूक्ष, मासरहित और रुधिर-रहित हो गए। उठते-बैठते उनके हाड कडकडाने लगे। उनकी हड्डिया केवल चमडे से मढी रह गई। शरीर कृश और नसो से व्याप्त हो गया।

वे अपने जीव के बल से ही चलते एव जीव के बल से ही खडे रहते। भाषा बोलकर थक जाते, बात करते-करते थक जाते, यहां

है कि पूर्वोक्त तपस्या के कारण उनका शरीर अत्यन्त ही दुबल हो गया था।

जैसे कोई कोयलो से भरी गाडी हो, लकडियो से भरी गाडी हो, पत्तो से भरी गाडी हो, तिलो (तिल के डठलो से) भरी गाडी हो अथवा एरण्ड के काष्ठों से भरी गाडी हो, धूप मे रखकर सुखाई गई हो अर्थात् कोयला, लकडी, पत्ते आदि खूब सुखा लिये गये हो और फिर गाडी मे भरे गए हो तो वह गाडी खडखड की आवाज करती हुई चलती है और खडखड की आवाज करती हुई ठहरती है, उसी प्रकार मेघ अनगार हाडो की खडखडाट के साथ चलते थे और खडखडाट के साथ खडे रहते थे। वे तपस्या से तो उपचित—वृद्धिप्राप्त थे, मगर मास और रुधिर से अपचित—ह्रास को प्राप्त हो गये थे। वे भस्म से आच्छादित अग्नि की तरह तपस्या के तेज से देदीप्यमान थे। वे तपस्तेज की लक्ष्मी से अतीव-अतीव शोभायमान हो रहे थे।

उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर धम की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, यावत अनुक्रम से चलते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम का उल्लघन करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए, जहा राजगृह नगर था और जहां गुणसिलक चत्य था, उसी जगह पधारे। पधार कर यथोचित अवग्रह (उपाश्रय) की आज्ञा लेकर सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। (४७)

**विशेष बोध**—मुनि मेघकुमार एक बार विचारो से गिर कर भी उठ खडे हुए। सभले और खूब सभले। जैसे लम्बी छलाग मारने से पूव सिंह दो कदम पीछे हटता है और फिर छलाग मारता है, ऐसी ही स्थिति मेघ मुनि की हुई। वे अब घोर तपस्वी बन गए। लम्बी और भावपूवक तपस्या करने वाला घोर तपस्वी कहलाता है।

तपस्वी जो तपस्या करे वह गुरु की आज्ञा प्राप्त करके ही करे, तभी वह शोभासम्पन्न कही जा सकती है। अपने बल, पराक्रम एव

योग्यता को तोल कर ही तपश्चर्या की जानी चाहिए। तपस्या करके आलसी की तरह पडा नही रहना चाहिए किन्तु नियत समय पर स्वाध्याय और ध्यान करके आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, बाल एव ग्लान आदि मुनियो की यथायोग्य वैयावृत्य भी करना चाहिए।

तप की विशुद्धि कषायहीनता से होती है। अतएव तपस्वी को क्रोध और मान आदि कषायो से बचना चाहिए। अपने अध्यवसाय को उपशममय बनाना चाहिए।

शास्त्र मे बतलाया गया है कि तपस्या के पीछे किसी प्रकार की इस लोक सबधी कामना, परलोक सबधी कामना अथवा यश-कीर्त्ति की कामना नही होनी चाहिए। केवल कर्मनिर्जरा के उद्देश्य से ही तपश्चरण करना चाहिए। इस प्रकार की निष्काम तपस्या ही मुक्तिप्रदायिनी होती है। लौकिक लाभ एव यशकीर्त्ति तो तपस्वी को आकाक्षा न करने पर भी उसी प्रकार प्राप्त हो जाती है जैसे अन्न के लिए खेती करने पर किसान को भूसा आदि प्राप्त हो जाते हैं।

मुनि मेघकुमार की तपस्या ऐसी ही आदर्श थी। ऐसी तपस्या महामगलमयी होती है।

पहले ज्ञानार्जन किया जाय और फिर तपश्चरण किया जाये तो वह विशिष्ट फलप्रद होता है। उससे अत्यधिक निर्जरा होती है। अज्ञानी जीव कोटि-कोटि जन्मो में जितने कर्मों का क्षय कर पाता है, ज्ञानी क्षण भर मे उतने कर्मो का अन्त कर डालता है। मेघमुनि ने ज्ञानाराधना करने के पश्चात् अपनी समग्र शक्ति तपस्या में लगा दी।

तपस्या इतनी तीव्र थी कि उसके कारण मेघ मुनि का मास और रक्त सूख गया। हाड और चमडी ही उनके शरीर मे अवशिष्ट रह गए। मगधसम्राट के लाडले पुत्र के शरीर का सौन्दर्य न जाने कहा

विलीन हो गया ! तपस्या की अग्नि मे उन्होंने अपने मृदुल शरीर को झोंक दिया।

यह है अपने शरीर के प्रति निस्पृहता ! और जो अपने शरीर के प्रति भी इतना निस्पृह हो जाता है, उसे ससार के अन्य पदार्थों के प्रति स्पृहा कैसे रह सकती है। वह सवथा निष्काम वन जाता है।

मेघ मुनि तपस्या के कारण अत्यन्त कृश एव दुवल हो गए। उठते-बैठते उनके हाड खडखडाते थे, जैसे सूखे पत्ते गाडी मे भरे जाने पर खड़खड करते हैं। वे वात करके थक जाते, वात करते-करते थक जाते, यहा तक कि वात करने के विचार से भी थक जाते थे।

कैसी उग्रतर तपश्चर्या ! कितनी उन्नत भावना ! कैसी निस्पृह-वृत्ति ! कितना धैय ! मेघ मुनि धन्य हैं और हमारे लिए आदश हैं।

शरीर से कृश और दुवल हो जाने पर भी वे सवथा शक्तिहीन नही हो गए थे। उनका शरीरवल जितना कम हुआ था, उससे कई गुणा आत्मवल वृद्धि को प्राप्त हुआ था। वे तप की अपूव ज्योति से जगमगा उठे थे। उनके चेहरे पर तपस्तेज अपनी अनूठी दीप्ति प्रकट कर रहा था। तपश्चर्या की लक्ष्मी से मेघ अनगार उसी प्रकार शोभायमान हो रहे थे जैसे आसौज के सघन वादलो के वीच कोई खुला और दीप्तिमान् नक्षत्र चमक रहा हो।

श्रमण भगवान् महावीर विचरते-विचरते राजगृह नगर पधारे और नगर से वाहर गुणसिलक नामक उसी पूववर्णित उद्यान मे विराजमान हुए। भगवान् स्वय घोर तपस्वी थे। तप और सयम उनके मत मे आत्मशुद्धि के मूलाधार थे। इन्ही के अवलम्वन से भगवान् ने सवज्ञ-सवदर्शी होकर परमात्मपद प्राप्त किया था। यह माग सौभाग्य से मिला तो हमे भी है मगर देखना है, कि उस युग और इस युग के आचार-व्यवहार मे कितना परिवत्तन आ गया है। (४७)

मूलपाठ—तए ण तस्स अणगारस्स राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि धम्मजागरिय जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पजित्था—

एव खलु अह इमेण उरालेण तहेव जाव भास भासिस्सामि त्ति गिलामि, त अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे सद्धा धिई सवेगे, जाव य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगव महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ ताव मे सेय कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलते सूरे समण भगव महावीर वदित्ता नमसित्ता समणेण भगवया महावीरेण अब्भणुन्नायस्स समाणस्स सयमेव पच महव्वयाइ आरुहित्ता गोयमाइए समणे निग्गथे निग्गथीओ य खामेत्ता तहारूवेहि कडाईहि थेरेहि सद्धि विउल पव्वय सणिय सणिय दुरूहित्ता, सयमेव मेहघणसन्निगास पुढविसिलापट्टय पडिलेहित्ता, सलेहणा-झूसणाए झूसियस्स भत्तपाण पडियाइक्खियस्स पाओवगयस्स काल अणवकखमाणस्स विहरित्तए।

एव सपेहेइ, सपेहित्ता कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए जाव जलते जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता नच्चासन्ने नाइदूरे, सुस्सूसमाणे नमसमाणे अभिमुहे विणएण पजलिउडे पज्जुवासइ।

मेहे त्ति समणे भगव महावीरे मेह अणगार एव वयासी—

से नूण तव मेहा ! राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि

धम्मजागरिय जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—एव खलु अह इमेण ओरालेण जाव जेणेव अह तेणेव हव्वमागए से णूण मेहा ! अट्ठे समट्ठे ?

'हता अत्थि ।'

अहा सुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेह । (४८)

मूलार्थ तत्पश्चात् उन मेघ अनगार को रात्रि मे पूवरात्रि और पिछली रात्रि के समय अर्थात् मध्यरात्रि मे धमजागरणा करते हुए इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ—

'इस प्रकार मैं इस प्रधान तप के कारण, इत्यादि पूर्वोक्त सब कथन यहा कहना चाहिए, यावत् 'भापा वोलूगा' ऐसा विचार आते ही थक जाता हूँ । तो अभी मुझमे उठने की शक्ति है, वल, वीय, पुरुपकार, पराक्रम, श्रद्धा, धृति और सवेग है । तो जब तक मुझमे उत्थान—काय करने की शक्ति, वल, वीय, पुरुपकार, पराक्रम, श्रद्धा, धति और सवेग है तथा व तक मेरे धर्माचाय धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर गधहस्ती के समान जिनेश्वर देव विचर रहे हैं, तब तक कल रात्रि के प्रभातरूप मे प्रकट होने के बाद यावत् सूय के तेज से जाज्वल्यमान होने पर मैं श्रमण भगवान् महावीर को वदना और नमस्कार करके, श्रमण भगवान् महावीर की आना लेकर स्वय ही पाच महाव्रतो को पुन अगीकार करके, गौतम आदि श्रमण निग्रन्थिया को खमा कर, तथारूपधारी एव योगवहन आदि क्रियाएँ जिन्होंने की है, ऐसे स्थविरा के साथ धीरे धीरे विपुलाचल पर आरूढ होकर स्वय ही सघन मेघ के सदृश पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन करके, सलेखना करके, आहार-पानी का त्याग करके, पादपोपगमन अनशन धारण करके मृत्यु की आकाक्षा न करता हुआ विचरूँ ।"

मेघ मुनि ने इस प्रकार विचार किया । विचार करके दूसरे दिन

रात्रि के प्रभात रूप मे परिणत होने पर यावत् सूय के जाज्वल्यमान होने पर जहा श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ पहुँच कर श्रमण भगवान् महावीर को तीन वार दाहिनी ओर से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके न बहुत समीप और न बहुत दूर—योग्य स्थान पर स्थित हो कर शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुए सम्मुख, विनय के साथ, दोना हाथ जोडकर उपासना करने लगे, अर्थात् बैठ गए।

'हे मेघ' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर ने मेघ अनगार से इस भाति कहा—निश्चय ही हे मेघ! रात्रि में, मध्यरात्रि के समय धमजागरणा जागते हुए तुम्ह इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ है कि—इस प्रकार निश्चय ही मैं इस प्रधान तप के कारण, इत्यादि, यावत् जहा मैं हूँ वहा तुम तुरन्त आए हो। मेघ! क्या यह अथ समथ है? अर्थात् यह सत्य है?

मेघ मुनि बोले—हाँ, यह अथ समथ है।

तब भगवान् ने कहा—देवानुप्रिय! जसे सुख उपजे वसा करो, प्रतिबन्ध न करो। (४८)

**विशेष बोध**—मेघकुमार मुनि के अन्त करण मे अब एक विमल तर विचार लहरी उत्पन्न हुई। मध्यरात्रि का समय था। सर्वत्र शान्ति का प्रसार हो रहा था। मुनिराज धमविचारणा में तल्लीन थे।

जागरणा अनेक प्रकार की होती है। धम-चिन्तन करते हुए मनुष्य का जागना धमजागरणा है। कुटुम्ब के सम्बन्ध में गहरा विचार आने पर नीद नही आती और व्यक्ति जागता है, वह कुटुम्ब-जागरणा कहलाती है। अथ के लिए या अथसम्बन्धी चिन्तन के कारण होने वाली जागरणा अथजागरणा है, आदि।

मेघ मुनि धम जागरणा कर रहे थे। आत्मा के स्वरूप मे एकान्त भाव से रमण कर रहे थे। कुटुम्बजागरणा या अर्थ जागरणा अथवा अन्य किसी प्रकार की जागरणा से उन्ह कोई सरोकार नही था।

यद्यपि तपश्चर्या के कारण उनकी शारीरिक शक्ति क्षीण हो गई थी, तथापि मनोबल उनका वृद्धिगत था। उन्होंने अपने शरीर की स्थिति को समझ लिया।

तप की पराकाष्ठा होने पर शारीरिक दुबलता की भी पराकाष्ठा हो गई। बात करने की तो बात ही दूर रही, बात करने के विचार-मात्र से थकावट होने लगी। मानों अन्तिम घडी सन्निकट आ रही है। फिर भी उनका आत्मबल, वीय पुरुषकार, पराक्रम, श्रद्धा, धृति और सवेग अभी अच्छी स्थिति मे था।

बल, वीय आदि उक्त गुण आत्मा मे सम्बद्ध हैं। आत्मा के साथ इन गुणो के रहते हुए भी देह के बिना इनका उपयोग नही होता। श्रद्धा, धृति और सवेग जैसे गुण भी शारीरिक सहयोग होने पर ही काम मे आते हैं।

मेघ मुनि ने सारी परिस्थिति पर विचार करके ऐसी साधना करने का सकल्प किया, जो जीवन के अन्तिम क्षणो मे ही की जाती है और जिसे साधना का स्वण शिखर कहा जा सकता है।

'जाव य मे धम्मायरिए' इत्यादि विचार करने का आशय यह है कि किसी के जीवन का भरोसा नही है। कौन पहले और कौन पीछे शरीर का त्याग कर चला जाएगा कहा नही जा सकता। अतएव मेघ मुनि अपने परम गुरु भगवान् महावीर की मौजूदगी में ही अपना काय साध लेना चाहते हैं। उन्होंने सकल्प कर लिया कि रात्रि व्यतीत होते ही प्रभात मे मैं भगवान् की सेवा मे उपस्थित होकर अन्तिम साधना की अनुमति प्राप्त करू गा।

मेघ मुनि ने भगवान् को वन्दन-नमस्कार करके पुन पाच महाव्रतो को स्वीकार करने का भी विचार किया।

प्रश्न हो सकता है कि वे लम्बे समय से महाव्रतो का पालन कर रहे थे। ऐसी स्थिति मे पुन महाव्रत ग्रहण करने की आवश्यकता क्या ?

इसका उत्तर यह है कि पूर्व स्वीकृत व्रत अतिचार वाले थे अत्यन्त सावधान रहने पर भी और यतनापूर्वक क्रियाएँ करने प भी प्रमत्तदशा मे कोई न कोई दोष लग ही जाता है। वही दो अतिचार कहलाते हैं।

मेघकुमार अब विशिष्ट शुद्धि करने जा रहे हैं। पूर्ण रूप निरतिचार व्रतो की आराधना करना उनका लक्ष्य है। वे नये सि से जो महाव्रत ग्रहण करते हैं उनमे लेश मात्र भी दोष की सभावन नही रहेगी। सभवत पुन व्रतारोहण का यही उद्देश्य है।

प्रभात होने पर वे भगवान् की सेवा मे उपस्थित होते हैं और सथारा ग्रहण करने की अनुज्ञा मागते है। भगवान् सारी स्थिति को भलीभाति जानते हैं। मेघ मुनि को उस चरम आराधना का पात्र समझते हैं। कह देते हैं—'अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिवध करेह।' (४८)

मूलपाठ—तए ण से मेहे अणगारे समणेण भगवया महावीरेण अब्भणुन्नाए समाणे हट्ठ० जाव हियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाइ उट्ठेत्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता सयमेव पच महव्वयाइ आरुहेइ, आरुहित्ता गोय-माइ समणे निग्गथे निग्गथीओ य खामेइ, खामेत्ता य तहारू-वेहिं कडाईहिं थेरेहिं सद्धि विपुल पव्वय सणिय सणिय दुरूहइ, दुरूहित्ता सयमेव मेहघणसन्निगास पुढविसिला-पट्टय पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता उच्चारपासवणभूमि पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसथारग सथरइ, सथरित्ता दब्भसथारग दुरूहइ, दुरूहित्ता पुरत्थाभिमुहे सपलियकनिसन्ने करयल-परिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी—

'नमोऽत्थु ण अरिहताण भगवताण जाव सपत्ताण। नमोऽत्थु ण समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सपाविउ-कामस्स मम धम्मायरियस्स। वदामि ण भगवत तत्थगय इहगए, पासउ मे भगव तत्थगए इहगय ति कट्टु वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

पुव्वि पि य ण मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए, मुसावाए अदिन्नादाणे मेहुणे परिग्गहे, कोहे माणे माया लोहे, पेज्जे दोसे, कलहे अब्भक्खाणे, पेसुन्ने परपरिवाए, अरइ-रई, मायामोसे मिच्छादसणसल्ले पच्चक्खाए।

इयाणि पि य ण अह तस्सेव अतिए सव्व पाणाइवाय पच्चक्खामि जाव मिच्छादसणसल्ल पच्चक्खामि। सव्व असण-पाण खाइम-साइम चउव्विह पि आहार पच्चक्खामि जावज्जीवाए। ज पि य इम सरीर इट्ठ कत पिय जाव विविहारोगायका परिसहोवसग्गा फुसतोत्ति कट्टु, एव पि य ण चरमेहि ऊसासनिस्सासेहि वोसिरामि त्ति कट्टु सलेहणाझूसणाझूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए काल अणवकखमाणे विहरइ।

तए ण ते थेरा भगवतो मेहस्स अणगारस्स अगिलाए वेयावडिय करेन्ति।

तए ण से मेहे अणगारे भगवओ महावीरस्स तहारूवाण थेराण अतिए सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइ दुवालस वरिसाइ सामन्नपरियाग पाउणित्ता मासियाए सलेहणाए अप्पाण झोसेत्ता सट्ठि

भत्ताइ अणसणेण छेएत्ता आलोइयपडिक्कते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते आणुपुव्वेण कालगए।

तए ण ते थेरा भगवतो मेहं अणगार आणुपुव्वेण कालगय पासेन्ति, पासित्ता परिनिव्वाणवत्तिय काउस्सग्ग करेन्ति, करित्ता मेहस्स आयारभडय गेण्हन्ति।

पच्चोरुहित्ता जेणामेव गुणसिलए चेइए,जेणामेव समणे भगव महावीरे तेणामेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समण भगव महावोर वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

एव खलु देवाणुप्पियाण अतेवासी मेहे अणगारे पगइ-भद्दए जाव विणीए। से ण देवाणुप्पिएहिं अब्भणुन्नाए समाणे गोयमाइए समणे निग्गथे निग्गथीओ य खामेत्ता अम्हेहिं सद्धि विउल पव्वय सणिय सणिय दुरूहइ, दुरूहित्ता सयमेव मेघघण-सण्णिगास पुढविसिलापट्टय पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भत्तपाणपडियाइक्खिए अणुपुव्वेण कालगए। एस ण देवाणुप्पिया! मेहस्स अणगारस्स आयारभडए। (४६)

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह मेघ अनगार श्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा प्राप्त करके हृष्ट-तुष्ट हुए। उनके हृदय मे आनन्द हुआ। वह उत्थान करके उठे और उठकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन वार दक्षिण दिशा से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वदना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके स्वय ही पाच महाव्रतो का उच्चारण किया और गौतम आदि साधुओ को तथा साध्वियो को खमाया। खमा कर तथारूप (चारित्रवान्) और योगवहन आदि किए हुए स्थविर सन्तो के साथ विपुल नामक पर्वत पर धीरे-धीरे आरूढ हुए। आरूढ होकर स्वय ही

सघन मेघ के समान काले पृथ्वीशिलापट्टक की प्रतिलेखना की। प्रतिलेखना करके उच्चार-प्रस्रवण की—मल-मूत्र त्यागने की भूमि का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन करके दभ का सथारा विछाया और उस पर आरूढ हो गए। पूव दिशा के सन्मुख पद्मासन से बैठ कर, दोनो हाथ जोडकर और उन्हे मस्तक से स्पर्श करके (अजलि करके) इस प्रकार बोले—

"अरिहन्त भगवन्तो को यावत् सिद्धि को प्राप्त सब भगवन्तो को नमस्कार हो। मेरे धर्माचाय श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति प्राप्त करने के इच्छुक को नमस्कार हो! वहा (गुणशिलक चैत्य मे) स्थित भगवान् को यहा (विपुलाचल पर) स्थित मैं वन्दना करता हूँ। वहा स्थित भगवान् यहा स्थित मुझ को देखें।"

इस प्रकार कह-कर भगवान् को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

"पहले भी मैंने श्रमण भगवान् महावीर के निकट सम्पूण प्राणातिपात का त्याग किया है, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान (मिथ्या दोषारोपण करना) पशुन्य (चुगली), परपरिवाद (परकीय दोषो का प्रकाशन), धमसबधी अरति अधमविषयक रति, मायामृषा (वेष आदि बदल कर ठगना) और मिथ्यादशनशल्य, इन सब का प्रत्याख्यान किया है।"

अब भी मैं उन्ही भगवान् के निकट सम्पूण प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ, यावत् मिथ्यादशनशल्य का प्रत्याख्यान करता हू। तथा सब प्रकार के अशन, पान, खादिम और स्वादिम—चारो प्रकार के आहार का आजीवन प्रत्याख्यान करता हूँ। और यह शरीर, जो इष्ट है, कान्त (मनोहर) है और प्रिय है, यावत् रोग, आतक (शूलादिक), बाईस परीषह और उपसग न सतावें, इस प्रकार

से जिसकी रक्षा की जाती है, इस शरीर का भी मैं अन्तिम श्वासोच्छ्वास पर्यन्त परित्याग करता हूँ।'

इस प्रकार कह कर, संलेखना को अंगीकार करके, भक्त-पान का त्याग करके पादपोपगमन समाधिमरण अंगीकार करके मृत्यु की भी कामना न करते हुए मेघ मुनि विचरने लगे।

तब वे स्थविर भगवन्त ग्लानिरहित होकर मेघ अनगार की वैयावृत्य करने लगे।

तत्पश्चात् वे मेघ अनगार श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरों के सन्निकट सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करके, बारह वर्ष तक चारित्रपर्याय का पालन करके, एक मास की संलेखना के द्वारा आत्मा (अपने शरीर) को क्षीण करके अनशन से साठ भक्त छेद कर अर्थात् तीस दिन उपवास करके, आलोचना-प्रतिक्रमण करके, माया मिथ्यात्व और निदान शल्यों को हटाकर और समाधि को प्राप्त होकर अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुए।

तत्पश्चात् मेघ अनगार के साथ गये हुए स्थविर भगवन्तों ने मेघ अनगार को क्रमशः कालगत देखा। देखकर परिनिर्वाणनिमित्तक (मुनि के मृत देह को परठने के कारण से किया जाने वाला) कायोत्सर्ग किया। कायोत्सर्ग करके मेघ मुनि के उपकरण ग्रहण किए और विपुल पर्वत से धीरे धीरे नीचे उतरे। उतर कर जहां गुणसिलक चैत्य था और जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहीं पहुंचे। पहुंच कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

"आप देवानुप्रिय के अन्तेवासी (शिष्य) मेघ अनगार स्वभाव से भद्र यावत् विनीत थे। देवानुप्रिय (आप) से अनुमति लेकर गौतम आदि साधुओं और साध्वियों को खमाकर हमारे साथ विपुलाचल पर धीरे-धीरे आरूढ हुए। आरूढ होकर स्वयं ही सघन मेघ के

समान कृष्णवर्ण पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन किया और अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुए। हे देवानुप्रिय ! ये हैं मेघ अनगार के आचार-सम्बन्धी उपकरण। (८६)

**विशेषबोध**—प्रभु की आज्ञा प्राप्त होने पर मेघ मुनि बहुत प्रसन्न हुए। उनके चित्त में आनन्द उत्पन्न हुआ क्योंकि जीवन के अन्तिम क्षणों मे वे कराल काल से युद्ध मे विजय प्राप्त करना चाहते थे और अजर-अमर होने की अपनी साधना को चरम सीमा तक पहुचा देना चाहते थे। जीवन के अवशिष्ट बहुमूल्य समय का पूरा सदुपयोग कर लेना चाहते थे।

मेघकुमार उत्थान के बल खडे हुए और भगवान् को तीन प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। प्रदक्षिणा देना सम्मान एव भक्ति के प्रदर्शन की प्राचीन भारतीय परम्परा है, जो आज भी मन्दिरो मे प्रचलित है। पर गुरु के समक्ष तीन बार हाथ घुमाकर ही प्रदक्षिणा मान ली जाती है। इस सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है।

मेघ मुनि ने पुन महाव्रतो को धारण किया, समस्त सन्तो और सतियो से क्षमायाचना की और अनुभवी स्थविर मुनियो के साथ विपुलगिरि की ओर चले।

चलने फिरने की बात दूर, बोलने की भी शक्ति नही रह गई थी। ऐसी दुर्बलता की स्थिति मे भी उनका आत्मबल जागृत था। उसी के सहारे वे ऊचे पर्वत तक गये स्वय उस पर चढ़े, स्वय पृथ्वीशिला पट्ट का प्रतिलेखन आदि किया। मुनिराज का यह साहस और आत्मनिर्भरता धन्य है !

पृथ्वीशिलापट्टक का मतलब है पाषाणशिला। उस पर संथारा करने की उपयोगिता अहिंसा की दृष्टि से समझना चाहिए। शिला पर जीव जन्तुओ के उपद्रव और उनकी विराधना की वैसी संभावना नही रहती जैसी अन्यत्र रहती है।

लम्बी तपश्चर्या होने पर मल-मूत्र स्वल्प मात्रा मे आता है।

उसका त्याग करने के लिए भी निर्दोष भूमि को देखना आवश्यक है। मुनि के आचार मे उच्चार-प्रस्रवणसमिति का विधान है, जो अहिंसा की परिपालना के लिए आवश्यक है।

प्राचीन काल मे दभ (डाभ) का सथारा किया जाता था। मेघ मुनि ने भी तदनुसार दर्भसस्तारक बिछाया और उसी पर वे आसीन हुए।

पूर्व और उत्तर दिशा की ओर मुख करके ही मागलिक काय किए जाते हैं। इस विषय में पहले कहा जा चुका है।

मेघ मुनि डाभ के सस्तारक पर आसीन होकर एकाग्र चित्त से प्रभु की अभ्यर्थना करते हैं। वीतराग का स्मरण करते हैं। वे जिस कठिनतर साधना का उपक्रम करने जा रहे हैं, उसमे वीतराग भाव के सतत जागृत रहने की अनिवाय आवश्यकता है। क्षण भर के लिए लेशमात्र भी रागभाव के उत्पन्न होने से समाधिमरण की साधना मलिन हो जाती है। अतएव वीतराग का स्मरण करके अपने वीतराग भाव को सुदृढ बनाना आवश्यक है।

भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हुए वे बोले—प्रभो! आप कहा और मैं कहा? आप गुणसिलक उद्यान मे हैं और मैं यहां पवत पर हूँ। फिर भी आप केवल ज्ञान-दशन से सम्पन्न होने के कारण मुझे देखें।

यह कथन बडा भावपूर्ण है। भगवान् शरीर से चाहे जितनी दूर हों किन्तु भक्त उन्हें अपने हृदय म ही विराजमान अनुभव करता है। कहा भी है—

दूरस्थोऽपि समीपस्थो हृदये यदि विद्यते।

जो हृदय मे विद्यमान है वह दूरस्थ होने पर भी समीप ही है।

मेघकुमार यह कहकर सवज्ञ सवदर्शी भगवान् को अपनी साधना का साक्षी बना रहे हैं। भगवान् मुझे देख रहे हैं, यह भावना जागृत रहे तो साधना मे तनिक-सी भी त्रुटि नहीं की जा सकती।

मेघ मुनि फिर बोले—प्रभो ! मैं आपकी साक्षी से जीवन भर के लिए अठारह पापो का, जिनका पहले भी त्याग कर चुका हूँ, पुन त्याग करता हूँ। इसके साथ ही चारो प्रकार के आहार का और यहा तक कि इस शरीर का भी त्याग करता हूँ।

इन तीनो का त्याग ससार मे सबसे बडा त्याग है। शरीर का त्याग अर्थात् शरीर से ममत्व का सम्बन्ध हटा लेना कोई साधारण बात नही है। और जब शारीरिक ममत्व का त्याग कर दिया जाता है तो आहारादि का त्याग स्वत सिद्ध हो जाता है। शरीर को ही आहार की अपेक्षा रहती है। जब शरीर ही अपना न रहा तो आहार किस लिए ?

इन तीनो का त्याग होने पर ससार के साथ सम्बन्ध पूरी तरह कट जाता है। देहत्याग के पश्चात् आत्मा अपने आप मे अकेला रह जाता है। फिर कोई वस्तु उपयोग मे नही आती। ऐसी स्थिति मे जीवित देह भी मुर्दे के समान पडा रहता है। उसका कोई उपयोग नही। उसकी ओर से साधक बिलकुल विमुख हो जाता है। यही पादपोपगमन सथारा कहलाता है।

पादप (वृक्ष) की शाखा टूट कर गिर पडे। वह जहा पडती है वही ज्यो की त्यो पडी रहती है। स्वत हिलती डुलती नही है। इसी प्रकार साधक का शरीर जब निश्चेष्ट होकर पडा रहता है और साधक अपने आत्मभाव मे रमण करता रहता है तब वह पादपोप-गमन सथारा कहा जाता है।

साधक की विशेषता यह है कि सथारे की उस स्थिति मे वेदना, भूख, प्यास आदि परीषह होने पर भी मन पर पूरी तरह अनुशासन रखे। किंचित् भी असर मन पर न होने दे।

मन सब पर असवार है, मन के मत अनेक।<br>
जो मन पर असवार है, वह लाखो म एक ॥

उस स्थिति मे साधक जीवन की कामना नही करता और मृत्यु के भय को निकट नही फटकने देता।

ज्ञानी के ज्ञान का सार यही है कि वह ममत्वप्रेरित होकर लम्बे समय तक जीने की अभिलाषा न करे, क्योकि अभिलाषा करने से आयु की वृद्धि नही हो सकती। साथ ही मृत्यु से भयभीत भी न हो, क्योकि डरने से मृत्यु रुक नही सकती।

जब जीवन-मरण मे समभाव आ जाता है तो अनिर्वचनीय शाति एव आनन्द की अनुभूति होती है। उस आनन्द मे मग्न साधक जीवन-मरण के विकल्प को भूल जाता है।

मेघ मुनि इसी दुष्कर साधना मे लीन हो गए। वे समताभाव के विमल सरोवर मे डुबकियाँ लगाने लगे। अनुभवी स्थविर, जो उनके साथ गए थे अग्लानभाव से उनकी सेवा करने लग। यद्यपि मेघ मुनि को सेवा की अपेक्षा रह नही गई थी, तथापि यथायोग्य देखरेख रखना, स्थविर अपना कर्तव्य मानते थे। उन स्थविरो ने भी उन दिनो तपस्या की। निजन वन म पहाडियो पर भूखे-प्यासे रहे। एक मास तक सेवा काय करते रह।

आज इस प्रकार का उत्तरदायित्व किसी पर आ पडे तो उसे प्रसन्नतापूर्वक निभाना कठिन होता है। किन्तु उन महान् स्थविरो को भी धन्य है, जो मेघ मुनि की साधना मे सहायक बनकर स्वय कष्ट झेलने मे तनिक भी उद्विग्न नही हुए।

मेघ मुनि ने 'पढम नाण तओ दया' इस विधान के अनुसार पहले सूत्राथ का ज्ञान प्राप्त किया, फिर कठिन तपस्या मे प्रवृत्त हुए। उन्होने अपने जीवन को खूब चमकाया। उनका पादपोपगमन सथारा एक मास तक चला। जब शरीर के वियोग का स्थिति आई तो आलोचना और प्रतिक्रमण किया। आलोचना से पूर्वकृत पापो का क्षय होता है। प्रतिक्रमण द्वारा विशुद्धि प्राप्त की जाती है।

यद्यपि मेघ मुनि को अब पाप होने का विशेप कारण नही था,

तथापि कदाचित् मानसिक सकल्प मे कोई त्रुटि आई हो तो उसके लिए और व्यवहार को अक्षुण्ण रखने के लिए उन्होने आलोचना की, प्रतिक्रमण किया।

उनके अन्तर् मे किसी प्रकार की माया-ममता नही थी। पारलौकि सुखो की कामना नही थी। वे समभाव मे स्थित थे। चित्त मे समाधि थी। ऐसी स्थिति मे चित्तसमाधि स्वत प्राप्त हो जाती है। अतएव समाधिपूवक मुनि कालधम को प्राप्त हुए।

जब मेघ अनगार कालधम (मरण) को प्राप्त हो चुके तो स्थविरो ने परिनिर्वाणप्रत्ययक कायोत्सग किया और मुनि के सयमोपकरण उठाकर वहा से रवाना हो गए।

## पहाडी सथारा

उग्र तपस्वी जैन मुनि अन्तिम समय सन्निकट आया जानकर पहाडियो पर जाकर सथारा करते थे। इसका प्रधान हेतु यह है कि मृत कलेवर (शव) को न जलाना पडे और न भूमि मे गाडना पडे। ऐसा करने से आरम्भ-समारम्भ एव जीवहिंसा होती है। पहाड पर जाकर एकान्त मे प्राण त्याग करने से अन्त्येष्टि क्रिया नही करनी पडती। इसी हेतु से यह परम्परा प्रचलित रही होगी।

पवत पर जाकर मेघ मुनि की तरह अनेक मुनियो द्वारा सथारा करने का उल्लेख आगमो मे मिलता है।

आदि तीथकर ऋषभदेव दस हजार मुनियो के साथ सथारा करने के लिए अष्टापद पवत पर गए थे।[1] आर्य स्कन्धक ने विपुलगिरि पर जाकर सथारा किया था[2]। अरिष्टनमि के शिष्य गौतम नामक अनगार ने शत्रुञ्जय पवत पर जाकर समाधिमरण अगीकार किया था।[3]

---

१—कल्पसूत्र। २—भगवती सूत्र। ३—अन्तगडसूत्र प्रथम वग।

चौवीस तीर्थकरो मे से बीस तीर्थकर सम्मेदशिखर पर्वत से मोक्ष पधारे हैं। अन्य तीर्थंकर भी प्राय अन्त समय मे पर्वत पर ही पधारे और वहीं उन्होने निर्वाण प्राप्त किया।

आशय यह है कि अन्तिम समय मे पर्वत पर जाकर सथारा ग्रहण करने की जैन साधुओ की परम्परा लम्बे काल तक चलती रही है। हाँ, साध्वियो को ऐसा करने का विधान नहीं है। वे उपाश्रय से बाहर जाकर आतापना भी नही ले सकती। नारीजीवन वनवास के योग्य नही है।

इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए मेघ मुनि ने भी विपुलगिरि पर जाकर शरीरोत्सर्ग किया।

जब मेघमुनि कालधर्म कर गए तो स्थविर सन्तों ने उनके उपकरण ग्रहण कर लिए। जिस प्रयोजन से पर्वत पर गए थे वह पूरा हो जाने पर वे धीरे-धीरे नीचे उतरे। धीरे धीरे नीचे उतरने का कारण निवलता है। प्रथम तो वे मुनि स्थविर थे, फिर लम्बी तपस्या भी उन्होंने की थी। अतएव धीरे धीरे उतर कर वे भगवान् की सेवा मे पहुचे। मेघ मुनि के उपकरण भगवान् के सामने रख दिए और उनके कालधर्म को प्राप्त होने का समाचार सुनाया। प्रभु तो ज्ञानी थे। सब कुछ उन्हे ज्ञात था, फिर भी स्थविरो ने वृतान्त कहकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया। (४६)

## पुनर्जन्मसम्बन्धी प्रश्नोत्तर

मूलपाठ—'भते' त्ति भगव गोयमे समण भगव महावीर वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पियाण अन्तेवासी मेहे णाम अणगारे से ण भते! मेहे अणगारे कालमासे काल किच्चा कहि गए? कहि उववन्ने?

'गोयमाइ' समणे भगव महावीरे भगव गोयम एव वयासी—एव खलु गोयमा ! मम अन्तेवासी मेहे णाम अणगारे पयइभद्दए जाव विणीए । से ण तहारूवाण थेराण अतिए सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जइ, अहिज्जित्ता वारस भिक्खुपडिमाओ गुणरयणसवच्छर तवोकम्म काएण फासेत्ता जाव किट्टेत्ता मए अब्भणुन्नाए समाणे गोयमाइ थेरे खामेइ, खामित्ता तहारूवेहिं जाव विउल पव्वय दुरूहइ, दुरूहित्ता दब्भसथारग-सथरइ, सथरित्ता दब्भसथारोवगए सयमेव पचमहव्वयाइ उच्चारेइ । वारसवासाइ सामण्णपरियाग पाउणित्ता, मासियाए सलेहणाए अप्पाण झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदेत्ता, आलोइयपडिक्कते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते कालमासे काल किच्चा उद्ध चदिम-सूर-गहगण-नक्खत्त ताराख्वाण वहूइ जोयणाइ, बहूइ जोयणसयाइ, वहूइ जोयणसहस्साइ, वहूइ जोयणसयसहस्साइ, बहूइ जोयणकोडीओ, वहूइ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढ दूर उप्पइत्ता सोहम्मी-साणसणकुमारमाहिंदबभलतगमहासुक्कसहस्साराणयपाणयारणच्चुए तिन्नि य अट्ठारसुत्तरे गेवेज्जविमाणावाससए वीइवइत्ता विजए महाविमाणे देवत्ताए उववण्णे ।

तत्थ ण अत्थेगइयाण देवाण तेत्तीस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता । तत्थ ण मेहस्स वि देवस्स तेत्तीस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता ।

एस ण भते ! मेहे देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएण ठिइक्खएण भवक्खएण अणतर चय चइत्ता कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमतं काहिइ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थयरेणं जाव संपत्तेणं अप्पोपालंभनिमित्तं पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

मूलार्थ—'भगवन्' इस प्रकार कह कर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय के अन्तेवासी मेघ अनगार थे। भगवन् ! वह मेघ अनगार कालमास मे अर्थात् मृत्यु के अवसर पर काल करके किस गति मे गए ? और किस जगह उत्पन्न हुए ?"

'गौतम' इस प्रकार कह कर श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा – 'इस प्रकार हे गौतम ! मेरा अन्तेवासी मेघ अनगार प्रकृति से भद्र यावत् विनीत था। उसने तथारूप स्थविरो से सामायिक से प्रारम्भ करके ग्यारह अगो का अध्ययन किया। अध्ययन करके बारह भिक्षुप्रतिमाओ का और गुणरत्न संवत्सर नामक तप का काय से स्पर्श करके यावत् कीर्त्तन करके, मेरी आज्ञा प्राप्त करके गौतमादि स्थविरो को खमाया। खमाकर तथारूप यावत् स्थविरो के साथ विपुल पर्वत पर आरोहण किया। दर्भ का सथारा बिछाया। फिर दर्भ के सथारे पर स्थित होकर स्वयं ही पाच महाव्रतो का उच्चारण किया। बारह वर्ष तक साधुत्वपर्याय का पालन करके एक मास की सलेखना से अपने शरीर को क्षीण करके, साठ भक्त अनशन से छेदन करके, आलोचना प्रतिक्रमण करके, शल्यो को उद्धृत करके, समाधि को प्राप्त होकर, कालमास मे मृत्यु को प्राप्त करके, ऊपर चद्र सूर्य ग्रहगण नक्षत्र और तारारूप ज्योतिष्क चक्र से बहुत योजन, बहुत सौ योजन, बहुत हजारों योजन, बहुत लाखो योजन, बहुत करोडों योजन और बहुत कोटाकोटी योजन लाघकर, ऊपर जाकर, सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र,

ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोको को तथा तीन सौ अठारह नवग्रैवयको के विमानावासो को लाघकर विजय नामक महाविमान मे देव के रूप मे उत्पन्न हुआ है।

इस विजय नामक अनुत्तर विमान मे किन्ही देवो की तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है। उनमे से मेघ नामक देव की भी तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है।"

"भगवन् ! वह मेघ देव उस देवलोक से आयु का अर्थात् आयुकर्म के दलिको का क्षय करके, आयुकर्म की स्थिति का वेदन द्वारा क्षय करके तथा देवभव के शरीर का त्याग करके अर्थात् देवलोक से च्यवन करके किस गति मे जाएगा ? किस स्थान पर उत्पन्न होगा ?"

'हे गौतम ! महा विदेह वर्ष मे (जन्म लेकर) सिद्धि प्राप्त करेगा। समस्त मनोरथो को सम्पन्न करेगा, केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को जानेगा, समस्त कर्मों से मुक्त होगा और परिनिर्वाण प्राप्त करेगा, अर्थात् कर्मजनित समस्त विकारो से रहित हो जाने के कारण स्वस्थ होगा एव समस्त दुःखो का अन्त करेगा।"

श्री सुधर्मा स्वामी अपने प्रधान शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं—इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने, जो प्रवचन की आदि करने वाले तीर्थ की स्थापना करने वाले यावत् मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, आप्त (हितकारी) गुरु को चाहिए कि वह अविहित कार्य करने वाले शिष्य को उपालम्भ दे, इस प्रयोजन से प्रथम ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है, ऐसा मैं कहता हूँ, अर्थात् तीर्थंकर भगवान् ने जैसा फर्माया है, वैसा ही मैं तुमसे कहता हूँ। (२०)

प्रथम अध्ययन समाप्त

**विशेष बोध**—सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु महावीर केवलज्ञानी होने से प्रत्येक जीव के परभव-स्थान आदि सभी भावों को साक्षात् रूप में

जानते थे। इसी कारण गौतम स्वामी ने मेघ मुनि के परभव के विषय मे प्रश्न पूछा है।

गौतम स्वामी यद्यपि छद्मस्थ थे, तथापि चार ज्ञानो के धारक थे। केवली न होते हुए भी केवली के समान थे। प्रश्न पूछने के कारण यह नहीं समझना चाहिए कि उन्हें वह मालूम नही था। तथापि सब साधारण को जानकारी कराने के अभिप्राय से उन्होने अनेक प्रश्न पूछे हैं। इसके अतिरिक्त सूत्ररचना की शैली भी ऐसी है है कि गौतम स्वामी से प्रश्न करवाकर भगवान् के द्वारा उत्तर के रूप मे विषय का स्पष्टीकरण किया जाय।

भगवान् का अन्तेवासी साधक मेघ मुनि कितनी दूर जा पहुँचा है। मानवलोक के ऊपर, ज्योतिष्क मडल से भी ऊपर और सौधर्मादि देवलोको से तथा ग्रैवेयक विमानो से भी ऊपर विजय नामक अनुत्तर विमान है। कोटि-कोटि योजन से भी ऊपर वह विमान है। फिर भी सवज्ञ हस्तकमलवत् उसे देख रहे हैं। वहाँ का वैभव, आयु आदि सभी कुछ उनके केवलज्ञान मे झलक रहा है। गौतम स्वामी के प्रश्न का उत्तर व्यास शैली मे दिया गया।

मेघ मुनि आत्म विजय करके विजय विमान मे उत्पन्न हुए।

विपुल पवत पर धीमे-धीमे चढ़े किन्तु विजय विमान मे पहुचत जरा भी देर न लगी। इतनी शक्ति कहाँ से और कैसे टपक पडी? किसी न कहा है—

"कल तो कहते थे कि बिस्तर से उठा जाता नही।
आज दुनिया से चले जाने की ताकत आ गई॥"

वस्तुत जब तक वे जीण शीण शरीर के बधन मे बध थे, तब तक कमजोरी थी। उस शरीर से छुटकारा पाते ही असीम शक्ति का स्रोत उमड पडा।

दूसरे शब्दो म कहा जा सकता है कि विजय विमान तक जाने की क्षमता उन्हे तप, जप, यम, नियम आदि के द्वारा प्राप्त हुई थी।

आत्मा का कर्म-मल जब भस्म हो जाता है तो आत्मा मे हल्का-पन आता है। उस हल्के पन के कारण आत्मा ऊँचे की ओर जाती है। यदि पूर्ण निष्कर्म दशा प्राप्त हो जाय तो लोकान्त तक उपर जाती है। अन्य जीव अपने हल्केपन के अनुपात से ऊपर जाते हैं। इसके विपरीत गुरुकर्मा (पापी) जीव सदा अधोगति मे जाते हैं।

मुनि मेघकुमार प्रकृति से भद्र और प्रकृति से ही विनीत थे। उन्होंने क्रोध, मान, माया, लोभ पर विजय प्राप्त की, कठोर तपश्चर्या की, जिससे वे विमानवासी बने। त्रिलोकीनाथ का माथे पर हाथ होने से उनके सब कार्य सफल हुए।

ऐसे तेजस्वी तपस्वी आत्मा को मुक्ति प्राप्त हो सकती है किन्तु मानवभव की आयु कम हो और पुण्यकर्म के दलिक अधिक शेष रह जाएँ तब देवभव की प्राप्ति होती है। जब शुभाशुभ कर्मों का एक ही साथ पूर्णरूपेण क्षय होता है तब आत्मा मोक्ष प्राप्त कर लेती है।

मेघ कुमार मुनि विजयविमान मे तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले देव के पर्याय में उत्पन्न हुए। सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों की भी स्थिति तेतीस सागरोपम की होती है किन्तु वहाँ की स्थिति मे जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का भेद नही है। वहाँ के सभी देवो की एक ही प्रकार की स्थिति है। परन्तु विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामक चार अनुत्तर विमानो मे दो प्रकार की स्थिति होती है—जघन्य और उत्कृष्ट। जघन्य स्थिति बत्तीस सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है। मेघ देव ने विजय विमान में उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त की। मूलपाठ स्वय बतलाता है कि किन्हीं-किन्हीं देवो की स्थिति वहाँ तेतीस सागरोपम की होती है।

## भविष्यवाणी

ससारी जीव कर्मों के अनुसार विभिन्न गतिया मे भ्रमण करते रहते है। किसी भी एक पर्याय मे वे सदैव स्थित नही रह सकते।

सबसे लम्बी भवस्थिति तेतीस सागरोपम की ही है। इसके पूर्ण होने पर जीव को भवान्तर मे जाना ही पड़ता है।

इसी तथ्य को ध्यान मे रखकर गौतम स्वामी ने मेघदेव के विषय मे पुन प्रश्न किया—भगवन्! मेघ देव विजय विमान से च्युत होकर कहाँ जन्म लेगा ?

प्रभु ने उत्तर दिया—मेघ महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर मुक्ति प्राप्त करेगा।

## विनेयशिक्षा

मेघ मुनि को परम गुरु भगवान् महावीर ने हितशिक्षा दी और सयमनिष्ठ बना दिया। प्रभु ने उनका महान् उपकार किया। श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी को सम्बोधन करके कहते हैं—अप्पोपालभनिमित्त।

आप्त पुरुष ने शिष्य को हित शिक्षा दी और इसी निमित्त यह अध्ययन बना। टीकाकार ने भी इसी प्रकार का अर्थ किया है।[1]

कुछ अनुवादकों ने मेघकुमार को अविनीत शिष्य होना लिखा है। जैनसभा भावनगर से प्रकाशित गुजराती अनुवाद म लिखा गया है—

'कोई पण अविनीत शिष्य होय तो तेने गुरुए मधुर वचन कहे उपालभ आपी विनीत बनावी मार्गे लाववो जोइए, आवो उपदेश आपवा माटे राजगृह नगरमा श्रेणिक राजा अने तेमनी धारिणी नामनी राणी थी जन्मेला मेघकुमार नु ज्ञात एटले दृष्टात आप्यु छे।'

यद्यपि यहा मेघकुमार को सीधा अविनीत नही कहा है तथापि इसका आशय यही निकलता है कि मेघकुमार अविनीत शिष्य था।

---

१—आप्तेन हितेन गुरुणेत्यर्थ, उपालम्भो विनयस्याविहितविधायिन आप्तोपालम्भ स निमित्त यस्य प्रज्ञापनस्य तत्तथा।

—आगमोदय समिति सस्करण।

किन्तु मेघकुमार का समग्र वृत्तान्त स्पष्ट रूप से वतलाता है कि वे अविनीत नही थे। भगवान् महावीर ने स्वय अपने मुखार-विन्द से उन्हे विनीत कहा है। गौतम स्वामी ने भी उनके भविष्य के विपय मे प्रश्न करते हुए उन्हे विनीत कहा है।

मूलपाठ मे ऐसा कोई शब्द नही, जिससे उनको अविनीत माना जा सके। सस्कृत टीकाकार ने भी ऐसा कही नही लिखा है। वे ऐसा अवश्य कहते हैं कि अविहितविधायी' शिष्य को उपालभ देने के निमित्त से यह अध्ययन वना। मगर प्रथम तो यहा सामान्य रूप मे ही कहा गया है, दूसरे अविहितविधायी' कहा है 'अविनीत' नही। 'अविहितविधायी' का अर्थ है—आगम मे जिसका विधान नही, ऐसा कोई कार्य करने वाला। 'अविहितविधायी' शिष्य अविनीत ही हो, ऐसा मानना उचित नही है। एक वार कोई अकृत्य हो जाने पर भी शिष्य को अविहितविधायी' कहा जा सकता है किन्तु अविनीतता का सम्बन्ध उसकी प्रकृति के साथ है।

जैनागमो मे विनय' का अर्थ 'आचार' भी किया गया है, किन्तु इस अर्थ के अनुसार भी मेघ मुनि को अविनीत अर्थात् आचार-हीन कहना उचित नही है। अल्प स्खलना मात्र से उन्हे आचारहीन कह देना वहुत वडी अत्युक्ति है।

वास्तव मे मेघ मुनि विनीत थे। छद्मस्थ तथा एकदम नवदीक्षित होने से प्रथम रात्रि मे अस्थिर अवश्य हुए, यहा तक कि सयम त्याग देने का भी विचार उन्होंने किया, फिर भी चुपचाप भाग जाने का विचार नही किया। उद्वेग की उस अवस्था मे भी वे यही सोचते रहे कि भगवान् से कहकर ही मैं जाऊंगा। यह उनकी विनयशीलता का द्योतक है।

मुनि मेघ का वैराग्य कितना उच्चकोटि का है। माता-पिता ने राज्यवैभव का प्रलोभन दिया, सयम की दुष्करता प्रदर्शित करके

डराना चाहा, फिर भी वे अपने सकल्प मे डिगे नही। सयम धारण करने मे अपने निश्चय को उन्होंने कार्यान्वित किया।

भगवान् महावीर के द्वारा सम्बोधित होने पर उन्होंने कहा—प्रभो! दो आँखें छोड़कर मेरा सारा शरीर अनगारा की सेवा के लिए समर्पित है।

जो महापुरुष ऐसा त्यागी, वैरागी, सेवाभावी और दुष्कर क्रिया करने वाला हो, उसे 'अविनीत' कहा जा सकता है? नही।

प्रस्तुत अध्ययन यद्यपि अविहितविधायी विनेय को उपालम्भ देने के निमित्त से बना है, तथापि इसका नाम 'उक्खित्त पाए' प्रचलित है। हाथी ने शशक की रक्षा के लिए पैर ऊपर उठाए रक्खा, इस घटना की प्रधानता से इसका यह नामकरण हो गया जान पड़ता है।

## उपसहार

ससारी जीव भ्रमणशील बना रहता है। ससार शब्द का अर्थ ही है—एक स्थान से दूसरे स्थान पर अथवा एक गति से दूसरी गति मे जाना। स्वर्ग, नरक और मनुष्यलोक मे यह जीव अनादि काल मे परिभ्रमण कर रहा है—

> एगया देवलोएसु, नरएसु वि एगया।
> एगया आसुर काय, अहाकम्मेहि गच्छइ ॥१॥
> एगया खत्तिओ होइ, तओ चडाल-वुक्कसो।
> तओ कीडपयगो अ, तओ कुथुपिवीलिया ॥२॥
>
> —उत्तराध्ययन अ ३

ससारी जीव अपने शुभाशुभ कर्मों से कभी देवलोकों मे, कभी नरको में कभी असुर निकाय में उत्पन्न होता है।

कभी क्षत्रिय के रूप मे जन्म लेता है और फिर कभी चाण्डाल एव वुक्कस हो जाता है। तत्पश्चात् कीट, पतग, कुथु और पिपो-

लिका रूप मे जन्मता-मरता है। इस प्रकार ससारी जीव के परिभ्रमण की परम्परा अनादि काल से चल रही है।

> दुल्लहे खलु माणुसे भवे,
> चिरकालेण वि सव्वपाणिणो।
> गाढा य विवागकम्मुणो,
> समय गोयम ! मा पमायए॥
>
> —उत्तराध्ययन अ० १०

सभी प्राणियो के लिए, चिरकाल तक भी मनुष्यभव निश्चय ही दुलभ है और कर्मो का विपाक अतीव गाढा होता है। अतएव हे गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद न करो।

मानवभव की सफलता धर्माराधना करने मे है। मेघकुमार ने इस तथ्य को समीचीन रूप मे समझ लिया था। अत उन्होंने अपना शेष समग्र जीवन आत्मोत्थान मे लगा दिया।
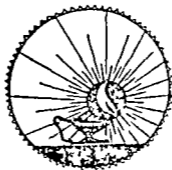
## परिशिष्ट

### (संक्षिप्त वृत्तान्त)

कोई भी सन्त या सती प्रमादवश होकर भूलभरा कार्य कर तब गुरु या गुरुणी मधुर भाषा मे उपालम्भ देकर उसे सन्मार्ग पर ले आवे।

ऐसा उपदेश देने के लिए राजगृह के राजा श्रेणिक की धारिणी रानी के सुपुत्र मेघकुमार का ज्ञात अर्थात् दृष्टान्त दिया गया है।

मेघकुमार का जीव माता की कुक्ष मे आया। माता को अकाल-मेघ का दोहद उत्पन्न हुआ। दोहद की देवी सहायता से पूर्ति हुई। यथासमय पुत्र का जन्म हुआ। बाल्यावस्था से मुक्त होने पर मेघकुमार ने बहत्तर कलाएं सीखी। उन बहत्तर कलाओ के नामो का उल्लेख मूलपाठ मे किया गया है।

युवावस्था आने पर राजकुमार का आठ राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ। विवाह होने पर राजसीविलास की सामग्री जुटी। मेघकुमार आनन्द मे मग्न रहने लगे।

कुछ समय पश्चात् राजगृह के गुणशिलक बाग मे भगवान् श्री महावीर पधारे। मेघकुमार धर्मदेशना सुनने गए। उपदेश श्रवण किया। उसका उनके चित्त पर गहरा प्रभाव पडा। हृदय मे वैराग्य उमड पडा। अतीव आग्रह करके माता-पिता से अनुमति प्राप्त की। फिर भारी महोत्सव के साथ भागवती दीक्षा अगीकार की। मुनि बन गए।

उसी दिन रात्रि मे, सब मे छोटे मुनि होने के कारण उनका बिस्तरा सबसे पीछे लगा। रात्रि मे साधुओं के आवागमन के कारण उन्हें नीद नहीं आई। दिल म उद्वेग उत्पन्न हुआ। विचार किया— प्रात दीक्षा छोडकर मैं घर चला जाऊ गा।

चले जाने की भावना से आज्ञा प्राप्त करने हेतु प्रभु महावीर के पास गए। ज्ञानबल से प्रभु ने मेघकुमार की भावना समझ ली। चारित्रधम मे पुन स्थिर बनाने के लिए उन्ह सावधान किया।

पूवभवो का वणन किया। दो पूवभवो मे वे हाथी थे। प्रथम भव मे हाथी आग से भयभीत होकर भागता-भागता एक तालाब मे पानी पीने उतरा कि गहरे कीचड मे फस गया। दूसरे हाथी ने वैरभाव से प्रेरित होकर मार डाला।

मृत्यु प्राप्त कर पुन हाथी बना। इस भव मे भी दावानल से भयभीत हुआ। बचाव के लिए गगा नदी के किनारे पर घास-फूस, वृक्ष लता आदि उखाड कर एक योजन का मडल बनाया। एक बार दावानल के भय से भागदौड़ मची। वह हाथी भी दौडता-दौडता मडल मे आया। वहा पहले से ही बहुत-से छोटे-मोट पशु भर गए थे। हाथी भी वहा जाकर खडा हो गया।

हाथी के शरीर मे खुजली चली। खुजाने के लिए उसने एक पैर ऊपर उठाया। उस रिक्त हुए स्थान मे एक शशक आकर बैठ गया।

दयाभाव से उस शशक पर पाव नही रखा। पर ऊपर ही उठाए रक्खा। अढाई दिन तक आग का उपद्रव जारी रहा। फिर आग शान्त हुई। सब पशुगण चले गए। हाथी का पांव अकड गया था। वह चलने को हुआ तो गिर पडा और मरण को प्राप्त हुआ।

वही हाथी दया के प्रभाव से मेघकुमार हुआ।

यह सब वृत्तान्त सुनाकर भगवान् ने कहा—ह मघ! पूवभव मे एक खरगोश की दया पालने से मानवभव मिला। सब प्रकार से समथ और योग्य बना। साधुजीवन की प्राप्ति हुई! और आज मुनियो के परो के स्पश से इतने व्याकुल हो उठ!

यह सब वृत्तान्त सुनकर मेघमुनि को जातिस्मरण ज्ञान हुआ।

वे सयम मे दृढ हुए। ज्ञानाभ्यास करके प्रतिमातप और गुणरत्न-सवत्सर तप किया। इस तप का विस्तृत वणन किया गया है।

अन्त में अनशन करके तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले विजय विमान मे देव रूप से जन्म लिया। वहा से वे महाविदेह क्षेत्र मे मनुष्य होगे और सयम की आराधना करके मोक्ष प्राप्त करेंगे।[1]

१—भावनगर जैनसभा द्वारा प्रकाशित गुजराती सस्करण के आधार पर।